Downloaded from https:// www.studiestoday.com

छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल के नवीन पाठ्यक्रम पर आधारित

पर्यावरण अध्ययन

ENVIRONMENTAL STUDIES

कक्षा–12

2018 – 2019

छत्तीसगढ़ पाठ्यपुस्तक निगम, रायपुर

मूल्य रू.–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा निर्देशित संयोजक एवं सदस्य (लेखकगण)

संयोजक

डी. पी. सिंह, प्राचार्य

लेखकगण

डी. पी सिंह (प्राचार्य) श्रीमती साक्षी खरे (व्याख्याता)

डॉ. सी. पी. खरे (वरिष्ठ वैज्ञानिक, इंदिरा गांधी कृषि वि.वि.,रायपुर)

समन्वयक

डॉ. विद्यावती चन्द्राकर

आवरण पृष्ठ एवं ले–आउट डिजाइन

रेखराज चौरागड़े

प्रकाशक

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

मुद्रक

छत्तीसगढ़ पाठ्यपुस्तक निगम, रायपुर

मुद्रणालय

....

मुद्रित पुस्तकों की संख्या – ....

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रस्तावना

पर्यावरण हम सबके लिए एवं हम सभी पर्यावरण के लिए हैं, ऐसी सोच विश्व स्तर पर विकसित हुई है। आज पारिस्थितिकीय असंतुलन में लगातार हो रही वृद्धि के कारण सम्पूर्ण विश्व समुदाय पर्यावरण के प्रति किये जा रहे अपराधों के सम्बन्ध में जागरूक हो गया है। आज पृथ्वी को प्रदूषण से बचाने तथा प्राकृतिक संसाधनों के उचित और न्यायसंगत वितरण हेतु तरीकों का पता लगाने के लिए एक विश्वव्यापी कार्यनीति अपनाने की आवश्यकता है ताकि प्राकृतिक संसाधन धारणीय बने रहें और साथ ही साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी उनकी पर्याप्त मात्रा बची रहे।

पृथ्वी पर सभी जीव– जन्तुओं के अस्तित्व के लिए पर्यावरण के व्यापक महत्व पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारत के सभी शैक्षणिक संस्थाओं के लिए पर्यावरण एक अनिवार्य विषय कर दिया है। इसी संदर्भ में यह पुस्तक छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल से सम्बद्ध सभी विद्यालयों की कक्षा 12 वीं के विद्यार्थियों के लिए तैयार की गयी है, यह पुस्तक माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देशों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन. सी.ई.आर.टी) द्वारा बनाये गये पाठ्यक्रम के अनुसार छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा तैयार पाठ्यक्रम के आधार पर लिखी गयी है।

समस्त मापदण्डों का ध्यान रखते हुए पुस्तक लेखन में पूर्ण सावधानी रखी गयी है, फिर भी विद्वतजनों, शिक्षकों, विद्यार्थियों को जहॉं कहीं भी कमी का अहसास हो तो अपने सुझावों से मंडल को अवगत करायेंगे, ताकि हम भविष्य में इस पुस्तक को और बोधगम्य एवं सरल व सरस तथा लोकप्रिय बना सकेंगे।

अध्यक्ष
छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल
रायपुर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पर्यावरण– अध्ययन

कक्षा– 12 वीं

समय– 3 घंटा

पूर्णांक 100
सैद्धांतिक 75
प्रायोगिक 25

इकाई क्रमांक	विषय सामग्री	आबंटित अंक	कालखण्ड
01	जैव विविधता	25	33
02	पर्यावरण प्रबन्धन	15	18
03	संधारित विकास	15	17
04	कृषि एवं फसल सुरक्षा	20	22
05	क्षेत्रीय क्रियाकलाप (आंतरिक मूल्यांकन)	25	15
	योग	**100**	**90+15**

I	**जैव–विविधता**	10	15
1.1	**जैव–विविधता की अवधारणा एवं प्रकार–**		
	जैव विविधता की अवधारणा तथा महत्व जैव विविधता के प्रकार – प्रजाति, पारिस्थितिक एवं आनुवंशिक जैव विविधता। प्रकृति में संतुलन। मानव के अस्तित्व हेतु जैव विविधता। संसाधनों की सीमाएँ।		
1.2	**जैव–विविधता की पारिस्थितिक भूमिका –**	**10**	**12**
	विभिन्न प्रजातियों के मध्य पारस्परिक निभर्रता। भारतवर्ष विविध विपुलता वाला राष्ट्र। जैव विविधता का आर्थिक महत्व। जैव विविधता में कमी, संकटग्रस्त, संकटापन्न (खतरे में पड़ी) एवं विलुप्त प्रजातियॉं		
1.3	**जैव विविधता का संरक्षण –**	**05**	**06**
	इन सिटू एवं एक्स सिटू संरक्षण। जनता एवं जनजीवन संघर्ष को कम करना।		
II	**पर्यावरण प्रबंधन –**		
2.1	**पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता, पर्यावरण प्रबंधन**	**10**	**12**
	के प्रमुख पहलू–इथिकल, आर्थिक तकनीकी एवं सामाजिक पहलू। पर्यावरण प्रबन्धन के कानूनी प्रावधान।		

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.2 पर्यावरण प्रबन्धन के उपगमन (एप्रोचेस) –

आर्थिक नीतियॉ, पर्यावरण सूचक,मानकों (स्टैण्डर्स) की सेटिंग, सूचनाओं का आदान–प्रदान एवं निगरानी।

III संधारित विकास –

3.1 संधारित विकास की अवधारणा।

संधारित उपभोग की अवधारणा।

वर्तमान एवं भविष्य के जीवन स्तर में सुधार हेतु संधारित विकास की आवश्यकता।

संधारित विकास की चुनौतियॉ सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक चुनौतियॉ।

3.2 संधारित विकास के मददगार आधार –

राजनीतिक एवं प्रशासनिक संकल्प। गतिमान एवं अनाग्राही (फ्लेक्सिबल) नीतियॉ, सटीक तकनीकें।

दक्ष मानव शक्ति का विकास।

व्यक्ति एवं समुदाय की भूमिका।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियॉ (शासकीय एवं अशासकीय) की भूमिका।

IV कृषि एवं फसल सुरक्षा –

4.1 संधारित कृषि एवं हरित क्रांति :–

संधारित कृषि की आवश्यकता, हरित क्रांति– पर्यावरण पर इसका प्रभाव।

फसलों के लिए मृदा का महत्व।

सिंचाई पद्धतियॉ, उर्वरकों एवं खादों का उपयोग।

4.2 फसल सुरक्षा :–

प्रमुख पादपनाशक, प्रमुख पादप रोग, इनके नियंत्रण की प्रमुख विधियां (एग्रोकेमिकल)।

पर्यावरण पर एग्रोकेमिकल्स का प्रभाव।

संधारित कृषि के तत्व, मिश्रित फार्मिंग, मिश्रित खेती, फसल चक्र, जैविक एवं आर्थिक पहलू, जैव उर्वरकों एवं जैव पीड़कनाशकों का उपयोग, जैविक नियंत्रण।

4.3 समन्वित पीड़क प्रबन्धन –

समन्वित पीड़क प्रबंधन। फसलों के सुधार में जैव तकनीकी की उपयोगिता।

कृषि उत्पादों का प्रबंधन– संग्रहण, संरक्षण, परिवहन एवं प्रोसेसिंग।

शिक्षक विद्यार्थियों की समझदारी के अनुरूप पूरे सत्र में बालकों से एक परियोजना (Project) अनिवार्य रूप से तैयार करवायेंगे। यह परियोजना नीचे दिये गये उदाहरण में से एक अथवा शिक्षक द्वारा अपने पर्यावरण से संबंधित कोई एक परियोजना हो सकती है –

1. किसी पर्यावरण/ परिवेश के विभिन्न जीवों की परस्पर निर्भरता का अध्ययन।
2. हानिकारक फसल कीटों का अध्ययन एवं उसकी रोकथाम के जैविक उपाय।
3. प्रमुख पादप रोगों एवं उनकी रोकथाम का अध्ययन।
4. पर्यावरण पर एग्रोकेमिकल्स के प्रभावों का अध्ययन।
5. अपने परिवेश के उत्तम फसल चक्र की खोज।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुक्रमणिका

अध्याय क्र.	विषय	पृष्ठ क्र.
अध्याय–(1)	जैव–विविधता की अवधारणा एवं प्रकार	01–09
अध्याय–(2)	जैव–विविधता की पारिस्थितिक भूमिका	10–16
अध्याय–(3)	जैव–विविधता का संरक्षण	17–22
अध्याय–(4)	पर्यावरण प्रबन्धन	23–65
अध्याय–(5)	पर्यावरण प्रबन्धन के उपगमन (एप्रोचेस)	66–91
अध्याय–(6)	संधारित/सतत् विकास	92–111
अध्याय–(7)	संधारित/सतत् विकास के मददगार आधार	112–131
अध्याय–(8)	संधारित टिकाऊ कृषि एवं हरित क्रांति	132–148
अध्याय–(9)	फसल सुरक्षा	149–160
अध्याय–(10)	समन्वित पीड़क प्रबन्धन	161–170

पर्यावरण अध्ययन के प्रश्न–पत्र में अंक विभाजन

कुल अंक – 100

सैद्धांतिक प्रश्न–पत्र पर अंक – 75

क्षेत्रीय क्रियाकलाप (आंतरिक मूल्यांकन) – 25

सैद्धांतिक प्रश्न–पत्र में प्रश्नों के प्रकार एवं निर्धारित अंक।

अ अति लघु उत्तरीय प्रश्न

ब लघु उत्तरीय प्रश्न

स निबन्धात्मक प्रश्न

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

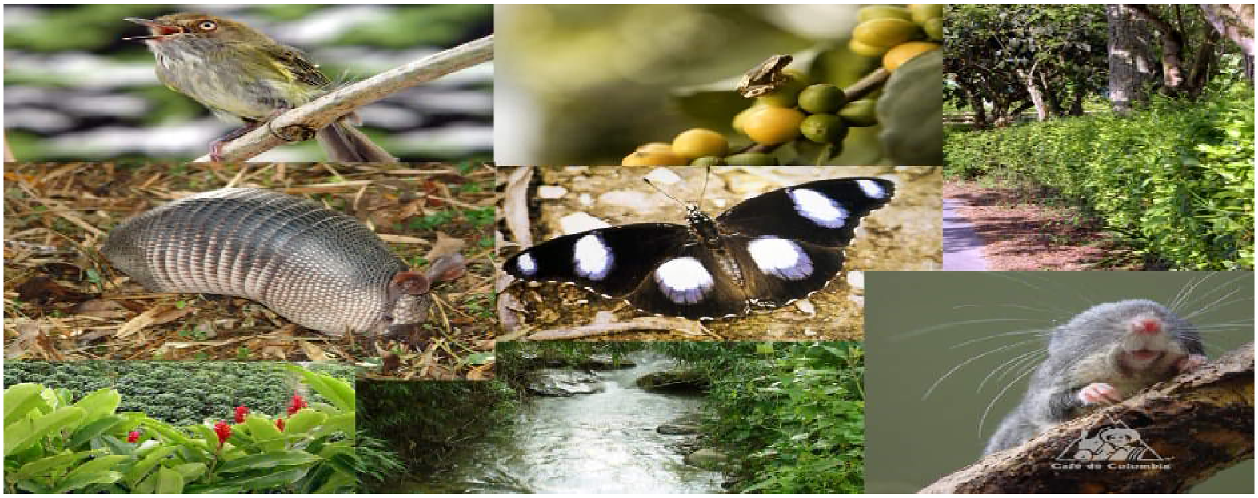

जैव विविधता

[BIODIVERSITY]

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई-1

अध्याय – 1

जैव विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

पाठ्यक्रम – जैव विविधता की अवधारणा तथा महत्व।
जैव विविधता के प्रकार :– प्रजाति, पारिस्थितिक एवं आनुवंशिक जैव विविधता।
प्रकृति में संतुलन। मानव के अस्तित्व हेतु जैव विविधता। संसाधनों की सीमायें।

परिचय (Introduction) – पृथ्वी को हम जगत जननी के नाम से सम्बोधित करते हैं क्योंकि पृथ्वी पर ही जीवन है। हमारा वैभवशाली जीवन प्रकृति की अनुपम देन है। हरे–भरे पेड़ पौधे, विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तु, हवा, पानी, मिट्‌टी, पहाड़, नदियॉं, झरनें, सागर, महासागर ये सब प्रकृति के ऐसे उपहार हैं जो हमारे विकास के लिए आवश्यक हैं तथा हमारी आर्थिक समृद्धि के प्राकृतिक स्त्रोत हैं। इन जैविक और अजैविक तत्वों से मिलकर पर्यावरण का निर्माण होता है। प्रकृति में पाये जाने वाले पेड़–पौधे एवं जीव–जन्तुओं के आकार–प्रकार तथा संरचना में विविधता पायी जाती है। जीवों की यह असाधारण भिन्नता ही जैव विविधता कहलाती है।

जैव विविधता की अवधारणा तथा महत्व

जैव विविधता एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है जो हमें जीवन की सुरक्षा प्रदान करता है। जैव–विविधता, हजारों, लाखों एवं करोडों वर्षों से चले आ रहे विकास की देन है। इस पृथ्वी पर लगभग 20 लाख जैव प्रजातियाँ उपलब्ध हैं और इनमें से कोई भी ऐसा जीव नहीं है जो प्राकृतिक रूप से बेकार हो। सभी जीवों की अपनी अलग–अलग भूमिका होती है जो प्रकृति को संतुलित बनाये रखने में अपना योगदान देती है। जैव विविधता का उत्पादकता सम्बन्धी, व्यवहारिक एवं सामाजिक दृष्टि से महत्व निम्नलिखित तथ्यों से ज्ञात होता है :–

1. विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न, विभिन्न प्रकार की सब्जियॉं, फल, जलाने की लकड़ी घर तथा फर्नीचर हेतु विविध वृक्ष, मांस, चमड़ा, दूध, घी, मक्खन, अण्डे इत्यादि जैव–विविधता की ही देन है।

2. भारतीय वनों से प्राप्त विभिन्न दुर्लभ जड़ी–बूटियों का विश्व के अनेक देशों में मॉग है **सर्पगंधा** एक ऐसा पौधा है जिससे 'हार्ट अटैक' की अत्यन्त प्रभावी दवा बनती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए कच्चा माल वनों से प्राप्त होता है जैसे–लाख, रबड़, बाँस, गोंद, बेंत, मोम, शहद, कत्था, सिनकोना, खालें, हाथी दांत सभी वनों से मिलते हैं। जिससे छोटे उद्योग चलाये जाते हैं। कागज, रेशम,बीड़ी एवं खिलौना उद्योग से अनेक ग्रामीणों को रोजगार प्राप्त होता है, वर्तमान में भारत में लगभग एक करोड़ व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वनों पर निर्भर है।

4. वनस्पतियाँ वायुमण्डल की जहरीली गैस कार्बन डाई आक्साइड का अवशोषण कर आक्सीजन प्रदान करती है जिसे हम शरीर के अन्दर श्वसन क्रिया से लेते हैं।

6. प्राणी, वनस्पतियों द्वारा उत्पादित भोजन को ग्रहण कर पर्यावरण में कार्बनडाई –आक्साइड छोड़ते हैं जिसका उपयोग पौधे भोजन बनाने में करते हैं। इस प्रकार वनस्पतियों एवं प्राणियों के बीच सहजीविता का सम्बन्ध है।

सोयाबीन का पौधा (ऊपर) के जड़ों में गाँठों में बैक्टीरिया होती है।

7. पारिस्थितिक तंत्र को जीवित रखने के लिए विभिन्न प्रजातियों के जीव–जन्तु, वनस्पतियों एवं सूक्ष्म जीवों का जीवित रहना आवश्यक है। इनमें से किसी भी प्रजाति का विनाश होने से खाद्य–श्रृंखला प्रभावित होती है।

8. जैविक विविधता एक मूल्यवान आनुवंशिक संसाधन है। कृषि वैज्ञानिक फसलों में वांछित गुणों वाले जीन का प्रवेश कराके नई किस्म तैयार करते हैं ये रोग प्रतिरोधक, अधिक उपज, बेहतर गुणवत्ता एवं अधिक टिकाऊ होती है। सूक्ष्मजीवों जैसे–जीवाणु, विषाणु, कवक तथा अन्य सूक्ष्म प्रजातियों का उतना ही महत्व है जितना बड़ी प्रजातियों एवं वनस्पतियों का। विविध प्रकार के जीवों के कारण ही पृथ्वी पर जीवन है जिसमें सभी प्रकार के जीवों का अपना विशिष्ट योगदान है। जैव–विविधता से जीन, प्रजाति एवं पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्संम्बन्धों की जानकारी होती है क्योंकि जीन, प्रजातियों के घटक हैं और प्रजातियाँ पारिस्थितिक तंत्र की।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जैव विविधता के प्रकार

जैव विविधता अर्थात जीवों में व्याप्त विषमता, जटिलता और अंतर विभिन्न स्तरों पर हो सकती है। ये स्तर एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, किन्तु इन्हें पृथक से व्यक्त किया जा सकता है। जैव–विविधता के निम्न प्रकार (स्तर) हो सकते हैं –

1. प्रजाति विविधता (Species Diversity) –प्रजाति जीवों का एक ऐसा समूह है जिनमें एक समान जीन समूह पाया जाता है। एक प्रजाति के जीव एक दूसरे से अत्यधिक समानता रखते हैं किसी एक विशेष प्रक्षेत्र के अर्न्तगत उपस्थित प्रजातियों के मध्य पायी जाने वाली विविधताओं को प्रजातीय विविधता कहते हैं इन प्रजातियों में जैव विकास के द्वारा नई जातियों के उत्पन्न करने की क्षमता पायी जाती है। विश्व में जीवों की अनेक प्रजातियाँ हैं जो अपने–अपने वातावरण के लिए विशिष्ट प्रकार से अनुकुलित होती हैं एवं अलग–अलग वातावरण में इनकी भूमिकाएँ भी अलग–अलग होती हैं। इन सभी प्रजातियों के अध्ययन द्वारा हम उन जीवों के आनुवंशिकी संगठन के रहस्यों को समझ सकते हैं मनुष्य की उत्पत्ति के बाद से विभिन्न प्रजातियों का विलुप्तीकरण तेजी से हो रहा है। कम प्रजातियों का अर्थ है जाति धन्यता में कमी। अर्थात प्रजातीय विविधता तथा जाति धन्यता एक दूसरे के अनुक्रमानुपाती होती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सबसे अधिक बिकने वाली 150 दवाओं में अधिकांश का आधार बैक्टीरिया, कवक तथा रीढ़धारी जन्तु है यदि इन प्रजातियों का विनाश रोक भी लिया जावे तो वास्तविक स्वरूप लाने में लगभग एक करोड़ वर्ष लगेंगे।

धान की विभिन्न प्रजातियाँ

2. पारिस्थितिकी विविधता (Ecological Diversity)–जीव मंडल में कोई कभी भी अकेले नहीं रहता बल्कि उसके साथ जीवित तथा निर्जीव वस्तुएँ रहती हैं। किसी स्थान पर उपस्थित सभी जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं की एक साथ उपस्थिति पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है। पारिस्थितिकी विविधता के अन्तर्गत पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक पारिस्थतिकी तंत्र में विशिष्ट प्रकार के जीवों का संगठन पाया जाता है यह जीवों का संगठन ही उस पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना का निर्धारण करता है। पारिस्थितिक तंत्र जल की एक बूंद से लेकर समुद्र तक और घास के छोटे मैदान से लेकर बहुत बड़े वन तक हो सकता है।

भारत में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन और धनी जैव–विविधता पायी जाती है सर्वाधिक जैव–विविधता वाले 12 देशों में भारत की भी गिनती होती है। विश्व का सबसे प्राचीन और सबसे बड़ा कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत में कृषि योग्य फसलों की विविध प्रजातियाँ और किस्में उपलब्ध हैं।

3. आनुवंशिक विविधता (Genetic Diversity)–एक ही प्रजाति के जीवों में होने वाली विविधताओं को आनुवंशिक विविधता कहते हैं प्रत्येक जीव में जीन (अनुवंशिक इकाई) का एक समूह पाया जाता है और विभिन्न प्रकार के जीवों में विविध प्रकार के जीन समूह पाये जाते हैं। एक जीव के आनुवंशिक गुण में होने वाला परिवर्तन समस्त जीन समूह में परिवर्तन कर देता है और इसी परिवर्तन के फलस्वरूप नयी प्रजातियाँ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उत्पन्न होती हैं।

मनुष्य प्रकृति में उपस्थित जीवों एवं पौधों को अपने अनुसार आनुवंशिक आधार पर बदल देता है। सभ्यता के आरंभ से ही मानव ने अपने भोजन एवं रहन–सहन को ऊँचा उठाने की दृष्टि से जीव–जन्तुओं एवं पेड़–पौधों में प्रजनन कर नई–नई नस्लों एवं किस्मों को विकसित किया। उत्पादकता बढ़ाने के लिए अनेक जन्तुओं तथा वनस्पतियों की संकर जातियाँ पैदा की गयीं। जैसे गाय, मुर्गियाँ, सुअर, मछलियाँ, इत्यादि की उन्नतशील प्रजातियाँ उत्पन्न की जा रही हैं। इसी प्रकार कृषि के क्षेत्रों में उन्नतशील बीजों की खोज की जा रही है।

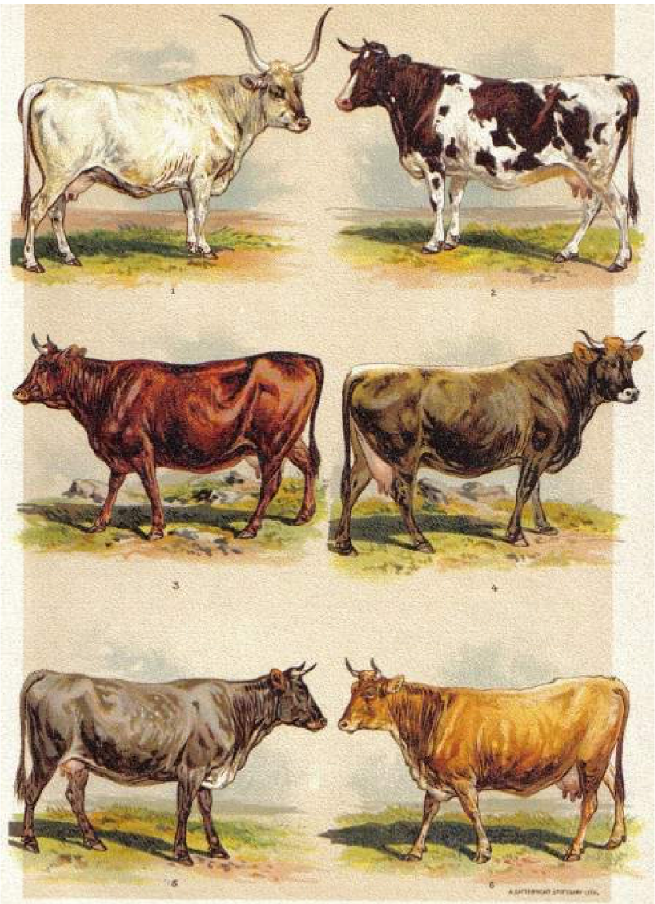

गाय की विभिन्न प्रजातियाँ

प्रकृति में संतुलन

जीव–जन्तुओं का समाप्त होना वर्तमान समय में सबसे गंभीर समस्या है क्योंकि इनकी पूर्ति करना असम्भव है। प्रत्येक देश के पास तीन प्रकार की सम्पदा होती है–1. भौतिक, 2. सांस्कृतिक तथा 3. जैविक। जन्तु तथा पौधे किसी भी देश के धरोहर होते हैं वे लाखों वर्ष के विकास के परिणामस्वरूप बनते हैं मनुष्यों की जनसंख्या विस्फोटक गति से बढ़ रही है। आधुनिक खेती एवं औद्योगिक विकास से पर्यावरण भौतिक एवं रासायनिक रूप से प्रदूषित होने लगा है जिसके कारण जन्तुओं एवं वनस्पतियों की प्रजातियाँ लगातार नष्ट होती जा रही हैं। नयी प्रजातियाँ भी इसी दर से उत्पन्न हुई जिससे औसत संतुलन बना रहा। वर्तमान में समाप्ति की दर नहीं बढ़ी है बल्कि नई प्रजातियों की जन्म दर घटी है क्योंकि उनका प्राकृतिक पर्यावरण नष्ट हुआ है। अतः प्रकृति में संतुलन बनाये रखने के लिए जैव विविधता का संरक्षण आवश्यक है साथ ही इसका महत्व निम्न कारणों से भी है –

1. पर्यावरण संतुलन हेतु।
2. औषधीय महत्व की दृष्टि से।
3. मानव अस्तित्व को बनाये रखने के लिए।
4. दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए।
5. पृथ्वी के बढ़ते तापमान को कम करने के लिए।

मिट्टी, जल और वायु के समान ही जैव विविधता एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन है जिसका क्षरण पर्यावरण के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो सकता है। अगर इसे नहीं रोका गया तो भविष्य में इसके खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो पहले विकृति तथा बाद में विनाश को जन्म देती है अर्थात समाज में जो भी भौतिक विकास हो रहा है वह प्रायः पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों की कीमत पर हो रहा है जिसे हम पर्यावरण प्रदूषण एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के रूप में भुगत रहे हैं। अतः अब समय आ गया है कि प्रकृति में संतुलन बनाये रखने के लिए हम संतुलित विकास की ओर अपना कदम बढ़ाये ताकि आने वाली पीढ़ियों को प्राकृतिक आपदाओं एवं पर्यावरण प्रदूषण से बचाया जा सके।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानव के अस्तित्व हेतु जैव–विविधता

जन्तु तथा वनस्पतियाँ पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखते हैं। ओजोन परत में छिद्र, हरित गृह प्रभाव के कारण वातावरण में गर्मी का बढ़ना, अम्ल वर्षा, भू–जल स्तर में कमी, भू–क्षरण की समस्या, वर्षा का कम होना, सूखा, बाढ़, चट्टानों का खिसकना तथा प्रदूषण की समस्या जैव–विविधता के विनाश का ही परिणाम है जिससे सारा मानव समाज प्रभावित तथा पीड़ित है, जब किसी स्थान विशेष में वन काटे जाते हैं तो इसका प्रभाव दूर–दराज के इलाकों पर भी पड़ता है क्योंकि भू–रसायन चक्रों द्वारा सभी क्षेत्र आपस में जुड़े रहते हैं। वनों की व्यापारिक कटाई के कारण उस पर आश्रित वनवासियों के आजीविका के साधन छिनते जा रहे हैं। वनों के बड़े पैमाने पर कटाई से वन्य प्राणी कम होते जा रहे हैं। जो बचे हैं उनके लिए भोजन की समस्या बनी हुई है। जिसके कारण वे भोजन की तलाश में गाँवों तक पहुँच जाते हैं। प्रदूषित पर्यावरण से फसलों का उत्पादन प्रभावित हो रहा है। वन विनाश पर स्काटलैण्ड के विज्ञान लेखक राबर्ट चेम्बर्स ने लिखा है –'' वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, पशु नष्ट होते हैं, तो उर्वरता विदा ले लेती है और तब ये पुराने प्रेत एक के पीछे एक प्रकट होने लगते हैं–बाढ़, सूखा, आग, अकाल और महामारी।''

मेमथ (विलुप्त)

पर्यावरण और जैव–विविधता समेत समस्त प्राकृतिक संसाधनों पर भारत में दशकों से भारी दबाव पड़ रहा है। भारत में मनुष्यों और पालतू पशुओं की ज्यादा आबादी, घोर गरीबी, निरक्षरता तथा संस्थागत ढाँचों के अभाव के कारण प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण का तेजी से ह्रास हुआ है। वनों के कटने से जैव–विविधता को भारी नुकसान हुआ है। अनगिनत जन्तु एवं पादप प्रजातियाँ विलुप्त के कगार पर पहुँच गयी हैं।

मानव के स्वार्थपरक प्रकृति से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। जैव–विविधता संरक्षण में भी मानव का अपना निहित स्वार्थ छिपा है। क्योंकि बिना अपनी स्वार्थ पूर्ति के मानव जाति अन्य जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों के संरक्षण पर जोर नहीं दे सकता है। मानव जानता है कि उसकी समस्त आवश्यकताएँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जैव–विविधता से जुड़ी है जो अनवरत रूप से अपनी अमूल्य सेवाएँ हमें प्रदान करते रहे हैं किसी भी राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक, पारिस्थितिक तथा अन्य सभी पक्षों पर अपना व्यापक प्रभाव डालती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जैव विविधता की विविध क्षेत्रों में समतुल्य उपादेयता है जो इस बात की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि इनको नष्ट होने से बचाया जाना चाहिए और इन्हें संरक्षित करते हुए इनका अधिकतम उपयोग मानव कल्याण हेतु किया जाना चाहिए।

कुछ प्राणियों को जैसे शिवरात्रि को नन्दी पूजन से, दशहरा को अश्वपूजन से, नागपंचमी को नागपूजन से संबंधित करने का उद्देश्य यही था कि जैव–विविधता के संरक्षण में ही मनुष्य जाति का कल्याण है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संसाधनों की सीमाएँ

संसाधन एक वृहद शब्द है जिसमें प्राकृतिक, आर्थिक, मानवीय या सांस्कृतिक तत्व सभी को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार संसाधन मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा इसके अन्तर्गत जैव और अजैव दोनों प्रकार के पदार्थ सम्मिलित होते हैं। कोई भी संसाधन तब तक निष्क्रिय रहते हैं जब तक कि वे मानव के उपयोग में नहीं आते। अपनी उपयोगिता के कारण ही कोई भी तत्व संसाधन बन जाता है।

अपनी उपयोगिता के कारण संसाधनों को दो वर्गों में बाँटा गया है –

1. **नवीनीकरणीय संसाधन**
2. **अनवीनीकरणीय संसाधन**

1. नवीनीकरणीय संसाधन (Renewable Resources) –वे ससांधन जो लगातार प्रयुक्त होते रहते हैं और प्रकृति में अपने आप ही बनते रहते हैं, नवीनीकरणीय संसाधन कहलाते हैं ।

उदाहरण : वन नवीनीकरणीय संसाधन है क्योंकि जब वनों को काटकर लकड़ी प्राप्त की जाती है तो कुछ समय बाद वनों में पेड़ पुनः उग आते हैं और पुनः लकड़ी तैयार होने लगती है।

2. अनवीनीकरणीय संसाधन (Non Renewable Resources)– वे संसाधन जो प्रकृति में लाखों वर्षों की अवधि में बनकर तैयार होते हैं और समाप्त होने पर दोबारा शीघ्रता से नहीं बनाये जा सकते हैं, अनवीनीकरणीय संसाधन कहलाते हैं।

उदाहरण : कोयला एक अनवीनीकरणीय संसाधन है जो पृथ्वी के अन्दर दबे हुए पेड़ों के अवशेषों से लाखों वर्षों में बनकर तैयार होता है। यदि इसके अंधाधुंध उपयोग से कोयला एक बार समाप्त हो जाय तो इसे शीघ्र दोबारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

दोनों ही प्रकार के संसाधन निश्चित एवं सीमित हैं। यहाँ तक कि नव्य संसाधन जैसे–वायु, जल, मिट्टी की गुणवत्ता नष्ट हो जाती है तो यह अनुपयोगी हो जाता है। प्रदूषित जल, वायु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।

मानव बुद्धिमान होने के कारण इन संसाधनों का मालिक बन बैठा है। उसने प्राकृतिक संसाधन का अंधाधुंध उपयोग किया है। संसाधन समाज की प्रगति के आधार होते हैं किन्तु उनके अंधाधुंध उपयोग से भौतिक सुविधाओं की वृद्धि के साथ–साथ जीवों तथा संसाधनों का संतुलन बिगड़ने लगा है। मानव की भलाई इसी में है कि वह संसाधनों का उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करे। पर्यावरण तथा संसाधन उपयोग सम्बन्धी विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जावे तथा इन संसाधनों का उचित प्रबन्ध किया जावे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानव ने वनों का विनाश इतना अधिक किया है। कि ये संसाधन अनवीनीकरणीय संसाधन बनते जा रहे हैं मृदा एक ऐसा संसाधन है जिसे उचित प्रबन्ध द्वारा उर्वर बनाया जा सकता है। एक फसली एंव आधुनिक खेती के कारण उसकी उर्वरता नष्ट हो जाती है जिसे ठीक करने में हजारों वर्ष लग जाते हैं।

इसी प्रकार वनों के विनाश से विनाशकारी बाढ़ सूखा, भू–क्षरण, भूकम्प, इत्यादि होता है। खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैसों के जलने से वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा बढ़ती है जिससे पृथ्वी का ऊर्जा संतुलन बिगड़ता है।

बाढ़ का दृश्य

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संसाधनों की एक सीमा है यदि इसका अविवेकपूर्ण उपयोग करते हैं तो पर्यावरण पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है। संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करने से संसाधनों एवं पर्यावरण को बचाया जा सकता है।

निष्कर्ष – संक्षेप में यह कह सकते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों को इस तरह से संरक्षित किया जावे कि मानव को उनका अभाव महसूस नहीं हो साथ ही साथ वे निरापद बना रहे। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के शब्दों में '' प्रकृति में सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता है।'' हम प्रकृति से उतना ही ग्रहण करें जितना हमारे लिए आवश्यक हो अर्थात हम प्रकृति का दोहन तो अवश्य ही करे किन्तु शोषण किसी भी कीमत पर नहीं करें क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों पर सिर्फ हमारा ही हक नहीं है बल्कि ये आने वाली पीढ़ियों की धरोहर भी हैं। फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए ही उनका बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करने में ही हमारा सुनहरा भविष्य एवं भलाई है।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. जैव–विविधता को परिभाषित कीजिए।
2. पृथ्वी पर लगभग कितनी जैव प्रजातियाँ उपलब्ध हैं ?
3. जैव विविधता एक मूल्यवान आनुवांशिक धरोहर है, क्यों ?
4. प्रजातीय विविधता किसे कहते हैं ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. आनुवंशिक विविधता क्या है ?
6. प्राणियों को विभिन्न त्योहारों से संबंधित करने का क्या उद्देश्य है ?
7. अपनी उपयोगिता के कारण संसाधनों को कितने वर्गों में बाँटा गया है ?
8. अनवीनीकरणीय संसाधन किसे कहते हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जैव–विविधता की अवधारणा तथा महत्व को समझाइए।
2. जैव–विविधता कितने प्रकार की होती है ? प्रजाति विविधता को समझाइए।
3. प्रकृति में संतुलन बनाये रखने के लिए जैव–विविधता का संरक्षण आवश्यक है क्यों ?
4. मानव के अस्तित्व हेतु जैव विविधता आवश्यक है क्यों ?
5. अनवीनीकरणीय संसाधन किसे कहते हैं ? नवीनीकरणीय संसाधन किन पारिस्थितियों में अनवीनीकरणीय संसाधन हो जाता है, समझाइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रकृति प्रदत्त जैव–विविधता मानव के लिए वरदान है क्यों ?
2. जैव विविधता को परिभाषित कीजिए। इसकी अवधारणा तथा महत्व का संक्षेप में विवेचना कीजिए।
3. जैव–विविधता क्या है ? यह कितने प्रकार की होती है ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
4. संसाधन क्या है ? अपनी उपयोगिताओं के कारण संसाधन को कितने वर्गों में बाँटा गया है ? प्रत्येक का वर्णन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 2

जैव-विविधता की पारिस्थितिक भूमिका

पाठ्यक्रम – विभिन्न प्रजातियों के मध्य पारस्परिक निर्भरता।
भारतवर्ष विविध विपुलता वाला राष्ट्र ।
जैव–विविधता का आर्थिक विभव (महत्व)।
जैव–विविधता में कमी, संकटग्रस्त, संकटापन्न (खतरे में पड़ी) एवं विलुप्त प्रजातियाँ।

विभिन्न प्रजातियों के मध्य पारस्परिक निर्भरता –

प्रकृति असंख्य धागों से निर्मित एक प्रकार का विशाल जाल है जो संतुलित और सौंदर्य पूर्ण है। पृथ्वी के समस्त प्राणी एक–दूसरे पर आश्रित हैं और मानव इस सुकोमल पारस्परिक संबन्धों के इस समन्वित जटिल जाल में मात्र एक कड़ी है, एक धागा है, जब एक प्रजाति लुप्त होती है, एक धागा टूटता है और व्यवस्था विकृत होती है और मानव स्वयं अपने विनाश की ओर ढकेल दिया जाता है।

प्रकृति में यदि एक जन्तु विलुप्त होता है, तो सम्पूर्ण पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि पृथ्वी से सांप नष्ट हो जाए तो चूहों की संख्या बढ़ जाएगी जो फसलों को नष्ट कर देंगे। इसी प्रकार यदि शेर विलुप्त हो जायें तो हिरन जैसे जन्तु जो शेर का भोजन है, इनकी संख्या बढ़ जाएगी। इससे यह प्रदर्शित होता है कि सभी जीव, खाद्य श्रृंखला आपस में मिलकर खाद्य जाल बनाती हैं, क्योंकि खाद्य् श्रृंखलाएँ किसी न किसी रूप में एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। यदि इनमें से एक एक भी खाद्य श्रृंखला नष्ट होगी तो सम्पूर्ण जैव विविधता प्रभावित होगी। यह जैव विविधता, पारिस्थितिक तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक हैं पारिस्थितिक तंत्र में जीव जन्तु व पेड़–पौधे दोनों ही समान रूप में महत्वपूर्ण हैं उदाहरण के लिए यदि पेनिसिलियम पृथ्वी पर से एन्टी बायोटिक की खोज से पहले और सिनकोना, कूनेन के खोज से पहले विलुप्त हो जाता तो क्या होता ? हम कई भयावह बीमारियों से निजात नहीं पाते। इसलिए जैविक विविधता का संरक्षण आवश्यक है।

जैव विविधता का महत्व सिर्फ इसलिए ही नहीं है कि वह पारिस्थितिकी संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है वरन् जैव विविधता द्वारा ही पृथ्वी पर रहने वाला हर प्राणी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है।

भारत में करीब 90 प्रतिशत औषधियाँ पौधों से प्राप्त की जाती हैं। वनवासी अपने जीवन निर्वाह के लिए औषधीय पौधे एवं वनोपज पर ही निर्भर रहते हैं। प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संसाधनों के विकास और प्रबन्ध को काफी प्रभावित करता है।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त विवरण इस बात को उल्लेखित करता है कि प्रकृति में ऐसे अनेक जीव–जन्तुओं का अस्तित्व है जो एक दूसरे पर पूर्णरूपेण अवलम्बित है। इनके पारस्परिक साहचर्य में यदि किसी प्रकार का व्यवधान होता है तो इनका जीवन निश्चितरूप से बाधित होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारतवर्ष विविध विपुलता वाला राष्ट्र –

प्रकृति ने भारत को पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन एवं समृद्ध जैव–विविधता प्रदान की है। यहाँ विभिन्न प्रकार के वास स्थान पाये जाते हैं जहां एक ओर उष्ण–कटिबन्धीय बन से लेकर अल्पाइन बनस्पतियां पायी जाती है वहीं दुसरी ओर शीतोष्ण वन से लेकर कोस्टल वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। यहाँ की विविध विशिष्ट एवं विषम भौगोलिक एवं जलवायुवीय दशाएँ यहाँ की जीव–जातियों को एक ही राष्ट्र विशेष की सीमाओं में होने पर भी विभिन्नताएँ प्रदान करती हैं।

1. भारत की भौगोलिक एवं जलवायवीय दशाएँ (Physiographic and Climatic Conditions of India)–भारत एक विशाल देश है क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में इसका सातवाँ स्थान है। इसका विस्तार पूर्व से पश्चिम की ओर 2933 किमी तथा उत्तर से दक्षिण की ओर 3214 किमी है। भारत के उत्तर में विशाल हिमालय पर्वत श्रेणियाँ तथा दक्षिण में तीन ओर विस्तृत समुद्र भारत की प्राकृतिक सीमा बनाते हैं। भारत में नम उष्णकटिबन्धीय पश्चिमी घाट से राजस्थान के गर्म रेगिस्तान लद्दाख के ठण्डे रेगिस्तान तथा हिमालय की बर्फ से ढँकी चोटियाँ जैसी चरम स्थितियों की जलवायु मिलती है। भारत की धरातल पर पर्वत, पठार, मैदान आदि सभी प्रमुख स्थल पाये जाते हैं। हमारे देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं जिसमें लाल मिट्टी, काली मिट्टी, दोमट मिट्टी, बलुई मिट्टी आदि प्रमुख हैं।

2. भारत में वनस्पतियों की विविधता (Diversity of Vegetation in India) – हमें ज्ञात है कि हमारे देश में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। इस जलवायु विभिन्नता के कारण विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्र विकसित हुए जिसके फलस्वरूप विभिन्न जातियाँ विकसित हुईं इस कारण हमारा देश पादप सम्पदा से भरपूर है। हमारे देश में पादपों की लगभग 45,000 जातियाँ पाई जाती हैं जो सम्पूर्ण विश्व में पाई जाने वाली जातियों का 15 प्रतिशत है।

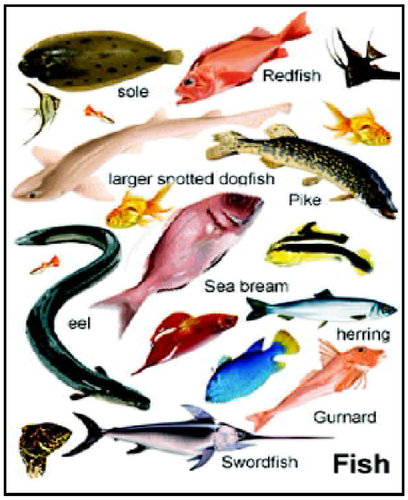

भारत की पादप जैव विविधता की एक विशेषता और है, कि यहाँ से बहुत सी पादप जातियों की उत्पत्ति हुई है जो पूरे विश्व में फैल गयी।

3. भारत में जन्तुओं की विविधता (Diversity of animals in India) – भारत में जन्तुओं की लगभग 81000 जातियाँ पायी जाती हैं इनमें से 80 प्रतिशत प्रजातियाँ केवल कीटों की हैं। इसी प्रकार विश्व में पाई जाने वाली कुल मछलियों की प्रजातियों में से एक तिहाई भारत की जल राशियों में विद्यमान हैं। विश्व की 9000 पक्षियों की जातियों में से लगभग 1200 जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। उभयचरों, पक्षियों और स्तनधारियों की संख्या के आधार पर भारत विश्व में अपना ग्यारहवाँ स्थान रखता है।

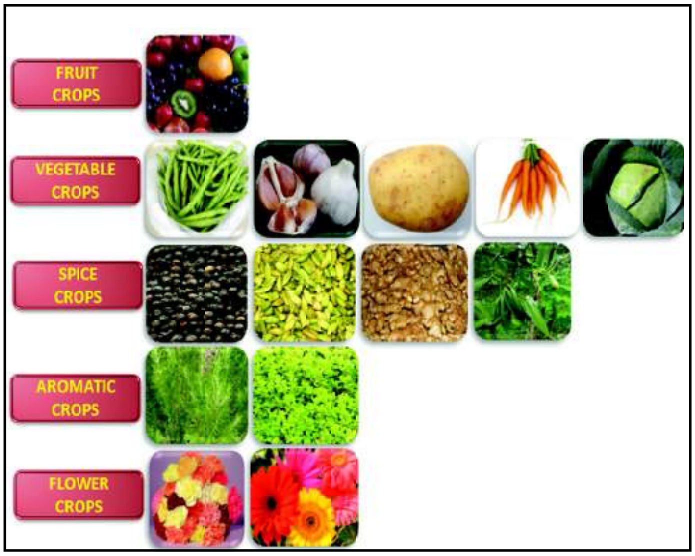

4. भारत में कृषि उपजों की विविधता – भारत एक कृषि उपजों की विविधता वाला राष्ट्र है। अकेले हमारे देश ने विश्व की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लगभग 167 फसलों की प्रजातियॉ प्रदान की है। भारत द्वारा विश्व को प्रदान की गयी मुख्य फसलें हैं –धान, गन्ना, ज्वार, बाजरा, सरसों, जूट, केला, नीबू, आम, कटहल, इलायची, हल्दी, अदरक, धनियां, सौंफ तथा शाकीय औषधियॉ इत्यादि।

इसके अतिरिक्त यहॉ पर चाय, काफी, तम्बाकू, गन्ने की विभिन्न प्रजातियॉ पाई जाती हैं।

5. भारत का पशुधन – भारत में उपयोगी पशुओं की जातियों में भी विभिन्नताएॅ देखने को मिलती हैं। यहॉ पर गाय भैंस की 27 जातियॉ, बकरी की 22 जातियॉ, कुक्कुट की 18 जातियॉ, ऊॅट की 8 जातियॉ, तथा घोड़े के 6 जातियॉ पाई जाती हैं।

उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि भारत एक विविधताओं से परिपूर्ण देश है जितनी विविधताएॅ यहॉ की भौगोलिक तथा जलवायु की दशाओं में पाई जाती हैं उसके अनुरूप यहॉ की जीव–जातियों में विविधताएॅ दृष्टिगोचर होती हैं। अतः भारत एक वृहद विविधताओं वाला देश हैं।

जैव विविधिता का आर्थिक विभव (महत्व)

जैव विविधता के महत्व को देखते हुए आज पूरे विश्व में अपने यथोचित साधन से इसके संरक्षण का प्रयास कर रहे हैं। जैव विविधता के क्षरण या इसकी हानि से हमारा पर्यावरण कितना प्रभावित होगा इसका आकलन आर्थिक दृष्टि से भी किया जाता है। वर्तमान समय में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय विज्ञान में एक नई शाखा का उदय हुआ है जिसमें आर्थिक दृष्टि से जैव विविधता का मूल्यांकन भी किया जाता है। इस नई शाखा को 'पर्यावरण अर्थशास्त्र' कहा जाता है। पर्यावरणीय अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण के मूल्यांकन की विधि ज्ञात करना है जिसकी सहायता से जीन विविधता, जाति विविधता, समुदाय विविधता और पारिस्थितिकीय विविधता इत्यादि का आर्थिक मूल्य ज्ञात किया गया है। इन आर्थिक मूल्यों के अन्तर्गत सम्पदा का बाजारू एवं भावी मूल्यों का ऑकलन किया जा सकता है जैसे किसी जानवर का उपयोग मांस के लिए किया जाता है एवं उसका ऑकलन पर्यटन की दृष्टि से भी किया जा सकता है।

आर्थिक मूल्य को निम्नानुसार विभिन्न मूल्यों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्रत्यक्ष मूल्य **(Direct Value)**
2. अप्रत्यक्ष मूल्य **(Indirect Value)**

1. प्रत्यक्ष मूल्य (Direct Value) – वह सम्पदा जिसे उत्पन्न किया जा सकता है एवं इस मूल्य का उपयोग किया जाता है, इसे उपभोग मूल्य भी कहते हैं। इन मूल्यों की गणना हेतु समूहों का निरीक्षण किया जाता है। आयात–निर्यात सांख्यिकी का निरीक्षण करके एवं इसके अन्य लाभों के आधार पर प्रत्यक्ष मूल्य को दो भागों में विभक्त किया गया है –

(a) वह सम्पदा जिसे स्थानीय स्तर पर उपभोग किया जाता है तथा जिनका राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उल्लेख नहीं होता क्षयशील उपभोग मूल्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए जंगल की जलाऊ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लकड़ियों का उपयोग स्थानीय निवासी ईंधन के लिए करते हैं चूँकि इनका उपयोग स्थानीय स्तर पर हो रहा है इस कारण क्षयशील उपभोग मूल्य कहा जाता है।

(b) वह सम्पदा जिनकी पैदावार तो जंगल में होती है लेकिन जिसका उपभोग राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी होता है उत्पादी उपभोग मूल्य कहलाता है। अर्थात इनसे आर्थिक लाभ होता है। उदाहरण के लिए जंगल की इमारती लकड़ी (सागौन, शीशम, बीजा इत्यादि) को प्राप्त करके इसका व्यापारिक उपयोग किया जाता है एवं इससे जो आर्थिक लाभ होगा उत्पादी उपभोग मूल्य होगा।

2. अप्रत्यक्ष मूल्य (Indirect Value) – अप्रत्यक्ष मूल्य का अर्थ है–सम्पदाओं के व्यक्तिगत उपभोग के बिना आर्थिक लाभ होना। यह वह लाभ है जो जैव विविधता द्वारा प्रदान किये जाते हैं जिसमें सम्पदा न तो उत्पन्न होती है और न ही उसका नाश होता है।

इस प्रकार के अप्रत्यक्ष मूल्य के लाभ के अन्तर्गत मनोरंजन, शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान, जल की गुणवत्ता, मानवीय समाज के लिए भावी विकल्प उत्पन्न करना इत्यादि आते हैं।

जैव विविधता का वर्तमान समय में अनेक महत्व है यह प्राकृतिक जीव बैंक हैं। इन्हीं के द्वारा अनेक प्रजातियाँ प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होती रहती हैं। मिट्टी, जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति इन जीवों के लिए आधार बनती हैं। प्राकृतिक जीन द्वारा प्राप्त आनुवांशिक विविधता ही खेती, उद्योग व दवाइयों के विकास में भरपूर योगदान प्रदान करती हैं। ग्रामीण परिवेश में तो ये जंगली प्रजातियाँ मूलभूत आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा, चारा, ईंधन इत्यादि) का आधार हैं। इसके अतिरिक्त आनुवांशिकी विविधता तथा जैव विविधता जल व मिट्टी का संरक्षण, नर्सरी व विकसित प्रजातियों का सृजन करने के लिए जर्म प्लाज्म दाता की तरह ही नहीं अपितु उनके परागण, निषेचन तथा अगली पीढ़ी पैदा करने का वातावरण तैयार करने के लिए जिम्मेदार हैं। इस प्रकार जैव विविधता के अनेक आर्थिक लाभ हैं।

जैव–विविधता में कमी, संकटग्रस्त, संकटापन्न (खतरे में पड़ी) विलुप्त प्रजातियाँ–

नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण पेड़–पौधे, जीव–जंतु एक ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं जहाँ वे संकटग्रस्त, संकटापन्न या कुछ समय बाद विलुप्तीकरण की स्थिति में होंगे । विश्व में बहुत–सी प्रजातियाँ संकटापन्न या खतरनाक स्थिति में पहुँच चुकी हैं। जैव–विविधता के खतरनाक स्थिति में पहुँचने के निम्न कारण हैं–

1. आवास का विनाश – विलुप्त होती प्रजातियों का सबसे प्रमुख कारण है उनके प्राकृतिक आवासों का नष्ट होना है। मानव ने अपने स्वार्थ की पूर्ति तथा विभिन्न आवश्यकताओं के लिए निरंतर जंगलों को काटता चला गया। वन अथवा जंगल जीव–जंतुओं व पौधों के प्राकृतिक आवास होते

तितलियाँ– विलुप्ति के कगार पर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हैं जिनके खत्म होने से कई प्रजातियॉं विलुप्त हो गईं। उदाहरण के लिए हमारे देश में पश्चिमी घाट पर पाई जाने वाली 370 तितलियों की प्रजातियों में से 70 प्रजातियॉं विलुप्त होने के कगार पर हैं ।

2. वन्य जीवन में अनाधिकार घुसपैठ – प्राचीन काल से ही मानव अपने शौक तथा आहार के लिए जंतुओं का शिकार करता आया है। मानव द्वारा वन्य जीवों का शिकार दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में इसका प्रमुख कारण वन्य जीवों के खाल, सींग, दॉंत, हड्डियों आदि का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारी मॉंग है। इनकी कीमत अत्यधिक होने के कारण इनकी तस्करी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में होती है। यही नहीं विभिन्न पादप प्रजातियों को अवैध रूप से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बेचा जा रहा है। उदाहरण के लिए–हमारे देश की चंदन लकड़ी तथा बहुमूल्य जड़ी बूटियॉं तस्करों के लिए सोने की खान है ।

3. अतिदोहन – प्रकृति में उपस्थित पेड़–पौधे एवं जीवों का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। आर्थिक रूप से प्रजातियों का उपयोग होने के साथ ही प्रयोगशालाओं में भी पादपों तथा जंतुओं का उपयोग बड़े स्तर पर होने के कारण उनकी संख्या लगातार कम होती जा रही है और वे विलुप्तता के कगार पर पहुॅंच रहे हैं । उदाहरण–बंदर, खरगोश, मेंढक इत्यादि ।

4. प्रदूषण – वर्तमान समय में आधुनिकीकरण एवं औद्योगिकीकरण के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए प्रदूषण से स्वयं मानव जाति के साथ–साथ अन्य जैव समुदायों को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण आदि से भी न जाने कितनी प्रजातियॉं विलुप्तीकरण के कगार पर पहुॅंच चुकी हैं। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र में अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग ने अनेक कीट प्रजातियों को समाप्त करने का कार्य किया है। इसी प्रकार औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकले हुए व्यर्थ जल को नदियों, तालाबों में छोड़ने से यहॉं की जलीय जैव विविधता बुरी तरह प्रभावित हुई है।

5. अन्य खतरे – उपर्युक्त खतरों के अतिरिक्त अन्य खतरे प्रजातियों को हानि पहुॅंचाने में भूमिका निभा रहे हैं जैसे –

1. प्राकृतिक आपदाएॅं (बाढ़, सूखा, भूकंप इत्यादि)
2. जीवों की प्रजनन क्षमता में कमी
3. खाद्य श्रृंखला में जीवधारी की स्थिति
4. सामाजिक एवं आर्थिक कारण
5. परागण करने वाले स्रोतों की संख्या में कमी
6. उन्नत प्रजातियों की फसलों को उगाना।

संकट ग्रस्त जातियॉं –

ऐसे जीवों की जातियॉं जो पूरी तरह लुप्त नहीं हुए हैं, परंतु लुप्त होने के कगार पर हैं, संकटग्रस्त जातियों की श्रेणी में आते हैं। इनकी संख्या इतनी कम रह गयी है कि अगर इनका संरक्षण नहीं किया गया तो भविष्य में इनके पूरी तरह समाप्त होने की संभावना है। उदाहरण के लिए भारतीय चीता, काला हिरण, बारहसिंगा, गिद्ध, देशी मुर्गियॉं, भारतीय गायों की कई बहुमूल्य जातियॉं, देशी चावल, बाजरा, ज्वार इत्यादि।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चीता

बारहसिंगा

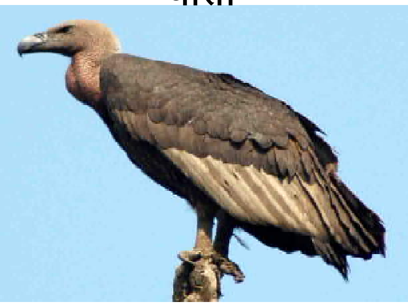

गिद्ध

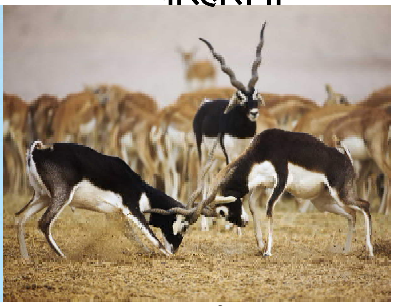

काला हिरण

संकटापन्न (खतरे में पड़ी) जातियाँ –

ऐसे जीवों की जातियाँ जिनके भविष्य में संकट में पड़ने की संभावना है, संकटापन्न जातियों की श्रेणी में आते हैं। इन जीवों की संख्या धीरे–धीरे कम होती जा रही है और चूँकि इनका उपयोग सीमित हो गया है अतः इनके घटते रहने की संभावना बढ़ती जा रही है। उदाहरण के लिए देशी गायों, भैसों, बकरियों तथा तमाम तरह के फसलों की देशी प्रजातियाँ।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे जीवों की जातियाँ हैं जिनका मनुष्य के द्वारा केवल शौक के लिए या दवा इत्यादि में उपयोग के कारण शिकार कर दिया जाता है फलस्वरूप इनकी संख्या में भारी गिरावट आ रही है। उदाहरण के लिए शेर, बाघ, भालू, हाथी, हिरण इत्यादि।

विलुप्त प्रजातियाँ – ऐसे जीवों की जातियाँ जो संपूर्ण धरती से गायब हो चुकी हैं और उनकी कहीं भी मिलने की संभावना नहीं है, विलुप्त जातियों की श्रेणी में आते हैं। जैसे –डायनासोर, लाल पांडा, क्यूबन लाल तोता, किंग फिसर इत्यादि।

एक बार विलुप्त होने पर किसी जाति के विशिष्ट जीन कभी प्राप्त नहीं हो सकते। मानव बड़े पैमाने पर विभिन्न स्थलीय, जलीय तथा वायवीय प्राणियों का शिकार करता रहा है जिसके कारण अनेक जीव जातियाँ सदा–सदा के लिए जैवमंडल से विलुप्त हो गई हैं।

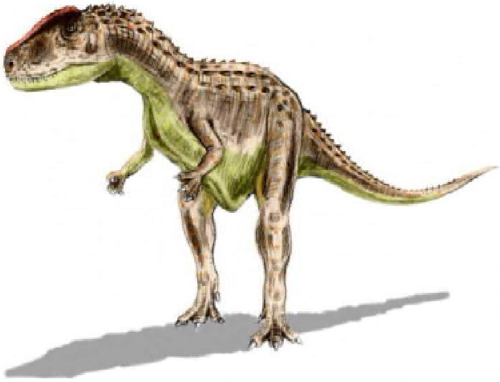

डायनासोर

क्यूबन लाल तोता

किंगफिशर

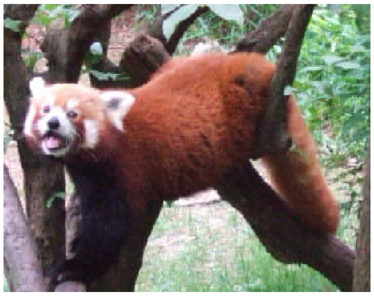

लाल पांडा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निष्कर्ष –

जैविक जातियों की उत्पत्ति और उनका एक निश्चित अंतराल के बाद समाप्त होना प्रकृति का नियम है परंतु मनुष्य के स्वार्थी एवं अमानवीय क्रियाकलापों के कारण अनेक जैविक जातियों की विलुप्ति का खतरा बढ़ गया है फलस्वरूप इनका वर्तमान में संरक्षण की महती आवश्यकता है। जैव जातियों के संरक्षण हेतु अनेक प्रोजेक्ट बनाये गये हैं तथा देशभर में अनेक राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभ्यारण्यों की स्थापना की गई है।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रकृति में एक जंतु विलुप्त हो जाये तो पारिस्थितिक तंत्र पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. भारत में जंतुओं की लगभग कितनी जातियॉं पायी जाती हैं ?
3. भारत द्वारा विश्व को प्रदान की गई मुख्य फसलें कौन–कौन सी हैं ?
4. आर्थिक दृष्टि से जैव–विविधता के मूल्यांकन की नई शाखा को क्या कहते हैं ?
5. 'उत्पादी उपभोग मूल्य' किसे कहते हैं ?
6. विलुप्त प्रजातियॉं किसे कहते हैं ?
7. प्रत्यक्ष मूल्य को कितने भागों में विभक्त किया गया है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विभिन्न प्रजातियों के मध्य पारस्परिक निर्भरता का क्या आशय है ? स्पष्ट कीजिए।
2. "भारतवर्ष विविध विपुलता वाला राष्ट्र है" इस कथन की संक्षिप्त पुष्टि कीजिए।
3. 'संकटग्रस्त जातियॉं' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. भारत में कृषि–उपजों की विविधता का वर्णन कीजिए।
5. जैव विविधता के आर्थिक महत्व को समझाइए।
6. जैव–विविधता की कमी में अन्य खतरे कौन–कौन से हैं ? स्पष्ट कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. जैव–विविधता क्या है ? जैव विविधता में कमी के क्या कारण हैं ? विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

   1. संकटग्रस्त जातियॉं 2. संकटापन्न जातियॉं 3. विलुप्त जातियॉं
3. "भारतवर्ष एक विविध विपुलता वाला राष्ट्र है।" इस कथन का विस्तृत वर्णन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 3

जैव विविधता का संरक्षण

पाठ्यक्रम – इन सिटू तथा एक्स सिटू संरक्षण।
जनता एवं जनजीवन संघर्ष को कम करना।

जैव विविधता का संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

जीव–जन्तुओं का समाप्त होना वर्तमान समय में सबसे गंभीर समस्या है। प्रत्येक देश के पास तीन प्रकार की सम्पदा 1. भौतिक, 2. सांस्कृतिक तथा 3. जैविक होती है। जंतु तथा पौधे किसी भी देश की धरोहर होती है। वे किसी विशिष्ट स्थान पर हुए लाखों वर्ष के विकास के परिणामस्वरूप बनते हैं। मनुष्य की जनसंख्या विस्फोटक गति से बढ़ रही है। औद्योगिक एवं कृषि विकास के कारण पर्यावरण प्रदूषित होने लगा है जिसके कारण जीवों की प्रजातियॉ नष्ट होती जा रही हैं। वर्तमान समय में नई प्रजातियों की जन्मदर घटती जा रही है लेकिन समाप्ति की दर नहीं बढ़ी है क्योंकि उनके प्राकृतिक पर्यावरण भी नष्ट हुए हैं। पशु–पक्षियों के आवास नष्ट होने, शिकार करने तथा वन्य जीवन का व्यापार करने के कारण अनेक वन्य प्रजातियॉ नष्ट हो गई हैं। इस कारण जैव प्रजातियों का संरक्षण आवश्यक है इस संरक्षण के प्रमुख कारण निम्न हैं –

1. पोषण सम्बन्धी एवं औषधीय महत्व की दृष्टि से।
2. मानव अस्तित्व को बनाए रखने हेतु।
3. पर्यावरण संतुलन हेतु।
4. दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु।
5. पृथ्वी के बढ़ते तापमान को कम करने हेतु।
6. ओजोन स्तर के ह्रास को कम करने हेतु।
7. वनो एवं जैविक परिपूर्णता के संरक्षण हेतु।

जैव–विविधता के संरक्षण के उपाय

जैव विविधता के महत्व को देखते हुए इसका संरक्षण अतिआवश्यक है। जैव विविधता का संरक्षण दो विधियों द्वारा किया जा सकता है –

(1) स्वस्थान संरक्षण (In-situ Conservation) – वह संरक्षण जो उस स्थान में हो जहॉ पादप या प्राणी पाये जाते हैं, इन–सिटू संरक्षण कहलाता है। दूसरे शब्दों में जीवों के मूल आवास में ही यदि उनको संरक्षित किया जाये तो वह इन–सिटू संरक्षण कहलाता है। उदाहरण के लिए कुछ प्राणी एक निश्चित वन में पाये जाते हैं उन प्राणियों का संरक्षण उनके उसी प्राकृतिक आवास में कर दिया जाता है तो यह इन–सिटू संरक्षण (स्वस्थान संरक्षण) कहलाता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य इत्यादि आते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्राचीनकाल से ही हमारे देश में वन्य प्राणियों एवं पादपों का संरक्षण किसी न किसी रूप में किया जा रहा है। पौधों एवं जन्तुओं का धार्मिक महत्व समझाकर उनका संरक्षण किया जाता रहा है। जनजातियों में तो पादपों और जन्तुओं के नाम से स्थानीय जातियों के गोत्र होते हैं जिससे वे अपने गोत्र की रक्षा के लिए जीवों का संरक्षण करते हैं। वर्तमान में शासकीय संस्थाएं संरक्षण का कार्य कर रही हैं। इन–सिटू संरक्षण के अन्तर्गत अभ्यारण्य, राष्ट्रीय उद्यान, प्राणी उद्यान तथा विभिन्न प्रोजेक्ट चलाकर संरक्षण का कार्य किया जा रहा है।

आज भारत में 27 राष्ट्रीय उद्यान, 413 अभ्यारण्य हैं जो देश के भौगोलिक क्षेत्र के 4 प्रतिशत भाग तक फैली है।।

1. अभ्यारण्य (Sanctuaries) – ऐसा क्षेत्र या शरण स्थल जो वन्य जीवों के बचाव और देख–रेख के लिए संरक्षित होता है तथा जहाँ कुछ सीमा तक मानवीय क्रिया–कलाप जैसे घास काटना, कृषि आदि की अनुमति होती है, अभ्यारण्य कहलाता है। भारत में कुछ महत्वपूर्ण अभ्यारण्य निम्न हैं–

1. अन्नामलाई (तमिलनाडु)
2. शिकारी देवी (हिमाचल प्रदेश)
3. पेरियार (केरल)
4. रानीपुर (उत्तराखण्ड)
5. सरिस्का (राजस्थान)
6. पलामू (झारखण्ड)
7. नागार्जुन सागर (तेलंगाना)
8. बारनवापारा (छत्तीसगढ़)

नागार्जुन सागर अभ्यारण्य

2. राष्ट्रीय उद्यान (National Park) – वह संरक्षित क्षेत्र जो वन्य जीवों की उन्नति व विकास के लिए आरक्षित होता है तथा जहाँ वृक्ष उन्मूलन, चारण, आखेट तथा अन्य मानवीय क्रिया–कलापों पर पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध होता है, राष्ट्रीय उद्यान कहलाता है।

भारत में कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यान निम्न हैं–

1. कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान (उत्तराखण्ड)
2. सुन्दरवन राष्ट्रीय उद्यान (पश्चिम बंगाल)
3. गिर राष्ट्रीय उद्यान (गुजरात)
4. बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान (उत्तरप्रदेश)
5. दुधवा राष्ट्रीय उद्यान (उत्तरप्रदेश)
6. बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान (कर्नाटक)
7. कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान (छत्तीसगढ़)
8. रणथंभोर राष्ट्रीय उद्यान (राजस्थान)

कुछ संकटापन्न वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए हमारे देश में विशिष्ट परियोजनाएँ चलाई जा रही हैं। जिससे इन विशिष्ट प्राणियों को बचाने की कोशिश की जा रही है। इनमें से कुछ परियोजनाएं निम्न हैं –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. बाघ परियोजना (Project Tiger) – इसके अन्तर्गत भारत सरकार ने कुछ राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों को वैधानिक रूप से बाघ आरक्षित क्षेत्र के रूप में मान्यता दी है। जैसे इन्द्रावती टाइगर प्रोजेक्ट दंतेवाड़ा (छत्तीसगढ़)।

2. मगर परियोजना (Crocodile Project) – इस परियोजना हेतु अभ्यारण्यों का चुनाव किया गया है जैसे कृष्णा अभ्यारण्य (तेलंगाना), चम्बल अभ्यारण्य (मध्यप्रदेश)।

3. हाथी परियोजना (Elephant Project) – इस परियोजना के अन्तर्गत हाथियों के विकृत आवास सुधारकर उनकी संख्या में वृद्धि करना है।

इसके अतिरिक्त आर्द्र भूमि, मैंग्रूव वनस्पति तथा प्रवालभित्तियों को संरक्षित करने के लिए भी परियोजनाएँ चलाई जा रही हैं।

मगर परियोजना

(2) परस्थान संरक्षण (Ex-situ Conservation) – प्राणियों को उनके प्राकृतिक आवास से हटाकर अलग स्थान पर किए गये संरक्षण को पर स्थान या एक्स सिटू कन्जरवेशन कहते हैं। सामान्यतः वानस्पतिक उद्यान, चिड़िया घर, प्राणि उद्यान, कृत्रिम जलकुण्ड, कृषि अनुसंधान केन्द्र, वानिकी अनुसंधान केन्द्र जीव प्रजातियों के कृत्रिम आवास होते हैं जहाँ इनको संरक्षित रखा जाता है, ऐसे प्रयास वैसे क्षेत्रों में किये जाते हैं जहाँ भोजन, पानी, आवास, दावानल या कठिन जीवन परिस्थितियाँ होती हैं।

परस्थान संरक्षण के तरीके (Methods of Ex-Situ Conservation)

इसके अन्तर्गत निम्न तकनीकों को प्रयोग में लाया जाता है –

1. बीज भंडार, जीन भंडार या जर्म प्लाज्म भंडार – बीज भंडार में बीज लम्बी निद्रा के बाद भी अंकुरित हो सकते हैं। जहाँ ऐसे बीजों का भंडारण होता है बीज भंडार कहते हैं। जीन भंडार में जीवों के किसी ऐसे जीवित भाग को संरक्षित किया जाता है जिससे जीव पुनः विकसित किया जा सकता है। इसी प्रकार जर्म प्लाज्म को भी संरक्षित किया जाता है।

2. लम्बी अवधि संरक्षित प्रजनन – लुप्त प्राय जीवों को लम्बी अवधि तक निगरानी में प्रजनन करवाया जाता है तथा समुचित संख्या होने पर उनके प्राकृतिक आवासों में पहुँचा दिया जाता है। उदाहरण–शेर, हिरण इत्यादि।

3. छोटी अवधि संरक्षित प्रजनन – इनके प्राकृतिक आवासों में ही समुचित आबादी होने तक संरक्षित प्रजनन की विधि भी विलुप्त प्राय जीवों के लिए मददगार साबित हुई है। उदाहरण चीता, भेड़िया इत्यादि।

4. जानवरों का स्थान परिवर्तन (Animal Translocations)– प्राणियों को जंगल से पकड़कर दूसरे इलाकों में जहाँ सुविधाएँ उपयुक्त हैं–भेज देना ही उनका कृत्रिम स्थान परिवर्तन कहलाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए

1. जब जानवरों से मनुष्य के जीवन को खतरा हो।
2. जब कोई जीव कमजोर हो।
3. आवास का नष्ट होना, बेलगाम शिकार या अन्य कारण।
4. आश्रित जीवों का पलायन हो गया हो।
5. आबादी अधिक हो जाने पर।

5. जानवरों की वापसी (Animal Reintroduction) – संरक्षण में जीवों की आबादी को विकसित कर वापस प्राकृतिक आवास में छोड़ना हो उनकी वापसी कहलाती है।

6. कृत्रिम प्रजनन (Artificial insemination) – जैव विविधता को सुरक्षित रखने का यह एक कारगर तरीका है जिसमें मादाओं को कृत्रिम ढंग से गर्भाधान कराया जाता है।

7. वानस्पतिक उद्यान (Botanical Gardens) – वानस्पतिक उद्यान एक ऐसा क्षेत्र है जहॉं फूलों एवं सब्जियों को उगाया जाता है। ये सौन्दर्य, स्वच्छ वातावरण व विदेशी प्रजातियों की प्रदर्शनी व शिक्षण के लिए लगाये जाते हैं। विश्व के लगभग 600 वनस्पति उद्यानों में कई विलुप्त प्राय पौधों के अस्तित्व को बरकरार रखा गया है।

8. प्राणि उद्यान (Zoo) – जिस प्रकार पौधों को वानस्पतिक उद्यान में लगाया जाता है वैसे ही संरक्षित प्राणी को प्राणी उद्यान में रखकर उसके भोजन, प्रजनन इत्यादि की व्यवस्था कर उसे संरक्षित किया जाता है।

जनता (मानव) एवं वनजीवन संघर्ष को कम करना

मनुष्य व वन्य जीवों का सम्बन्ध आदिकाल से ही रहा है। एक समय था जब मनुष्य पूर्ण रूपेण प्राकृतिक आवासों पर ही निर्भर था। प्रत्येक जीवधारी का अपना स्वयं का वासस्थान तथा निकेत होता है। वासस्थान किसी भी जीवधारी के निवास स्थान का पता है तथा निकेत उसके व्यवसाय या कार्यात्मक पहलू को प्रदर्शित करता है। निकेत को निम्नानुसार परिभाषित किया जा सकता है–''निकेत एक ऐसा विशिष्ट स्थान होता है जहॉं से जीवधारी को अपने भोजन की आपूर्ति होती है।''

मनुष्य के क्रियाकलापों से जब जीवधारियों के वास स्थान नष्ट हो जाते हैं तो उस स्थिति में निकेत का फैलाव भी कम रह जाता है। ऐसी स्थिति में खाद्य जाल असंतुलित हो जाता है। ऐसी स्थिति में वन्य जीव अपने प्राकृतिक वास स्थानों से पलायन करके मनुष्य के निवास स्थानों, कृषि क्षेत्रों की तरफ आ जाते हैं जहॉं उन्हें मनुष्यों द्वारा विभिन्न कारणों से मार दिया जाता है। इस प्रकार यह प्रवासीय संघर्ष ही मानव एवं वन्यजीवों के बीच संघर्ष की धूरी को जन्म देता है।

मनुष्य की जनसंख्या में वृद्धि के कारण ही मानव वन्य जीव संघर्ष में भी बढोत्तरी हो रही है। जैव–विविधता एक ऐसा संसाधन है जो यदि एक बार समाप्त हो जाए तो उसे दोबारा से नहीं बनाया जा सकता है अर्थात इसका विलुप्तीकरण हमेशा के लिए हो जाता है। आज वैज्ञानिकों के पास ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे भूतकाल में विलुप्त हुए जीव को पुनः उत्पन्न किया जा सके। अतः जैव विविधता का संरक्षण करना एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है इसका संरक्षण जनता एंव वन जीवन के संघर्ष को कम करके किया जा सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानव–वन्य जीव संघर्ष के उदाहरण –

1. वनवासियों तथा वन्यजीवों में संघर्ष– प्राचीन काल से ही वनवासी जंगलों में रहते आये हैं। इनका जीवन निर्वाह वनों से प्राप्त वनोपज एवं लकड़ियों से होता आया है। वनो के निरंतर ह्रास तथा वनों की भूमि राष्ट्रीय उद्यान तथा अभ्यारण के रूप में संरक्षित किये जाने के कारण ये अपने अस्तित्व हेतु संघर्ष करेन को मजबूर हुए है

2. नगरीय समुदाय के साथ वन्यजीव संघर्ष– वनों की अंधाधुंध कटाई, बढते औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या के कारण वनों का क्षेत्रफल काफी सीमित हो गया है जिससे वन्यजीव नगरों एवं कृषि क्षेत्रों की तरफ विचरण कर जाते हैं जिससे आये दिन नगरीय समुदाय एवं वन्यजीवों के साथ संघर्ष होता रहता है।

3. विदेशी तथा स्थानीय पादप जातियों का परस्पर संघर्ष– किसी नये स्थान पर विदेशी प्रजातियों का प्रवेश विनाशकारी परिणाम देता है। प्रकृति में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहॉ पर विदेशी जातियों का प्रवेश कराने पर स्थानीय समुदाय असंतुलित हुआ है अथवा पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है उदाहरण के लिए शहरों, नगरों तथा सड़कों के सौन्दर्यीकरण के लिए विदेशी प्रजाति का यूकेलिप्टस को रोपित किया गया। यूकेलिप्टस पौधा हरित क्रांति लाने के स्थान पर उन स्थानों को हरे रेगिस्तान में परिवर्तित कर रहा है।

अन्य विदेशी पादप प्रजातियॉ जैसे जलकुम्भी, गाजर घास, विलायती बबूल जैव विविधता के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं।

मानव–वन्यजीव संघर्ष को कम करना

प्राचीन काल से ही हमारे देश में वन्यजीवों एवं पादपों का संरक्षण किसी न किसी रूप में किया जा रहा है। वन एवं वन्य जीवों के प्रति स्नेह तथा आदर की भावना रखना हमारे देश भारत की संस्कृति का एक अंग रहा है। यहॉ वृक्षों, तालाबों, नदियों की पूजा आदिकाल से होती आ रही है।

मानव–वन्यजीव संघर्ष को कम करने हेतु निम्न उपाय सुझाये जा सकते हैं–

1. मानव वन्यजीव संघर्ष को वन्यजीवों के प्राकृतिक वासस्थान को सुधारकर किया जा सकता है, प्रत्येक वन्यजीव समूह की आवश्यकताएँ अलग–अलग होती हैं। अतः वास स्थलों में सुधार करते समय यहॉ पर जीवन–यापन करने वाली जाति विशेष की प्राकृतिक आवश्यकताओं का समग्र तौर पर ध्यान रखा जाना चाहिए। प्राकृतिक वास स्थानों में सुधार करते समय वहॉ पर वन्यजाति विशेष के अनुसार भोजन, पानी सुरक्षा इत्यादि की विशेष व्यवस्था करनी चाहिए ताकि वन्यजीव मानव बस्तियों की तरफ भूलकर भी नहीं जावे तथा इसका परिणाम मानव–वन्यजीव संघर्ष के रूप में उजागर नहीं हो।
2. प्राकृतिक आवासों के साथ–साथ वन्यजीवों के ऋतु प्रवास स्थलों को भी संरक्षित किया जाना चाहिए।
3. राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों के माध्यम से वन्यजीवों के महत्व को प्रचारित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

मानव एवं वनजीवन के मध्य संघर्ष अनिवार्य रूप से नियन्त्रित हो जाना चाहिए क्योंकि वन्यजीव जहॉ एक ओर जैव–विविधता में अभिवृद्धि करते हैं वहीं दूसरी ओर ये पर्यावरण की शुद्धता के सूचक भी होते हैं ये स्वच्छ पर्यावरण को निर्मित करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. स्व–स्थान (इन–सिटू) संरक्षण को परिभाषित कीजिए।
2. भारत के किन्हीं दो प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों के नाम लिखिए।
3. छत्तीसगढ़ में बाघ परियोजना कहाँ पर स्थित है ?
4. 'लम्बी अवधि संरक्षित प्रजनन' से क्या आशय है ?
5. कृत्रिम प्रजनन का क्या तात्पर्य है ?
6. नगरीय समुदाय के साथ वन्यजीव संघर्ष के क्या कारण हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जैव–प्रजातियों का संरक्षण क्यों आवश्यक है ?
2. परस्थान (एक्स–सिटू) संरक्षण के कौन–कौन से तरीके हैं ? संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
3. मानव वन्य–जीव संघर्ष को किस प्रकार कम किया जा सकता है ?
4. राष्ट्रीय उद्यान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. अभ्यारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान में क्या अन्तर हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जैव–विविधता के संरक्षण से क्या आशय है ? जैव प्रजातियों का संरक्षण क्यों आवश्यक है? परस्थान संरक्षण में राष्ट्रीय उद्यान एवं वनस्पति उद्यान का क्या महत्व है ?
2. मानव (जनता) एवं वनजीवन संघर्ष को कम करने के विभिन्न उपायों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –
   1. स्व–स्थान संरक्षण
   2. परस्थान संरक्षण।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 4

पर्यावरण प्रबन्धन

पाठ्यक्रम – पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता।
पर्यावरण प्रबन्धन के प्रमुख पहलू–इथिकल, आर्थिक, तकनीकी, एवं सामाजिक पहलू।
पर्यावरण प्रबन्धन के कानूनी प्रावधान।

पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता (Need for Environmental Management)

समस्त ब्रह्मांड में पृथ्वी ही एकमात्र आवास योग्य स्थान प्रदान करती है। पृथ्वी पर पर्यावरण असंतुलन आज विश्व की ज्वलंत समस्या है। वर्तमान समय में भारत का एक सुन्दर हिरण, काला मृग, एक सींग वाला गेंडा, महाकाय पांडा, भारतीय गधा, गिद्ध इत्यादि विलुप्त होने के कगार पर है। जब जीव की कोई जाति विलुप्त होती है तो हम सदैव के लिए सजीव जगत के एक अंग को खो देते हैं साथ ही साथ इससे खाद्य श्रृंखला नष्ट होती है तो पर्यावरण एवं जन्तु जगत का संतुलन बिगड़ जाता है। यदि खाद्य श्रृंखला नष्ट होती है तो पर्यावरण नष्ट हो जायेगा फलस्वरूप मानव स्वयं विलुप्त हो जावेगा। अतः मानव स्वयं की स्वार्थसिद्धि छोड़कर पूर्ण मनोयोग से पर्यावरण प्रबन्धन करे एवं उसमें योगदान दे।

भारतीय गेंडा

पर्यावरण दो शब्दों परि और आवरण से मिलकर बना है। परि का अर्थ है सभी ओर तथा आवरण का अर्थ है घेरा अर्थात जो हमें सभी ओर से घेरे हुए हैं वही पर्यावरण है।

बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण के कारण मानव ने विभिन्न प्रकार के विकास किये जिससे पर्यावरण में पर्यावरणीय घटकों का अनुपात परिवर्तित हो गया है एवं उसमें हानिकारक एवं अवांछनीय तत्वों का प्रवेश कर गया है जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। मनुष्य, जीव–जन्तु तथा वनस्पतियों को विशुद्ध पर्यावरण प्राप्त हो इस हेतु पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विभिन्न प्रदूषणों के प्रभाव एवं प्रबन्धन

(1) वायु प्रदूषण के प्रभाव

(Effects of Air Pollution)

वायु प्रदूषण के प्रभाव को निम्नलिखित दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) तात्कालिक प्रभाव **(Immediate effects)**

(ख) दीर्घकालिक प्रभाव **(Long term effects)**

(क) तात्कालिक प्रभाव **(Immediate effects)** इसका आशय ऐसे प्रभावों से है जो किसी कारण से प्रयुक्त होते ही अपने लक्षण प्रदर्शित करते हैं, जैसे–वाहनों तथा कारखानों से निकलने वाले धुएँ युक्त वातावरण में श्वास लेने पर गले तथा आँखों में जलन होना आदि।

(ख) दीर्घकालिक प्रभाव **(Long term effects)** इसमें ऐसे प्रभाव आते हैं जो शीघ्र ही दिखाई नहीं देते अपितु कुछ समय पश्चात् अपने लक्षण प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणस्वरूप–वायुमण्डल के निचले स्तर में गैसों की संरचना में परिवर्तन, वायुमण्डल की निचली परत में विभिन्न प्रदूषक तत्वों एवं कणों का एकत्रीकरण एवं वायु भार में परिवर्तन।

वायु प्रदूषण के प्रभावों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव **(Effects on human health)** - वायु प्रदूषण से मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे श्वसन–सम्बन्धी बहुत से रोग, जैसे–फेफड़ों का कैंसर, अस्थमा और फेफड़ों से सम्बन्धित दूसरे रोग हो जाते हैं। वायु में वितरित बहुत–सी धातुओं के कण बहुत से रोग उत्पन्न करते हैं। सीसे के कण विशेष रूप से नाड़ी–मण्डल **(nervous-system)** में रोग उत्पन्न करते हैं। नाइट्रोजन ऑक्साइड से फेफड़ों, हृदय और आँखों में बहुत से विकार उत्पन्न होते हैं। ओजोन भी आँखों के रोग, खांसी व सीने में दर्द उत्पन्न करती है।

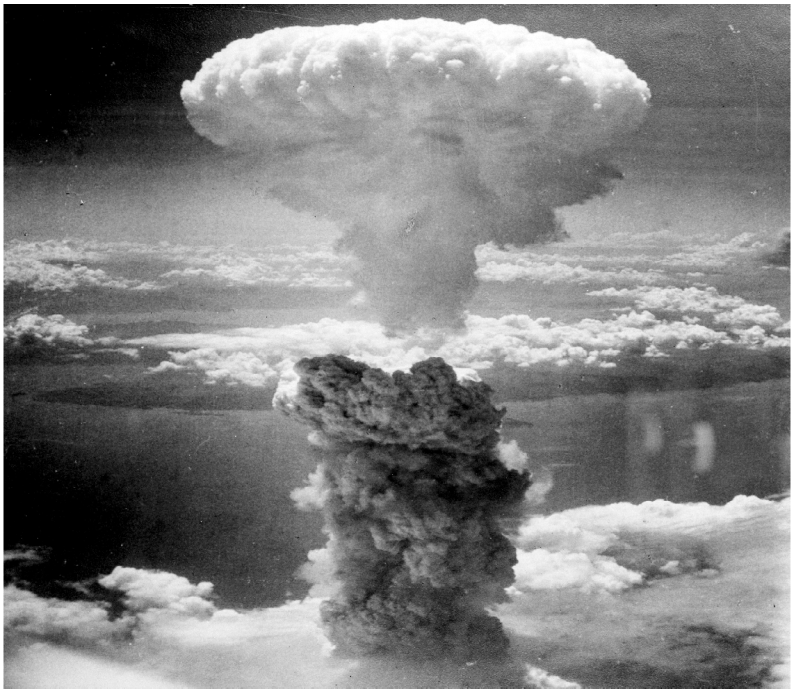

नागाशाकी पर परमाणु बम

वातावरण में कार्बन मोनो ऑक्साइड उपस्थित होने से मनुष्य के रक्त में हीमोग्लोबीन के अणु ऑक्सीजन की तुलना में 200 गुना अधिक तेजी से कार्बन डाइऑक्साइड के अणुओं से जुड़ने लगते हैं जिससे श्वसन में घुटन महसूस होने लगती है। अधिक समय तक इस परिस्थिति में रहने पर दम घुटने से मृत्यु तक हो जाती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रासायनिक गैस संयन्त्रों तथा नाभिकीय परियोजनाओं से वायुमण्डल में निस्तारित होने वाले विभिन्न विषैले रासायनिक एवं रेडियोधर्मी पदार्थ अपना दीर्घकालिक प्रभाव मनुष्यों के स्वास्थ्य पर छोड़ते हैं। उदाहरणस्वरूप–1984 को भारत में हुए भोपाल गैस त्रासदी में मिथाईल आइसोसाइनेट के रिसाव के कारण अनेक लोग मारे गये थे जबकि इस गैस के प्रभाव के कारण अनेक गर्भवती महिलाओं के गर्भस्थ शिशु मरे हुए पैदा हुए थे। इसी प्रकार हिरोशिमा व नागासाकी पर द्वितीय विश्व युद्ध में गिराये गये अणु बमों के विकिरणों के प्रभाव से आज भी वहां बहुत से शिशु अपंग तथा मानसिक रूप से विक्षिप्त पैदा होते हैं।

(2) अन्य प्राणी जातियों पर प्रभाव (Effect on other animal species) - मनुष्य के समान ही वायु प्रदूषण अन्य प्राणियों में भी श्वसन सम्बन्धी विकार उत्पन्न करता है। वायु में उपस्थित अत्यधिक कीटनाशकों व अन्य विषैले रसायनों के कारण सबसे अधिक प्राणि जातियॉ प्रभावित होती हैं। वायुमंडल में उपस्थित क्लोराइड यौगिकों के जन्तुओं के चारे (घास, जंगली पेड़–पौधे) , पर अवपात के फलस्वरूप पशुओं के शरीर में प्रवेश कर हड्डियों में विकार उत्पन करते हैं। इसी प्रकार सल्फर डाइऑक्साइड की उपस्थिति में मृदा में उपस्थित जीवाणुओं की सक्रियता अत्यधिक प्रभावित होती है जिसका सीधा प्रभाव वनस्पतियों पर पड़ता है।

(3) वनस्पतियों पर प्रभाव (Effects on vegetations) - वायु प्रदूषण का वनस्पति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड इत्यादि वायु प्रदूषकों की उपस्थिति से ओजोन की कमी तथा वायुमण्डल के हरित गृह प्रभाव में वृद्धि होती है जिसके कारण वायुमण्डल के ताप में वृद्धि होने से वनस्पतियॉ नष्ट हो जाती हैं। वायुमंडल में अत्यधिक विवक्त कणों तथा प्रकाश–रासायनिक कोहरे के कारण पृथ्वी पर पहुॅचने वाले सूर्य के प्रकाश में कमी आती है जिसके कारण पौधों की भोजन निर्माण क्रिया (प्रकाश –संश्लेषण) बाधित होती हैं। जिसका प्रत्यक्ष व प्रतिकूल प्रभाव इनकी वृद्धि पर पड़ता है। धूल, धुऑ तथा अन्य कणिकाएँ वनस्पतियों की पत्तियों की सतह पर जम जाते हैं जिससे इनके पर्ण रन्ध्र बन्द हो जाने से वाष्पोत्र्सजन की क्रिया में व्यवधान पड़ता है।

(4) पदार्थों पर प्रभाव (Effects on materials) – वायु प्रदूषण करने वाले वायु प्रदूषक जीव जन्तुओं,

ताज महल अम्लीय वर्षा से धुधला होता जा रहा है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वनस्पतियों को प्रभावित करने के साथ–साथ विभिन्न पदार्थों पर भी अपना दुष्प्रभाव डालते हैं। वायुमंडल में सल्फर डाइऑक्साइड, सल्फर ट्राइऑक्साइड तथा जल रासायनिक क्रिया करके सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) बनाते हैं जो अम्लीय वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। धात्विक सतहें (लोहा, तांबा, ऐल्यूमिनियम, जस्ता) अम्ल वर्षा के संपर्क में आने पर क्षयित हो जाती है और अपना ही सल्फेट यौगिक बना लेती हैं। चूना पत्थर तथा संगमरमर से बनी विभिन्न इमारतें एवं भवन अम्लीय वर्षा के संपर्क में आने के कारण अपनी चमक के साथ सामर्थ्य को भी खो देती हैं। उदाहरण के लिए विश्व प्रसिद्ध आगरा का ताजमहल अम्लीय वर्षा के कारण अपनी चमक खोता जा रहा है। इसी प्रकार रंजकों **(paints)** में उपस्थित सीसा हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) से क्रिया करके सीसा सल्फाइड **(PbS)** बनाता है जिससे पेण्ट्स की हुई सतह का भूरा रंग, काला पड़ जाता है।

(5) मौसम एवं जलवायु पर प्रभाव (Effects on Weather and climate) - वायु प्रदूषण की प्रक्रिया के अनवरत रूप से चलते रहने से उस क्षेत्र विशेष के मौसम में वायु प्रदूषकों का हस्तक्षेप होना कोई आश्चर्यचकित कर देने वाली घटना नहीं है। इस तरह की घटना होना उस समय ही निश्चित हो जाता है जब वायुमण्डल में प्रदूषक पदार्थों की सान्द्रता में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होती है। औद्योगिक नगरों में होने वाली असमय वर्षा तापमान में वृद्धि तथा प्रकाश की मात्रा में कमी तथा धुन्ध एवं कोहरे का छाया रहना आदि वायु प्रदूषण की ही देन है।

शहर में प्रदूषण के कारण कोहरा

वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

(CONTROL MEASURES OF AIR POLLUTION)

वायु प्रदूषण आज एक विकराल रूप धारण कर चुका है यदि इसे जल्दी नियंत्रित नहीं किया गया तो यह सम्पूर्ण जैवमण्डल को फिर से आदि–स्वरूप में पहुँचा देगा। अतः वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न उपाय किये जाने की आवश्यकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) घरेलू प्रदूषण को नियंन्त्रित करने के उपाय

1. घरों में धुऑं–रहित ईंधनों के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। लकड़ी, कोयला, उपले इत्यादि पारम्परिक ईंधनों के स्थान पर विद्युत हीटर, कुकिंग गैस, सौर ऊर्जा से चालित उपकरण इत्यादि का प्रयोग वायु प्रदूषण को नियन्त्रित करता है।

2. घरेलू कूड़े–करकट (फलों, सब्जियों के छिलके आदि) को खुले स्थानों पर नहीं फेंककर मिट्टी की गहरे गड्ढों को खोदकर उनमें दबा देना चाहिए। जिससे उनके सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन से जैवीय खाद **(bio-fertilizer)** का निर्माण हो जाये तथा इनके अपघटन के दौरान उठने वाली दुर्गन्ध से भी बचा जा सकता है।

3. कच्चे कोयले व कच्ची लकड़ी के जलने पर प्रतिबंध लगाया जाये क्योंकि उससे अधिक कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड तथा कार्बन कण उत्सर्जित होते हैं।

4. घर में खिड़की, दरवाजों तथा रोशनदानों का समुचित प्रबंध होना चाहिये तथा रसोईघरों में चिमनी की व्यवस्था करनी चाहिये।

(ब) वाहनिक प्रदूषण को नियन्त्रित करने के उपाय

1. वाहन निर्माण करने वाली कंपनियों को ऐसे आन्तरिक दहन इंजनों का निर्माण करना चाहिये जिससे वाहनों में प्रयुक्त होने वाले ईंधन का सम्पूर्ण दहन हो जाये तथा प्रदूषक पदार्थ कम मात्रा में उत्सर्जित हों।

2. सीसा–रहित पेट्रोल तथा डीजल में संयोजी पदार्थों को मिलाकर वाहनों में प्रयोग करने से वायु प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

3. डीजल रेल के इंजनों के स्थान पर विद्युत चालित रेल इंजनों का उपयोग किया जाना चाहिये।

4. अत्यधिक वायु प्रदूषणकारी वाहनों पर पाबंदी तथा अन्य वाहनों से उत्पन्न धुएँ का मानकीकरण से अधिक स्तर होने पर कानूनी कार्यवाही का प्रावधान होना चाहिये।

5. बैटरी चालित वाहनों का अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिये।

(स) औद्योगिक प्रदूषण को नियन्त्रित करने के उपाय

1. जिन उद्योगों में दहन प्रक्रम प्रयुक्त होता है उनकी निर्माणक ईकाइयों में पर्याप्त ऊँची चिमनियों की समुचित व्यवस्था करनी चाहिये।

2. औद्योगिक प्रतिष्ठानों से उत्सर्जित होने वाले कणिकीय प्रदूषकों के निस्तारण के लिए बैग फिल्टर को चिमनियों से जोड़ना चाहिये। फैब्रिक फिल्टर या हाई एनर्जी स्क्रेबर उपकरणों का प्रयोग करके धुएँ से होने वाले दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है।

3. निर्माणक ईकाइयों में दुर्घटना से बचने तथा नियंत्रण के लिए सम्पूर्ण प्रबंध होना चाहिये।

4. उद्योगों में उच्च कोटि के तथा कम प्रदूषणकारी कच्चे माल को ही प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

(द) अन्य उपाय

1. परमाण्विक परियोजनाओं से निकले रेडियोधर्मी पदार्थों को शीघ्र ही विघटनीय पदार्थ में बदल देना चाहिये।

2. परमाणु बमों तथा अन्य हानिकारक नाभिकीय परीक्षणों का सीमांकन करना चाहिये।

3. रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का संतुलित उपयोग किया जाना चाहिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) जल प्रदूषण का प्रभाव

(Effects of Water Pollution)

जल जीवों के प्रथम उपभोग की वस्तु है। जल का उपयोग जैविक एवं अजैविक क्रियाओं में अनेक रूपों में किया जाता है। अनेक संसाधनों के सफल संचालन एवं विकास के लिए जल सहायक है। आज सभी देशों में दुर्भाग्यवश जलराशियॉं कूड़ा–करकट, नगरीय एवं औद्योगिक कचरा एवं विषैले पदार्थों के निस्तारण का जल ही माध्यम बन गया है। अन्य प्रदूषणों की भॉंति जल प्रदूषण ने भी आज के युग में गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया है।

जल प्रदूषण के विभिन्न कुप्रभाव निम्नलिखित हैं –

प्रदूषित नदी

(अ) जलीय जीव पर प्रभाव (Effects on Aquatic Life) -

विभिन्न प्रकार के जल स्त्रोत, जैसे–नदियॉं, तालाब, पोखर, झील, झरने एक प्रकार से पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र हैं इनमें अनेक प्रकार की जीव–जन्तु एवं वनस्पतियॉं जो अजैविक घटकों के साथ अपना सामंजस्य बनाए रखते हैं। समस्त जैविक घटक सम्मिलित रूप से एक खाद्य–श्रृंखला का निर्माण करते हैं। विभिन्न प्रकार से जल प्रदूषित हो जाने के कारण वनस्पति एवं जीव–जन्तु तत्काल प्रभावित हो जाते हैं जिससे जलीय पादपों एवं जीवों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

जलीय प्रदूषण का वनस्पतियों एवं जीव–जन्तुओं पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत वर्णन निम्नानुसार है –

(1) वनस्पतियों पर प्रभाव (Effects on Vegetations) -जल प्रदूषण से पौधों पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है –

1. कृषि बहिःस्राव द्वारा प्रदूषित जल में पौधों के पोषक तत्व उपस्थित होने के कारण शैवाल इत्यादि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अधिक विकसित होते हैं, जिससे सूक्ष्म जीवाणुओं की तीव्र वृद्धि होती है, जो जलीय O_2 को कम कर देते हैं। ऐसी परिस्थिति में अधिकांश पौधे नष्ट हो जाते हैं।

2. यदि जल का प्रदूषण वाहित मल द्वारा होता है तो जल की ऊपरी सतह पर विभिन्न रोगों के मल कवक **(Sewage Fungus)** फैल जाते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के जीवधारियों का समुदाय पाया जाता है। जैसे–कवक, जीवाणु, शैवाल, म्यूकर एवं मांस इत्यादि। जो अन्य पादप जातियों की वृद्धि में हस्तक्षेप करते हैं।

3. प्रदूषित जल में मल कवक का आवरण उपस्थित होने के कारण एवं जल में काई पाये जाने के कारण सूर्य प्रकाश जल के अन्दर तक नहीं पहुँच पाता है, फलतः जलीय पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है।

4. जल प्रदूषण के कारण जल के तापमान में वृद्धि हो जाती है जिससे पौधों में रसाकर्षण न होने के कारण वे सूखकर मर जाते हैं।

5. कीटनाशियों जैसे डी.डी.टी. तथा अन्य रोगनाशकों द्वारा प्रदूषित जल में पाये जाने वाली वनस्पतियों में प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया सुचारू रूप से नहीं हो पाती।

(2) जीव–जन्तुओं पर प्रभाव (Effects on Animals) - प्रदूषित जल में पाये जाने वाली वनस्पतियों के प्रदूषित हो जाने के कारण जल पारिस्थितिकी में उपस्थित सभी जीव–जन्तुओं पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इनमें से कुछ प्रभाव निम्न हैं –

1. प्रदूषित जल में ऑक्सीजन की नितान्त कमी होती है जिससे जलीय जीव–जन्तु ऑक्सीजन के अभाव में मरने लगते हैं।

2. भयंकर रूप से प्रदूषित जल में ऐसे सभी जन्तु जिनके लिए स्वच्छ जल आवश्यक हैं, नष्ट हो जाते हैं। ऐसे जल में अनेक प्रकार के हानिकारक बैक्टीरिया एवं प्रोटोजोआ पाये जाते हैं।

3. औद्योगिक ईकाइयों से निस्तारित प्रदूषित जल के नदियों में विसर्जन के कारण शैवाल की वृद्धि हो जाती है जिससे श्वसन के लिए ऑक्सीजन की मॉग बढ़ जाती है और जलीय जीव–जन्तु, विशेष रूप से मछलियों पर सर्वाधिक कुप्रभाव पड़ता है।

4. मल–मूत्र एवं कृषि बहिःस्राव के जल में विसर्जन से सल्फेट, नाइट्रेट और फास्फोरस इत्यादि रासायनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है जिससे समीपवर्ती नदियों, झीलों, तालाबों में विशेष प्रकार की वनस्पतियॉ पनपने लगती हैं। धीरे–धीरे जलाशय सूखने लगते हैं और उसमें पाये जाने वाले जीव–जन्तु समाप्त हो जाते हैं।

5. गहन कृषि के अन्तर्गत अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए जो कृत्रिम खादें, दवाइयॉ, कीटनाशक, पेस्टीसाइड और जैविक खाद प्रयोग किए जाते हैं वह जल के माध्यम से जल राशियों में प्रवेश कर जाते हैं और भूमि एवं जलमण्डल में जीवों का पारिस्थितिक तंत्र को विकृत कर देते हैं, जल में O_2 की कमी कर देते हैं।

6. तैलीय प्रदूषण के कारण समुद्रों में पाये जाने वाले जलीय जीव–जन्तु विशेषकर मछलियॉ एवं जल पक्षी मुख्य रूप से प्रभावित होते हैं।

(ब) मनुष्यों पर प्रभाव (Effects on Human Beings) - प्रदूषित जल का प्रभाव न केवल जलीय जीव–जन्तुओं पर पड़ता है बल्कि मनुष्य भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है क्योंकि जल मानव

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पर्यावरण का ही एक अंग है। मानव स्वास्थ्य पर प्रदूषित जल के प्रभाव का अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है–

(1) पेयजल द्वारा (By drinking water) - जल कुछ विशेष प्रकार के रोगाणुओं का अच्छा वाहक होता है। प्रदूषित जल में नाना प्रकार के रोगाणु पाये जाते हैं जिसे पीने से अनेक प्रकार के रोग फैलते हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. जीवाणु (Bacteria) - रोगजनक जीवाणु मनुष्यों में हैजा, टाइफाइड़ डायरिया एवं पेचिश रोग फैलाते हैं।

2. विषाणु (Virus) - विषाणुओं से पोलियों, यकृत शोथ, पीलिया इत्यादि रोग फैलते हैं।

3. प्रोटोजोआ (Protozoa) - इससे मनुष्यों में पेट तथा आंत सम्बन्धी रोग अतिसार, यकृत इत्यादि में फैलते हैं।

(2) जल के सम्पर्क द्वारा (By contact of water) - जल स्रोतों के प्रदूषित जल में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु तथा परजीवी पाये जाते हैं। ये परजीवी प्रदूषित जल में मनुष्यों एवं पशुओं के नहाने, धोने तथा कपड़ा साफ करने एवं अन्य कार्यों के लिए प्रयोग करते समय उनके चमड़े को छेदकर शरीर में पहुॅच जाते हैं जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(3) जल में उपस्थित रासायनिक पदार्थों द्वारा (By chemical substances present in water) - प्रदूषित जल में उपस्थित रासायनिक पदार्थों द्वारा मनुष्यों के स्वास्थ्य पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं

1. अधिक फेरस बाई–कार्बोनेट युक्त जल से बदहजमी की शिकायत होती है।

2. अधिक फ्लोराइड की मात्रा दॉतों को लाभ के स्थान पर हानि पहुॅचाती है।

3. जल में उपस्थित नाइट्रेट एवं नाइट्राइट की अधिकता हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन वहन क्षमता को कम कर देती है।

4. पेय जल में पारे की अधिकता से मनुष्यों में विकृतियॉ हो जाती हैं।

(स) अन्य प्रभाव (Other Effects) -

प्रदूषित जल के कारण होने वाले अन्य प्रभाव निम्नलिखित हैं–

1. प्रदूषित जल में अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीव, जैसे–शैवाल इत्यादि उपस्थित होते हैं जिससे जल का रंग परिवर्तित हो जाता है जो पीने में अरूचिकर होता है।

2. रासायनिक उर्वरकों से जब जल का प्रदूषण होता है तो अत्यधिक जलकुम्भी तथा शैवाल की वृद्धि होती है जिससे जल स्रोत धीरे–धीरे नष्ट हो जाते हैं।

3. जल में अमोनिया एवं हाइड्रोजन सल्फाइड धुले होने के कारण उसमें अरूचिकर गन्ध एवं स्वाद उत्पन्न हो जाता है।

4. अम्ल प्रदूषित जल से धातु की पाइपों एवं बर्तनों का क्षरण होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जल प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(Control measures of water pollution)

जल को प्रदूषित होने से बचाना हमारा प्राथमिक ध्येय होना चाहिए क्योंकि जल अतिमहत्वपूर्ण पदार्थ है जिसके अभाव में मानव व वनस्पति—जगत जीवित नहीं रह सकता। जल को प्रदूषित होने से बचाने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं—

1. उद्योगों के रसायन एवं गन्दे अपशिष्ट युक्त जल को नदियों, सागरों, नहरों, झीलों आदि में उपचारित किए बिना न डाला जाए।

2. उद्योगों को ऐसा संयन्त्र लगाने को कहा जाए जिनसे वे प्रदूषित जल को उपचारित करके जलराशियों में प्रवाहित करें।

3. सीवर तथा मल—जल को नदियों आदि में सीधा न डाला जाए तथा शोधक संयत्रों की सहायता से गन्दे जल को एकत्रित कर व साफ करके खेतों की सिंचाई तथा अन्य उपयोगों में लाया जाए।

4. जल को स्वच्छ करते समय एक सीमित मात्रा एवं नियमित दवाओं का प्रयोग किया जाए तथा जल की शुद्धिकरण प्रक्रिया में ऐसा कोई तत्व या रसायन प्रयोग न किया जाए जिसका मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. मुर्दों को जलाने के लिए विद्युत शवदाह गृहों का निर्माण किया जाना चाहिए।

6. औद्योगिक अपशिष्टों के उपचार का इन्तजाम किया जाना चाहिए। ऐसा न करने वाली औद्योगिक इकाइयों पर वैधानिक नियमों का कड़ाई से पालन कराने की योजना होनी चाहिए।

7. जल प्रदूषण को रोकने के लिए सामान्य जनता में जागरूकता जगाई जानी चाहिए। सभी प्रकार के प्रचार माध्यमों द्वारा जल संरक्षण के उपायों का व्यापक प्रचार किया जाना चाहिए।

8. स्वच्छ जल के दुरूपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

9. जल में ऐसे जीव और वनस्पतियॉ विकसित की जाए, जो जल को शुद्ध करने में सहायक हों।

10. नदियों के जलग्रहण क्षेत्र में वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करके भी जल प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

11. मल विसर्जन से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए सुलभ इण्टरनेशनल जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद लेनी चाहिए। सुलभ शौचालयों का निर्माण करने से जल प्रदूषण की मात्रा में कमी लाई जा सकती है।

(3) समुद्री प्रदूषण के प्रभाव

(Effect of marine pollution)

वर्तमान में समुद्री प्रदूषण के कारण अनेक समुद्री जीव (पौधे एवं जन्तु) मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं तथा बहुमूल्य समुद्री सम्पदा की हानि हो रही है। समुद्री प्रदूषण के कुछ महत्वपूर्ण प्रभाव निम्नलिखित हैं–

1. नदियों के साथ आने वाले प्रदूषक समुद्री मछलियों और अन्य जीवों की मृत्यु का कारण बन रहे हैं।

2. औद्योगिक संस्थानों के बर्हिःस्राव से समुद्री जल प्रदूषित होकर मछलियों और अन्य जलीय जीवों को संदूषित कर रहे हैं, जिन्हें खाकर मानव अनेक बीमारियों से प्रभावित हो रहे हैं।

3. समुद्र में पेट्रोलियम तेल के रिसाव से भारी संख्या में व्हेल समेत अनेक जीवों, लाखों जल पक्षियों की मृत्यु हो जाती है।

4. समुद्री गहराई में उपस्थित रसायनों का उपयोग महत्वपूर्ण औषधियों के निर्माण में किया जा रहा है। प्रदूषण से उनकी गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।

5. समुद्री प्रदूषण से मूँगे की बहुमूल्य चट्टानों की खेती लगातार कम होती जा रही है। जो राष्ट्र के लिए गहरी आर्थिक हानि का कारण बनी है।

6. परमाणु परीक्षणों के कारण अनेक महासागरों का जल तथा जीव रेडियोधर्मिता से प्रभावित हो गये हैं जो विभिन्न प्रकार के कैंसरों की उत्पत्ति का कारण बन गये हैं।

समुद्री प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(Control measure of marine pollution)

समुद्री प्रदूषण के घातक प्रभावों को देखते हुए इस पर नियन्त्रण आवश्यक है। अतः इस प्रदूषण को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रोकने के लिए हमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे–

1. नदियों को कीटनाशकों, उर्वरकों, औद्योगिक बहिःस्रावों से मुक्त रखा जाए।

2. समुद्र के किनारे स्थापित उद्योगों, कारखानों नगरों के बहिःस्रावों को उपचारित करने के बाद ही समुद्र में डाला जाए।

3. समुद्रों के मालवाहक जहाजों और तेल कुओं से होने वाले गम्भीर तेल रिसाव पर रोक के कारगर तरीके ढूँढे जाए।

4. परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाई जाए।

5. परमाणु कचरे को समुद्र में विकसित करने से पहले उसका उचित उपचार कर लिया जाए।

4. मृदा प्रदूषण के प्रभाव

(Effects of soil pollution)

मृदा प्रदूषण से जैव समुदाय पर दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं प्रदूषण के कारण मृदा की उर्वरता में कमी आ जाती है तथा कृषि कार्य के लिए अनुपयुक्त होने लगती है। मृदा प्रदूषण के कारण मानव, पेड़–पौधों व सूक्ष्मजीवों पर पड़ने वाले प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(1) मानव पर प्रभाव (Effect on human being) :- मृदा प्रदूषण के कारण मनुष्यों में स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेकों समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मृदा प्रदूषक खाद्य श्रृंखला के माध्यम से मानव शरीर में प्रवेश करने पर अनेक रोगों को जन्म देते हैं।

(I) ऑंत सम्बन्धी रोग (Intestinal diseases) - विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों, जैसे–कच्ची सब्जियॉं, भूमिगत सब्जियॉं आदि का सेवन करने से अनेकों जीवाणु तथा विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मकृमि मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और यह शरीर में विभिन्न प्रकार की बीमारियों, जैसे–हैजा, टाइफाइड, अमिबियोसिस, डायरिया, आन्त्रशोध, पेचिश आदि को जन्म देते हैं।

(II) टिटनेस (Tetanus) - मिट्टी में उपस्थित मानवों एवं जन्तुओं के मलों के अंश टिटनेस बैसिलाई की उत्पत्ति के मुख्य स्रोत होते हैं, जो टिटनेस रोग को जन्म देते हैं।

(III) अन्य रोग (Other diseases) -मिट्टी में उपस्थित परजीवी कीड़ों के अण्डे व लार्वा, फफूंद, बीजाणु, टॉक्सिन, जैसे रासायनिक पदार्थ, डी.डी.टी., एल्ड्रीन तथा आर्सेनिक यौगिक आदि प्रदूषण मानव में भयंकर रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं, जिनमें पीलिया, गिल्टी बनना आदि रोग प्रमुख हैं।

(2) वनस्पति पर प्रभाव (Effects on vegetation) -मृदा प्रदूषण के कारण वनस्पतियॉं अत्यन्त प्रभावित होती हैं। प्रदूषण के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उसमें कोई भी वनस्पति नहीं उग पाती।

(3) अन्य जीव–जन्तुओं पर प्रभाव (Effects on other living- organisms) - अनेक रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग के कारण मिट्टी में पाये जाने वाले लाभकारी नाइट्रोजनीकारक जीवाणु, केंचुए आदि जीव नष्ट हो जाते हैं प्रदूषित मृदा से हानिकारक रसायन खाद्य श्रृंखला के द्वारा जानवरों में पहुॅंच जाते हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(4) कृषि पर प्रभाव (Effects on agriculture) - मृदा प्रदूषण के कारण कृषि सर्वाधिक प्रभावित होती है। अनेक रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग के कारण मृदा प्रदूषण बढ़ता है जिसके कारण मृदा की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है एवं मृदा अपरदन के कारण पोषक तत्व घट जाने से कृषि उत्पादन घट जाता है। व्यापक सिंचाई तथा अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से भूमि में लवणता बढ़ती है तथा अनेक अवांछित खनिजों की अधिकता के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है।

मृदा प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(Measures to control soil pollution)

(1) मृदा संरक्षण (Soil conservation) :- मृदा ह्रास को रोकने के लिए मृदा संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। मृदा संरक्षण हेतु व्यापक उपाय करने चाहिए। इन उपायों में वृक्षों की कटाई तथा अनियन्त्रित पशुचारण पर रोक, फसल चक्रीकरण, समुचित सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण आदि प्रमुख हैं।

(2) ठोस अपशिष्टों का निस्तारण (Disposal of solid wastes) - ठोस अपशिष्टों के निस्तारण हेतु निम्नलिखित उपाय सार्थक हो सकते हैं –

1. कूड़े–कचरें का विसर्जन मानव निवास स्थलों से दूर गर्तों में भरकर समतलीकरण के लिए करना चाहिए।

2. कूड़े–करकट का उपयोग विद्युत उत्पादन में किया जाना चाहिए।

3. कूडे–करकट को गड्ढों में एकत्र करके सड़ाकर जैविक खाद बनायी जा सकती है।

4. पुनर्चक्रण की प्रक्रिया द्वारा कुड़े–कचरे को पुनः उपयोग में भी लाया जा सकता है। इसमें कागज, कॉच के टुकड़े, लोहे के टुकड़ें, प्लास्टिक आदि स्वरूप बदलकर पुनः उपयोग में लाया जा सकता है।

5. भष्मीकरण की प्रक्रिया द्वारा भी अपशिष्टों का निस्तारण किया जाता है। इसमें अपशिष्टों को जलाकर समाप्त किया जाता है। परन्तु भष्मीकरण की विधि से वायु प्रदूषण की सम्भावना रहती है।

(3) फसलों पर जहरीले कीटनाशकों का छिड़काव विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए।

(4) डी.डी.टी. का प्रयोग प्रतिबन्धित हो।

(5) सिंचाई और उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले मिट्टी और पानी की जॉच करा लेनी चाहिए।

(6) रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कम्पोस्ट तथा जैविक खाद के प्रयोग को वरीयता देनी चाहिए।

(7) खेतों में पानी के निकास की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

(8) खेतों के किनारे और ढालू भूमि पर वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।

(9) रेडियोधर्मी पदार्थों से होने वाले भूमि प्रदूषण से बचने के लिए भूमिगत परमाणु परीक्षणों पर तुरन्त रोक लगाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास होने चाहिए। रेडियोधर्मी अपशिष्टों को जमीन में गड़ाने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

(10) प्लास्टिक थैलियों के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

(11) उर्वरकों एवं कीटनाशकों/खपरतवारनाशकों का प्रयोग करने का प्रशिक्षण किसानों को टी.वी. समाचार–पत्र अथवा रेडियो के माध्यम से देना चाहिए।

भू–प्रदूषण को रोकना आज की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, क्योंकि खाद्य पेय पदार्थ, कच्चे माल, आहार, जल एवं अन्य सभी प्रकार की सामग्रियॉ मृदा की गुणवत्ता पर निर्भर करती हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(5) नाभिकीय अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभाव

(Effects of nuclear or radioactive pollution)

नाभिकीय अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषक अपने द्वारा उत्सर्जित विकिरणों द्वारा जैवमण्डल के प्रत्येक पक्ष (जैविक व अजैविक) पर अपना प्रभाव डालते हैं। जैसे–

(अ) मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effects on Human Health) -

रेडियोधर्मी प्रदूषण से मानव स्वास्थ्य पर कई प्रत्यक्ष तथा दूरगामी प्रभाव पड़तें हैं। इससे मानव शरीर में रूधिर कणिकाओं **(Blood corpuscels)** की कमी, सिर के बालों का झड़ना, शरीर में रक्ताल्पता **(Anaemia),** ल्यूकीमिया, अस्थियों का कैंसर, आनुवांशिक तत्वों (जीन व गुणसूत्रों) की संरचना में परिवर्तन, स्त्रियों में बांझपन, भूख की कमी, उल्टी, शरीर का वजन कम होना तथा अल्सर जैसे घातक रोगों के होने का भय बना रहता है।

(ब) अन्य प्राणि जातियों पर प्रभाव (Effects on Other Animal Species) -

मानव के साथ–साथ नाभिकीय प्रदूषण अन्य प्राणि जातियों के स्वास्थ्य तथा उनके विभिन्न व्यवहारिक क्रिया–कलापों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। नाभिकीय अवपात के फलस्वरूप विभिन्न खनिज तत्वों के रेडियोधर्मी समस्थानिक (पोटैशियम–40, आयोडीन–131, कैल्शियम–45 आदि) वनस्पतियों द्वारा खनिज अवशोषण के समय मृदा से अवशोषित कर लिए जाते हैं तथा यह पदार्थ खाद्य श्रृंखला के माध्यम से विभिन्न स्तर के जीवों के शरीर में पहुँच कर कुप्रभाव डालते हैं।

(स) वनस्पतियों पर प्रभाव (Effects on Vegetations) -

नाभिकीय अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण का प्रभाव वनस्पतियों की प्रचुरता, कार्यिकी तथा गुणवत्ता पर पड़ता है। नाभिकीय विस्फोटों के फलस्वरूप इतनी अधिक मात्रा में ऊर्जा निकलती है जिससे 16 वर्ग कि.मी. तक के क्षेत्र की सम्पूर्ण वनस्पति जल जाती है। विभिन्न तत्वों के रेडियोधर्मी समस्थानिक उन तत्वों का स्थान पादपों के क्रियात्मक तन्त्रों में ले लेते हैं। जिससे पादपों की विभिन्न क्रियाएँ, जैसे–रसारोहण, प्रकाश–संश्लेषण, श्वसन, पुष्पन तथा जनन व्याधित होती हैं।

नाभिकीय अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(Control measures of nuclear or radioactive pollution)

नाभिकीय अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण का समूल नाश नहीं किया जा सकता है फिर भी निम्नलिखित उपायों का अनुसरण करके इसको नियन्त्रित किया जा सकता है–

1. परमाणु बमों के निर्माण तथा उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाए तथा विश्व में नाभिकीय भण्डारों को समाप्त किया जाए।

2. भूमिगत, वायुमण्डल तथा जलमण्डल में परमाणु बमों के परीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

3.परमाणु बिजलीघरों से उत्पन्न कचरे को दफनाने का पूरा प्रबन्ध किया जाए, जिससे रेडियोधर्मी विकिरण न हो सके।

4. उच्चस्तरीय परमाणु अपशिष्टों के विसर्जन के लिए कांच के जालक बनाने का सुझाव दिया गया है।

5. रिएक्टरों के रख–रखाव में पूर्ण सतर्कता बरतनी चाहिए। समय–समय पर रिएक्टरों व परमाणु संयन्त्रों की टंकियों व पाइप लाइनों की जॉच करते रहना चाहिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. रेडियोधर्मी तत्वों से युक्त युद्ध–सामग्री के निर्माण पर प्रतिबन्ध होना चाहिए तथा परमाण्विक युद्धों को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

7. परमाण्विक बिजलीघरों व रिएक्टरों की स्थापना नगरों व आबादी से दूर करनी चाहिए।

6. ध्वनि या शोर प्रदूषण के प्रभाव

(Effects of sound or noise pollution)

ध्वनि अथवा शोर प्रदूषण मानव–जीवन के साथ–साथ अन्य जीव–जन्तुओं तथा निर्जीव वस्तुओं को भी प्रभावित करता है। जैसे–

(1) मानव जीवन पर प्रभाव (Effects on human life) -शोर मानव जीवन को विविध रूपों में प्रभावित करता है। शोर जहॉ एक ओर मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है वहीं दूसरी ओर उसकी कार्यक्षमता को भी घटाता है। शोर मानवीय क्रियाकलापों में मुख्यतः तीन प्रकार से बाधक होता है –

(I) ध्वनि श्रवण स्तर पर (At the level of audible sound) - शोर के कारण सर्वाधिक कष्ट कानों को उठाना पड़ता है। इससे श्रवण शक्ति प्रभावित होती है। यह साधारण–सी बात है कि कानों के निकट आकस्मिक बम बिस्फोट से हमें अधिक बहरापन प्रतीत होता है। प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि शोरग्रस्त स्थानों में निरन्तर अधिक समय तक रहने से श्रवण शक्ति की आंशिक या पूर्ण क्षति हो जाती है।

(II) कार्यकीय स्तर पर (At the level of physiology) - शोर कानों के अतिरिक्त हृदय, तन्त्रिका तन्त्र तथा पाचन तन्त्र पर भी प्रभाव डालता है। तीव्र आकस्मिक ध्वनि से शरीर तन्त्र लगभग अनियन्त्रित सा हो जाता है। त्वचा का पीला पड़ना, ऑख की पुतलियों का प्रसार, आंखों का बन्द होना इसके कुछ बाहर दिखाई देने वाले प्रभाव हैं।

(III) आचरण के स्तर पर (At the level of behaviour) - शोर के कारण मनुष्य के आचरण पर पड़ने वाले प्रभाव इतने जटिल तथा बहुमुखी होते हैं कि इनका सही–सही निर्धारण करना भी कठिन होता है।

दैनिक जीवन में व्याप्त शोरगुल को सामाजिक तनावों, लड़ाई–झगड़ों, मानसिक अस्थिरता, कुण्ठा, पागलपन इत्यादि दोषों का कारण माना जाता है।

(2) जन्तुओं तथा वनस्पतियों पर प्रभाव (Effects on animals and vegetations) - शोर प्रदूषण का प्रभाव केवल मानव जीवन पर ही नहीं अपितु अन्य जन्तुओं पर भी पड़ता है। शोर के कारण पशु–पक्षी अपने आवास–स्थल छोड़कर अन्य स्थानों पर चले जाते हैं। अत्यधिक तीव्र ध्वनि तंरगों के कारण पक्षी अण्डा देना बन्द कर देते हैं तथा पालतू पशु भी दूध कम मात्रा में देते हैं। खनन विस्फोटकों की तीव्र ध्वनि के कारण आसपास के जंगलों के पशु पलायन कर जाते हैं।

(3) निर्जीव वस्तुओं पर प्रभाव (Effects on non-living things) - ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव केवल जीवों पर ही नहीं अपितु निर्जीव वस्तुओं पर भी व्यापक रूप से पड़ता है। तीव्र ध्वनि तरंगों के कारण भवनों की छतें हिल जाती हैं, खिड़की, दरवाजों के शीशे टूट जाते हैं तथा दीवारों में दरार पड़ जाती हैं।

ध्वनि या शोर प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(Control measure of sound or noise pollution)

शोर का निश्चित निवारण एक अत्यन्त जटिल समस्या है, क्योंकि इसके निवारण में हमें आधुनिक प्रगति के फलस्वरूप प्राप्त सुख–सुविधाओं का त्याग या उनकी संख्या में व्यापक कमी के साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि नियन्त्रण की प्रक्रिया से औद्योगिक उपलब्धि भी प्रभावित न हो। इस प्रकार शोर का समूल निवारण तो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

असम्भव है, परन्तु कुछ कारगर उपाय अपनाकर इसका नियन्त्रण अवश्य किया जा सकता है।

तकनीकी तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से शोर समस्या के मूल में निम्नलिखित तीन वस्तुएँ होती हैं–

(1) शोर का स्रोत (2) शोर का पथ, एवं (3) ग्राही अंग।

अतः शोर नियन्त्रण के सभी प्रयासों में इन तीनों का ध्यान रखते हुए आवश्यकतानुसार कदम उठाना कारगर हो सकता है। शोर प्रदूषण को नियन्त्रित करने के कुछ उपाय निम्नलिखित हैं–

1. शोर को उसके उद्‌गम स्थान पर ही रोकना सबसे सीधा सरल उपाय है। यद्यपि शोर के स्रोतों की संख्या घटाना व्यावहारिक नहीं है फिर भी कानून की सहायता से अधिक शोर उत्पन्न करने वाली पुरानी –खटारा मोटरगाड़ियों, ट्रकों, मोटर साइकिल इत्यादि का शहर के मुख्य मार्गों तथा आवासीय क्षेत्रों से निकलने पर रोक लगाकर इस दिशा में अपेक्षित परिणाम पाए जा सकते हैं।

2. मोटर वाहनों में बहुध्वनि वाले हॉर्न बजाने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

3. कल–कारखानों को शहर से दूर स्थानों पर स्थापित करना चाहिए।

4. उद्योगों द्वारा उत्पन्न शोर को कम करने के लिए विभिन्न तकनीकी व्यवस्थाओं का उपयोग किया जाना चाहिए। जैसे कारखानों में शोर शोषक दीवारों तथा मशीनों के चारों ओर मफलरों का कवच लगाकर शोर का स्तर 90 डेसीबल तक कम किया जा सकता है।

5. उद्योगों में मशीनों के सही रख–रखाव से शोर कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शोर शोषक पदार्थ जैसे लकड़ी, ऊन इत्यादि का आवश्यकतानुसार उपयोग कर शोर को घटाया जा सकता है।

6. अत्यधिक शोर वाले कल–कारखानों में 'पाली' **(Shifts)** की व्यवस्था होनी चाहिए।

7. रेलों द्वारा उत्पन्न शोर को बैलास्ट विहीन**(Ballast less)** रेल पथों के निर्माण द्वारा कम किया जा सकता है।

8. विमानों को विशेष ढाल पर उतारा तथा चढ़ाया जाता है जिससे कम से कम शोर हो।

9. आजकल जेट यानों के शोर को कम करने के लिए उनके टर्बोजेट इंजनों के निर्गम पर शोर अवशोषक का प्रयोग किया जाता है।

7. पालीथिन प्रयोग के दुष्प्रभाव

(Bad Effects of Using Polythene)

पालीथिन का प्रचलन हमारे देश में दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। पालीथिन बनाने में जिस रसायन का प्रयोग किया जाता है वह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। पालीथिन न ही गलती है और न ही सड़ती है। इसके दुष्प्रभाव निम्न हैं –

1. पालीथिन को उपयोग के बाद जगह–जगह फेकने से यह नालियों एवं सीवरों में चला जाता है जिससे नालियों एवं सीवरों में जाम की स्थिति बन जाती है और इनको साफ करना दुष्कर हो जाता है।

2. मवेशी इन पालीथिनों को घास के साथ खा जाते हैं। उनके पेट में पालीथिन एकत्र होकर अनेक बीमारियों को जन्म देती है यहाँ तक कि उनकी मृत्यु तक हो जाती है।

3. पालीथिन के कारण पेड़–पौधों के भोजन ग्रहण करने का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है जिससे पेड़–पौधे भोजन, पानी समुचित रूप से प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पालीथिन प्रयोग के दुष्प्रभाव का नियन्त्रण –

1. पालीथिन निर्माण निर्धारित मानक के अनुसार उच्च स्तर के प्लास्टिक से होना चाहिए क्योंकि जो पालीथिन निर्धारित मानक के अनुसार तैयार की जाती है वह गल सकती हैं और मिट्टी में भी मिल सकती है। इसको गलाकर इसका पुनः उपयोग भी कर सकते हैं।
2. मानक से निम्न स्तर के पालीथिन के प्रयोग पर शासन स्तर से पूर्ण प्रतिबंध लगाना चाहिए।
3. नैतिक रूप से मनुष्यों को भी चाहिए कि पालीथिन का प्रयोग नहीं करें।

8. सिन्थेटिक दूध के दुष्प्रभाव

(Bad Effects of Synthetic Milk)

सिन्थेटिक दूध सामान्यतया यूरिया, घटियां रिफाइन्ड तेल, कास्टिक सोडा, चीनी या ग्लूकोज, घटिया डिटर्जेंट पावडर, सोयाबीन का तेल, वसा रहित दूध, अमोनियम सल्फेट, डी.डी.टी. चर्बी इत्यादि मिलाकर तैयार किया जाता है। इसके प्रयोग से निम्न खतरे हैं–

1. किसी भी व्यक्ति को कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी हो सकती हैं
2. ऑखों की रोशनी में कमी, मांसपेशियों में सूजन, हृदय रोग, जिगर, गुर्दे एवं फेफड़ों को नुकसान पहुॅचाकर मौत दे सकती हैं।
3. नवजात शिशुओं में विकलांगता ला सकती है।

सिथेंटिक दूध के दुष्प्रभावों का प्रबन्धन –

इसके प्रबन्ध के उपाय निम्न हैं –

1. वैज्ञानिकों ने सिंथेटिक दूध की पहचान करने के लिए एक किट विकसित की है जिससे इस दूध की पहचान की जा सकती है।
2. इसके कारोबार पर प्रभावी रूप से प्रतिबंध लगाना चाहिए।
3. नैतिकता के आधार पर भी लोगों को इसके कारोबार से बचना चाहिए।

गाय तथा भैसों को आक्सीटोसिन इंजेक्शन लगाकर दूध की पूरी मात्रा प्राप्त करते हैं कुछ समय बाद थनों से खून, मांस के टुकड़े इत्यादि आना शुरू हो जाते हैं। गाय तथा भैंस बॉझ हो जाती है। इस दूध के सेवन से मानव शरीर पर निम्न दुष्प्रभाव होते हैं–

1. बच्चों की ऑखों की रोशनी कम अथवा सदा के लिए जा सकती है।
2. लड़कियों के शरीर में हार्मोन्स का संतुलन बिगड़ जाता है और असामान्य बदलाव शुरू हो जाते हैं। अत्यधिक गम्भीर स्थिति में लड़कियों में मां बनने की सम्भावना खत्म हो जाती है।

आक्सीटोसीन इन्जेक्शन पर प्रतिबंध है लेकिन फिर भी मेडिकल स्टोरों में धड़ल्ले से बिक रहे हैं। अतः इनके प्रयोग पर कठोरतम सजा का प्रावधान कर व्यवहार में लागू किया जाना चाहिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पर्यावरण प्रबन्धन के प्रमुख पहलू

(1) इथिकल (नैतिक)

(Ethical)

मानव जिस स्थान पर निवासरत है इसके चारों तरफ एक आवरण है, जिसे पर्यावरण कहते हैं यह अजैविक, जैविक, आर्थिक, सांस्कृतिक, तकनीकी, सामाजिक प्रकार का होता है। आवरण (कवच) उसमें रहने वाले मानव का सम्पूर्ण विकास करता है। इसका सामान्य अर्थ है कि आवरण मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु होनी चाहिए इस कारण हमें चारों ओर उपस्थित आवरण के प्रति पूर्ण समर्पित रहना चाहिए अर्थात इसका संरक्षण करना चाहिए। यही हमारा नैतिक दायित्व है और इसी में हम सभी का हित हुआ है क्योंकि यही हमारा चहुँमुखी विकास करेगा।

जब पर्यावरण के प्रति लगाव हो तो इसके लिए हमें अपना आंतरिक विकास करना होगा। हमारी प्रवृत्तियों में परिवर्तन लाना होगा। यदि हम किसी समस्या के समाधान में सक्रिय नहीं हैं तो अप्रत्यक्ष रूप से समस्या को बढ़ाने में हम जिम्मेदार हैं। पर्यावरण का संरक्षण करने उसके प्रदूषण को रोकने हेतु हमारे अनेक नैतिक कर्तव्य हैं जिसमें से प्रमुख निम्न हैं –

1. पानी बचाइए – जल ही जीवन है। पानी का दुरूपयोग वर्तमान में बहुत अधिक हो रहा है। भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए पानी का बचत करना अत्यन्त आवश्यक है इसके लिए कपड़े धोने में उपयोग में लाये गये पानी को कूलर, फर्श आदि धोने में पुनः उपयोग में लाना चाहिए। कभी भी नल को खुला नहीं रहने दें। कहीं भी नल को खुला देखने पर उसे तुरन्त बंद कर दें। पाइप लाइन में यदि रिसाव हो या कोई पाइप लाइन को क्षति पहुँचा रहा है तो तुरन्त सम्बन्धित विभाग को सूचित करना चाहिए। अनावश्यक टयूबवेल नहीं खुदवाना चाहिए। इससे पृथ्वी के अन्दर के जल स्त्रोतों में कमी आ रही है।

2. बिजली बचाइए– बिजली वर्तमान में मानव के विलासिता का प्रमुख अंग हो गया है इसके अभाव में मानव का जीवन कष्टप्रद हो जाता है अतः इसके बचत के लिए बल्ब, कूलर पंखे इत्यादि को खुले नहीं छोड़े। सूर्य के प्रकाश में अधिक से अधिक कार्य करने का आदत बनाये। बल्ब की जगह ट्यूबलाइट का उपयोग करें। मकान के पास वृक्ष लगाने से कूलर की आवश्यकता कम महसूस होगी। यदि आपको कहीं बिजली चोरी नजर आती है तो उसकी सूचना तुरंत सम्बन्धित विभाग को देनी चाहिए। उत्सवों, शादियों, धार्मिक कार्यों में भी बहुत अधिक प्रकाश व्यवस्था पर नियन्त्रण करना चाहिए।

3. कागज बचाइए– कागज वृक्षों की लकड़ियों से बनता है। कागज के बचत से वृक्षों का संरक्षण हो सकता है। रफ कार्य हेतु घर में उपलब्ध डाक, निमन्त्रण पत्र, बालकों की पिछली कक्षा की कापियों से बचे खाली पन्नों को उपयोग में लाना चाहिए। बेकार कागज को रद्दी में बेच दे जिससे उसका उपयोग पुनः हो सके।

4. साबुन – नहाने, कपड़े धोने के साबुन में कास्टिक सोडा एवं फास्फोरस की मात्रा अधिक होता है जो पानी के साथ बहकर नदी, तालाब को प्रदूषित कर देता है। अतः कम फास्फोरस के साबुन का प्रयोग करें।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

साबुन का प्रयोग नहाने में भी प्रतिदिन नहीं करे। डिटर्जेंट का प्रयोग भी कम करना चाहिए।

5. प्लास्टिक – वर्तमान में हम पालीथिन एवं प्लास्टिक पर आश्रित हो गये हैं जिसे एक बार प्रयोग करके फेंक देते हैं। यह प्लास्टिक अविघटनशील पदार्थ है। यह अपने अन्दर जहरीले तत्वों को समाहित किये रहता है जिसके कारण मृदा प्रदूषित होता है। अतः प्लास्टिक या पालीथिन के स्थान पर कागज, कॉच, मिट्टी व धातु से बनी वस्तुओं का प्रयोग करें एवं प्लास्टिक के बेकार चीजों को एकत्र करके कबाड़ी को बेच दे ताकि उनका पुनर्चक्रण किया जाकर पुनः उपयोग किया जा सके।

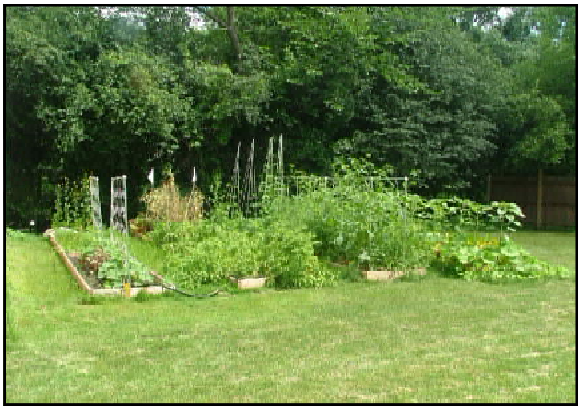

6. बगीचा लगाइए –पेड़ हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है पेड़ हमें शुद्ध वायु प्रदान करता है। पेड़ों से हम अपने जीवन की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इनसे ध्वनि, वायु, जल, आणविक प्रदूषण एवं मिट्टी क्षरण नियन्त्रित होता है। घर के पास पेड़–पौधे लगाकर एक बगीचा विकसित करना चाहिए।

7. धूम्रपान निषेध–धूम्रपान नहीं करके अपने जीवन की रक्षा कीजिए साथ ही आपके आस–पास रहने वाले लोगों की भी जो धूम्रपान नहीं करते हैं।

8. कागज–पत्ते आदि नहीं जलायें –व्यर्थ कागज, पत्ते आदि जलाने के बजाए उन्हें मिट्टी में गाड़ देना चाहिए जिससे वह खाद बनकर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ा सकता है। न सड़ने–गलने वाली वस्तुओं को मिट्टी में नहीं दबायें।

9. वाहन प्रदूषण से बचे–बाहनो से निकले धुएं में हानिकारक गैसे जैसे कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, लेड आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड इत्यादि होती है। इसके बचाव के लिए वाहनों की नियमित सर्विसिंग करवाइए। मानक से ज्यादा धुएँ को नियन्त्रित करें। चौराहों पर लाल बत्ती के समय अपना वाहन बंद कर दे। वाहनों का प्रयोग कम से कम करे। अधिक से अधिक पैदल अथवा साइकिल का प्रयोग करें।

10. ध्वनि प्रदूषण से बचे–वाहनों में मानक से ज्यादा ध्वनि स्तर वाले हार्न का प्रयोग नहीं करें। मेले में, उत्सवों में अधिक शोर उत्पन्न करने वाले यन्त्रों को नियन्त्रित करे। 125 डेसिबिल से अधिक शोर उत्पन्न करने वाले अग्नि पटाखों का प्रयोग नहीं करें। मोटर गाडियों, वायुयानों, फैक्टिरियों में उच्च शक्ति के ध्वनि अवरोध यन्त्र लगाने चाहिए।

11. जैविक कीटनाशकों का प्रयोग–किसानों को रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए जिससे नाशक जीव ही मरे अन्य जीवों पर कोई दूष्प्रभाव नहीं हो।

12. जैविक खाद का प्रयोग–रासायनिक खाद के स्थान पर जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रासायनिक खाद के प्रयोग से मिट्टी के पोषक तत्व समाप्त हो जाते हैं।

13. वन विनाश रोकें—पेड़—पौधों को नहीं काटना चाहिए साथ ही यदि कोई काटता है तो रोकने का प्रयास करना चाहिए। वन विनाश से वन्य जीवों का आवास स्थान प्रभावित होता है व भूमि का अपरदन होता है अतः संसाधनों का उपयोग संतुलित करना चाहिए।

हमें प्राचीन समय के अनुसार पर्यावरण के प्रति आदर भाव रखना चाहिए जिससे हम पर्यावरण के महत्व को अनुभव कर सकें। प्राचीन काल में दिन का प्रारम्भ सूर्य आराधना से शुरू होता था जो विश्व में जीवन का आधार है। देश में नदियों को माता तथा नव निर्माण से पूर्व धर्मशास्त्रों के अनुसार शुभ मुहुर्त में भूमि पूजन किया जाता था। पीपल, ऑवला, तुलसी की पूजा की जाती थी। महत्वपूर्ण गुणों वाले पौधों को धर्म से जोड़ा गया है। इसी प्रकार जीव—जन्तुओं को भी महत्व दिया गया है। गणेश का वाहन चूहा है, शिव का वाहन बैल, दुर्गा का वाहन सिंह है व सरस्वती का वाहन हंस है आदि।

उपर्युक्त बिन्दुओं को विचार करके इन सभी को यथा समय पालन हेतु अपने को मानसिक रूप से तैयार करके क्रियान्वित करना चाहिए। याद रखिये—पर्यावरण हमारी अमूल्य सम्पदा है इसकी सुरक्षा करना हमारा कर्तव्य है। पर्यावरण सुरक्षा ही जन सुरक्षा है।

(2) आर्थिक

(Economic)

मनुष्य अपने वातावारण की उपज है। वातावरण का अर्थ मानव जीवन के चारों ओर फैली हुई भौगोलिक, सामाजिक , राजनीतिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियों से है जिनमें रहकर वह अपना जीवनयापन करता है। आर्थिक वातावरण में धनोपार्जन एवं उसके उपयोग सम्बन्धी गतिविधियॉ आती हैं।

आर्थिक पर्यावरण का अर्थ मनुष्य के चारों ओर उन प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से है जो मानव की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करती है। इनमें वे सभी तत्व सम्मिलित हैं। जो परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से मानव के आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं। मानव के आर्थिक विकास द्वारा जीवन स्तर ऊंचा उठ सके इस हेतु यहॉ आर्थिक पर्यावरण के ऐसे लक्ष्यों, उद्देश्यों एवं उसके घटकों के बारे में विचार करेंगे जिससे अन्य लक्ष्यों पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़े।

पर्यावरणीय प्रबन्धन के आर्थिक पक्ष की विशेषताऍ

1. आर्थिक क्रियाऍ—इसके अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा आय अर्जित करने एवं कुशलतापूर्वक व्यय करने सम्बन्धी क्रियाऍ जैसे कृषि, उद्योग, व्यापार—वाणिज्य, परिवहन, सुधार, बीमा, बैंकिंग, सरकारी आय—व्यय इत्यादि सम्मिलित हैं अर्थात् इनमें सभी आर्थिक क्रियाओं जैसे उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व को शामिल किया जाता है।

2. गैर—आर्थिक पर्यावरण का प्रभाव—आर्थिक पर्यावरण, भौगोलिक पर्यावरण (स्थिति, धरातल की बनावट, मिट्टी, पानी, खनिज, वन, शक्ति के साधन, जलवायु आदि) सामाजिक पर्यावरण (सामाजिक रीतिरिवाज,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

शिक्षा, स्वास्थ्य आदि) एवं राजनीतिक पर्यावरण (शासन प्रणाली, आर्थिक व्यवस्था आदि) से प्रभावित होता है।

3. सरकार द्वारा नियंत्रण एवं मार्गदर्शन –आर्थिक पर्यावरण सरकार के मार्गदर्शन एवं नियंत्रण में चलता है। पूंजीवादी व्यवस्था में सरकार न्यूनतम हस्तक्षेप की नीति अपनाती है। जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकार स्वयं आर्थिक क्रियाओं का संचालन करती है।

4. आधारभूत सुविधाएं –आर्थिक पर्यावरण पर आधारभूत सुविधाओं जैसे–बिजली, पानी, शक्ति, परिवहन, संचार, बैंकिंग व बीमा व्यवस्था आदि का प्रभाव पड़ता है। इन सुविधाओं के उपलब्ध होने पर आर्थिक विकास तेजी से होता है।

5. जनता का नजरिया –यदि जनता का दृष्टिकोण भौतिकवादी है तो आर्थिक वातावरण में किसी भी प्रकार नैतिक अनैतिक तरीके से धन कमाने की भावना विकसित होगी। यदि जनता का अध्यात्मिक दृष्टिकोण है तो मनुष्य केवल नैतिक तरीके से ही धन कमायेगा, जिससे आर्थिक समानता आयेगी।

6. समाज में धन सम्पत्ति का वितरण –समाज में धन का असमान वितरण होने एवं आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण होने से आर्थिक असमानता एवं शोषण को बढ़ावा मिलता है एवं समाज कुंठित हो जाता है। चोरी, रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार बढ़ता है।

7. धन की पर्याप्त उपलब्धता –पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध होने पर प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग होगा, जिससे देश में आय, रोजगार, विनियोग व आर्थिक विकास बढ़ेगा।

8. आर्थिक विचार धारा –आर्थिक वातावरण को आर्थिक विचारधाराएं (पूंजीवादी, समाजवादी, साम्यवादी, मिश्रित एवं गांधीवादी) भी प्रभावित करती हैं । अमेरिका में पूंजीवादी विचारधारा के कारण निजी लाभ, निजी सम्पत्ति, प्रतिस्पर्द्धा, अति उत्पादन, स्वतः प्रेरणा, अनुसंधान आदि को बढ़ावा मिला है।

9. नियोजित अर्थव्यवथा –इस अर्थव्यवस्था में समस्त साधनों पर राज्य का अधिकार होता है। उपलब्ध साधनों का प्राथमिकता के आधार पर नियोजित उपयोग होता है। हर प्रक्रिया में सामाजिक हित का ध्यान रखा जाता है। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था होने से सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों साथ–साथ आर्थिक क्रियाएँ कर रहे हैं।

10. नैतिक स्तर–जनता का नैतिकता भी आर्थिक प्रबन्धन को प्रभावित करती है। नैतिक स्तर गिरा हुआ है तो देश के आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरणीय प्रबन्धन के आर्थिक पक्ष के उद्देश्य

1. अर्थव्यवस्था का सफल संचालन एवं विकास –इसके लिये आर्थिक परिवेश का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

2. नूतन संसाधनों एवं अवसरों की तलाश – इससे विकास के नये क्षेत्रों एवं संसाधनों का पता लगाया जा सकता है।

3. परिवर्तनों की जानकारी – आर्थिक परिवेश की परिवर्तनशीलता की जानकारी से आर्थिक विकास

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

में आने वाले बाधक तथ्यों एवं चुनौतियों का पता लगाकर उन्हें हटाया जा सकता है।

4. समायोजन – अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने वाली पर्यावरणीय प्रकृति, तत्वों एवं विशेषताओं का अध्ययन करने से अर्थव्यवस्था को उनके साथ समायोजित किया जा सकता हैं

5. आर्थिक विकास हेतु दबाव – पर्यावरण को आर्थिक विकास के अनुरूप बनाने के लिये दबाव डालना ताकि देश के आर्थिक विकास के लिये परिवेश का अधिकाधिक उपयोग किया जा सके। आर्थिक पर्यावरण सदैव स्थिर नहीं रहता है, जिससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है। आर्थिक समृद्धि एवं विकास पर्यावरण पर निर्भर करता है। अनुकूल प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश से देश का आर्थिक विकास,समृद्धि एवं पूर्ण रोजगार का रास्ता खुलता है। प्रतिकूल परिवेश से देश को गरीबी, बेकारी, भुखमरी जैसी स्थितियों से सामना करना पड़ता है।

पर्यावरणीय प्रबन्धन के आर्थिक पक्ष को निम्नांकित तत्व (अंग) प्रभावित करते हैं –

1. प्राकृतिक संसाधन – देश के प्राकृतिक संसाधन जैसे –भूमि, खनिज सम्पदा, जल, वनस्पति, वायु वर्षा आदि आर्थिंक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता एवं उनके समुचित दोहन से आर्थिक समृद्धि, विकास एवं रोजगार में वृद्धि होती है। संसाधनों के अभाव में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी एवं पिछड़ापन की स्थिति पैदा होती है। प्राकृतिक संसाधनों के द्वारा ही आज अमेरिका, पश्चिमी यूरोपीय देश, अरब राष्ट्र विकसित राष्ट्र कहलाते हैं।

2. मानवीय संसाधन –मानव उत्पादन के प्रमुख साधन के साथ उत्पादन का उपभोक्ता भी है। देश में तीव्र आर्थिक विकास के लिये मानव शक्ति का स्वस्थ्य, बुद्धिमान, कुशल एवं प्रशिक्षित होना आवश्यक है। मानव शक्ति की उपलब्धता एवं उसके कुशल उपयोग से देश में तकनीकी विकास, उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है। जन शक्ति उचित मात्रा में (अनुकूलतम जनसंख्या) होनी चाहिए।

3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएॅं –परम्परागत रीति–रिवाज, सामाजिक व्यवस्थाएॅं, धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़िवादी परम्पराएं एवं नैतिक मूल्य आर्थिक विकास में बाधक होते है। आलस्य, भाग्यवादिता, अंधविश्वास आदि से आर्थिक पर्यावरण दूषित होता है। भारत में रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, भाग्यवादिता आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न की है।

4. वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास –नये–नये वैज्ञानिक आविष्कारों एवं तकनीकी विकास से कृषि, उद्योग आदि का तीव्र विकास होता है। नई–नई उत्पादन विधियों से देश के उत्पादन में वृद्धि, लागत में कमी, नई–नई वस्तुओं का उत्पादन, नवीन कच्चे माल की खोज, नये बाजारों की खोज होती है। इससे देश का आर्थिंक विकास होता है।

धान रोपाई यंत्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. आर्थिक प्रणाली का स्वरूप –पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में निजी लाभ, स्वतः प्रेरणा, कुशल प्रबन्ध एवं शीघ्र निर्णय के कारण तेजी से विकास होता है। इसमें आर्थिक शोषण, आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण, व्यापार चक्र, भ्रष्टाचार आदि को बढ़ावा मिलता है। समाजवादी आर्थिक प्रणाली में आर्थिक नियोजन, समाजिक स्वामित्व, कुशल प्रबन्ध से अधिकतम सामाजिक कल्याण होता है। इस व्यवस्था में अकुशलता, भ्रष्टाचार, कठोरता, कुप्रबन्ध व अधिनायकवादी प्रवृत्तियों को जन्म मिलता है।। मिश्रित आर्थिक प्रणाली में दोनों प्रणालियों के दोषों को दूर कर निजी एवं सार्वजनिक स्वामित्व, निजी लाभ पर सामाजिक हित में नियंत्रण, विकेन्द्रीयकरण आदि द्वारा तीव्र आर्थिक विकास का प्रयास रहता है। भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली लागू है।

6. शासन प्रणाली –साम्यवादी शासन व्यवस्थाओं में उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व तथा केन्द्रीय नियोजन द्वारा तीव्र आर्थिक विकास एवं अधिकतम सामाजिक कल्याण करने का प्रयास होता है। किन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजी साहस व शांति समाप्त होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। राजनीतिक स्थिरता अर्थव्यवस्था के विकास में सहयोगी होती है।

7. बाजार की स्थितियॉ –पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में अति उत्पादन, कम लागत, प्रतिस्पर्धा, सामान्य लाभ होने से साधनों का अनुकूलतम उपयोग होता है। एकाधिकार बाजार में कम उत्पादन, उंची लागत, ऊंची कीमत, एकाधिकारी लाभ व उपभोक्ताओं का शोषण होने से विकास में बाधा आती है। अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में विविधतापूर्ण उत्पादन के साथ अधिक लाभ तथा कम उत्पादन के साथ विज्ञापन लागतों से गलाकाट प्रतिस्पर्धा को जन्म मिलता है।

8. पूंजी एवं मुद्रा बाजार –पूॅजी के अभाव में प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं होता व योजनाएॅ लागू करने में कठिनाई आती है। पूंजी एवं मुद्रा बाजार कृषि, उद्योग व्यवसाय आदि को वित्त प्रदान कर देश के तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं और विदेशी पूॅजी पर निर्भरता में कमी आती है। बैकिंग व बीमा कम्पनियॉ एवं अन्य वित्तीय संस्थाएं विभिन्न प्रकार के वित्त प्रदान कर आर्थिक विकास में सहयोग देती हैं।

9. सरकार की आर्थिक नीतियॉ –सरकार की उपयुक्त, प्रगतिशील एवं सुदृढ़ आर्थिक नीतियॉ जैसे –कृषि नीति, मौद्रिक नीति, श्रमनीति, मूल्य नीति, रोजगार नीति आदि कृषि उद्योग एवं व्यापार के विकास में सहायक होती हैं और देश का तीव्र विकास होता है।

10. मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियॉ –मौद्रिक नीति देश में मुद्रा व साख की मात्रा को नियंत्रित करती हैं मन्दीकाल मे मुद्रा व साख की मात्रा बढ़ाकर आर्थिक विकास को गति दी जाती है। जबकि तेजी काल में मुद्रा व साख की मात्रा में कमी द्वारा मुद्रास्फिति को नियंत्रित कर आर्थिक स्थिरता प्रदान की जाती है।

राजकोषीय नीति द्वारा सरकार विभिन्न करों द्वारा आय जुटाती हैं इस आय को विकास कार्यों पर व्यय किया जाता है। सार्वजनिक ऋणों की व्यवस्था एवं हितार्थ प्रबंधन इसके भाग हैं सरकार की कर नीति, व्यय नीति, सार्वजनिक ऋण नीति आर्थिक पर्यावरण को प्रभावित करती हैं।

11. श्रम सम्बन्धी परिस्थितियां एवं श्रम सन्न्यिम –आर्थिक पर्यावरण में श्रम सम्बन्धी दशाओं, परिस्थितियों एवं श्रम सन्नियमों का विशेष महत्व है। जहां एक ओर पर्याप्त व कुशल श्रम शक्ति, श्रम विभाजन,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मधुर औद्योगिक सम्बन्ध, अच्छी कार्यदशाएं तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती हैं, वहीं दूसरी ओर श्रम का अभाव, अकुशलता प्राकृतिक साधनों के विदोहन में रूकावट, उत्पादन में कमी करती हैं श्रमिकों के शोषण से औद्योगिक अशांति उत्पन्न होती हैं और आर्थिक विकास में बाधा पहुँचाती है।

12. अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियॉं—विदेशी सहायता, विदेश नीति, व्यापार व भुगतान संतुलन, विनिमय दर आदि देश के आर्थिक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संधियों, द्विपक्षीय समझौतो, अन्तर्राष्ट्रीय समझौता, विदेशी व्यापार की नीतियों, प्रतिनिधी मंडलों के आवागमन एवं आपसी संबंधों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का निर्माण होता है। मधुर अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों से आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग बढ़ता है।

13. परिवहन एवं संचार व्यवस्था—अर्थव्यवस्था का विकास उन्नत एवं आधुनिक परिवहन एवं संचार सुविधाओं पर निर्भर करता है। परिवहन के साधनों में रेल, सड़क, वायु एवं जल प्रमुख है। संचार सांधनों में डाक, तार, टेलीफोन एवं इलेक्ट्रॉनिक संचार उपकरण शामिल है। अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाये रखने में परिवहन एवं संचार साधन महत्वपूर्ण हैं यह अर्थव्यवस्था की रक्तवाहिनी धमनियों के समान हैं।

14. पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता —यदि मानव भौगोलिक वातावरण (हवा, पानी, मिट्टी, जलवायु आदि) को शुद्ध एवं संतुलित रखता है तो आर्थिक परिवेश दीर्घकाल तक उन्नति करता रहेगा। वास्तव में भौगोलिक पर्यावरण एवं आर्थिक विकास में विपरीत संबंध है। आज आर्थिक विकास के लिये मानव भौगोलिक पर्यावरण को दूषित कर रहा है हम शुद्ध हवा, पानी मिट्टी, जलवायु से बंचित होते जा रहे हैं देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का शोषण किया जा रहा है जिससे पारिस्थितिकीय असंतुलन बढ़ रहा है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता से दीर्घकालीन एवं स्थायी आर्थिक विकास कर सकते हैं।

15.शिक्षा प्रणाली —देश का आर्थिक विकास शिक्षा प्रणाली एवं प्रशिक्षण व्यवस्था से भी प्रभावित होता है। सामान्य व तकनीकी शिक्षा आर्थिक वातावरण को प्रभावित करती हैं स्वावलम्बन पर जोर देने वाली शिक्षा आर्थिक वातवारण के अनुरूप होती है, यहॉं निरन्तर आर्थिक प्रगति होती है। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति में तकनीकी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं भारतीय शिक्षा प्रणाली देश की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है, इसलिए शिक्षित बेरोजगारी एवं दासता की मनोवृत्ति पनपी है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

16. जनसंख्या –जनसंख्या की अधिकता या न्यूनता आर्थिक वातावरण को प्रभावित करती हैं जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहां पर्याप्त मात्रा में कुशल व बुद्धिमान श्रमिक उपलब्ध होते हैं वहॉ औद्योगिक विकास अधिक होता है। दूसरी ओर जनाधिक्य के कारण बेरोजगारी, भूखमरी, गरीबी, अनैतिक कार्य आदि अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। इससे जीवन स्तर निम्न रहता हैं। फलस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय कम रहती है।

आर्थिक पर्यावरण में परिवर्तन

आर्थिक पर्यावरण सदैव बदलता रहता है। आर्थिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले अधिकांश तत्व निरन्तर बदलते रहते हैं। तकनीकी में नित नये परिवर्तन होते है।। जनसंख्या का आकार एवं विशेषताएँ बदलती रहती हैं लोगों की प्रवृतियां, फैशन,आधार–विचार, व्यवहार, मनोवृत्ति, नैतिक मान्यताएँ भी बदलती रहती हैं लोगों की आय, सरकारी नीतियॉ, बाजार, की दशाएँ, शासन व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियॉ आदि निरन्तर बदलती रहती हैं ये सब तत्व एक दूसरे से जुड़े रहते हैं इसलिए एक में परिवर्तन दूसरे को प्रभावित करता है। फलस्वरूप पूरा आर्थिक वातावरण ही प्रभावित हो जाता है। आर्थिक वातावरण में परिवर्तनों का सही–सही अनुमान लगाना तो कठिन है, किन्तु शुद्ध एवं सही ऑकड़े उपलब्ध होने पर सांख्यिकी द्वारा आर्थिक प्रवृत्तियों के पूर्वानुमान लगाये जा सकते हैं।

(3) तकनीक

(Technic)

सूक्ष्मजीवी विश्व के सभी भागों में व्यापक रूप से फैले हुए हैं । ये आर्कटिक क्षेत्र, उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र घने जंगल, बर्फीले प्रदेश, मरूस्थलीय क्षेत्र, गर्म व शीतल जल, तेल–कुएँ वायु, मृदा, मृत पदार्थों, जन्तु व पौधों की देह के बाहर व भीतर, ज्वालामुखी क्षेत्र में भी पाये जाते हैं। ये वायुमण्डल एवं भूमि के विभिन्न स्तरों में रहकर सामान्य जैविक क्रियाएँ करते हुए अपने संख्या में वृद्धि करते रहते हैं। प्रत्येक प्राणी जो इस भूमण्डल में रहता है, श्वांस व भोजन ग्रहण करता है तथा किसी न किसी माध्यम से इन्हें अपनी देह में आमन्त्रित करता रहता हैं। सूक्ष्मजीव हानिकारक व लाभदायक दो प्रकार के होते है। अनेक सूक्ष्मजीव भयानक रोग को जन्म देते हैं वनस्पतियों में भी ये रोग फैलाकर फसल को संदूषित कर हानि पहुँचाते हैं जबकि अनेकों सूक्ष्मजीव वायुमण्डल या मृदा में रहकर प्राकृतिक रूप से उपयोगी क्रियाएँ, जैसे नाइट्रोजन व कार्बन चक्र को नियमित बनाये रखना, मृत कार्बनिक पदार्थों को सरल पदार्थों मे परिवर्तित करना, हमारी देह में रहकर पाचन क्रिया में सहायता करना आदि क्रियाएँ करते रहते हैं।

सूक्ष्म जीवों की अनेक जातियों के ज्ञान के कारण ही आज शल्य चिकित्सा, औषधि विज्ञान एवं प्रौद्योगिक क्षेत्र में व्यापक खोज हुई है। अनेक नाशक जीवों (Pests) का नाश करने या नियंत्रण करने में भी अब जैव कीटनाशी का उपयोग होने लगा है।

सूक्ष्मजीवों की सहायता से पेट्रोलियम पदार्थों या ईंधन की प्राप्ति के मार्ग प्रशस्त हुए हैं। भूमि व सागर के तल से धातुओं की प्राप्ति की विधियॉ खोजी गई हैं अनेक सूक्ष्म जीव अपशिष्ट जल का उपचार करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पर्यावरण को सूक्ष्म जीवों से मुक्त करने हेतु निर्यात मार्जक (Vacuum Cleaner) पराबैंगनी किरणों, रासायनिक पदार्थों, तापक्रम प्रभाव, आयनर विधि एवं लैमिनर वायु प्रवाह विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार इनके प्रभाव से भोजन, जल एवं अन्य उपयोगी पदार्थों को बचाया जाता है।

वैक्यूम क्लीनर

(1) धातुओं की पुनः प्राप्ति (Recovery Of Metals) - अनेक जीवाणु मृदा की गहरी पर्तों में पाये जाते हैं, जो विशिष्ट धातुओं के अयस्क (Ore) के साथ जुड़े रहते हैं। अतः ये जीवाणु इन धातुओं या खनिज पदार्थो के सूचकों (Indicators) के रूप में कार्य करते हैं।

सूक्ष्म जीव जल धातुकर्मी उद्योगों में धातुओं को इनके अयस्कों से प्राप्त करने में सहायक होते हैं। इसी से 10000 वर्ष पूर्व तांबे की प्राप्ति में सूक्ष्म जीवों का योगदान रहा है, ऐसे प्रमाण मिले हैं। रोम साहित्य के अनुसार सल्फाइड के खनिजों को विलयशील बनाने में सूक्ष्म जीवों का उपयोग किया जाता था।

सल्फाइड धातुओं का ऑक्सीकरण कर सल्फेट एवं सल्फ्यूरिक अम्ल बनाने हेतु जीवाणुओं का उपयोग किया जाता है। जीवाणुओं का उपयोग कॉपर, बेनेडियम, निकल, मालिब्डीनम, जिंक, आर्सेनिक, एन्टीमनी, सेलेनियम, मैग्नीज एवं यूरेनियम धातुओं के सल्फेट अयस्कों से प्राप्त करने में भी किया जाता है।

कुल साइडेरोकेप्सेसी **(Siderocapsaceae)** के जीवाणु अपने द्वारा स्रावित सम्पुट में लौह एवं मैग्नीज ऑक्साइड एकत्रित कर लेते हैं ये अधिकतर लौह युक्त जल में रहते हैं इनसे धातु प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

लौह जीवाणु फेरिक हाइड्रॉक्साइड से संतृप्त रहते हैं और जिस जल स्त्रोत में रहते हैं, इसके तल पर लौह अयस्क का ढेर लगता जाता है, जहां से लौह अयस्क प्राप्त किया जाता है।

जल की गहरी पर्तों में लौह एवं मैंगनीज का ऑक्सीकरण एव अवकरण होता है। यदि कार्बनिक पदार्थों की कमी हो जाती है तो फेरिक ऑक्साइड एवं अन्य ऑक्साइड स्त्रोत के तल पर फेरोमैगनीज अयस्क के रूप में जमा होते रहते हैं।

तॉबे के अयस्क से जैव निक्षालन **(Bioleaching)** तकनीक से तॉबा प्राप्त करने हेतु थायोबोसिलस फेराक्सिडेन्स रसायन कार्बपोषी **(Chemolithorophs)** जीवाणुओं का उपयोग किया जाता है, जिन्हें चट्टानभक्षी जीवाणु **(rock eating bacteria)** भी कहते हैं। अमेरिका में 10 प्रतिशत तॉबे का उत्पादन इसी विधि से किया जाता है। इस जैव तकनीक द्वारा यूरेनियम अयस्कों से यूरेनियम भी प्राप्त किया गया है, जो परमाणु भट्टियों में ऊर्जा प्राप्ति हेतु उपयोग में लाया जाता है। राइजोपस जीवाणु में निम्न श्रेणी के यूरेनियम अयस्क तथा परमाणु भट्टियों से प्राप्त अपशिष्ट को शुद्ध करने की क्षमता पायी जाती है। स्यूडोमोनास जीवाणु का कोबाल्ट, लैड, कैडमियम, पारे व एन्टीमनी के अयस्कों से शुद्ध धातु प्राप्त करने में प्रयोग हो रहा है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जीवाणुओं की कोशिका में उपस्थित प्रोटीन पदार्थ भारी धातुओं (चांदी, सोना, तांबा, जिंक, लैड) के सम्पर्क में आने पर धात्वीय ऐल्युमिनेट और अम्ल बनाते हैं यह क्रिया आलिगोडायनिक **(Oligodynic)** क्रिया कहलाती है। इस क्रिया के परिणामस्वरूप बाह्य सतह, यदि इन धातुओं या इनसे निर्मित गहनों अथवा बर्तनों, की जीवाणुओं के सम्पर्क में आती है तो इनका क्षय होने लगता है धन आवेश युक्त धातु, ऋण आवेश युक्त जीवाणुओं की सतह पर एकत्रित होने लगता है एवं इनका क्षय होता जाता है। वायरस भी इस प्रकार की क्रिया करते हैं यह क्रिया धातुओं को उनके अयस्कों से पृथक करने में सहायक होती है, जिसका उपयोग धातु उद्योगों में किया जाता है।

(2) पेट्रोलियम की प्राप्ति (Recovery of Petroleum)

भूगर्भशास्त्रियों **(Geologists)** के अनुसार भूगर्भ में पेट्रोलियम पदार्थ वनस्पति व प्राणियों की मृत देह से प्राप्त कार्बनिक पदार्थों से बनते हैं। यह क्रिया जीवाणुओं की सहायता से होती है। समुद्रतल के निक्षेप **(Sediment)** में इन कार्बनिक अवशेषों से तेल की छोटी–छोटी बूंदें बनती है, जो अन्य खनिजों के साथ–साथ पायी जाती है। ये बूंदें रासायनिक क्रियाओं, अधिक दाब व ताप के प्रभाव के कारण अवायवीय वातावरण में समुद्र तल पर संग्रहित हो जाती है।

मृदा एवं समुद्र में रहने वाले सूक्ष्म जीव अपने रहने के स्थान पर कार्बनिक पदार्थो का भण्डार तो उत्पन्न करते ही हैं। साथ ही अधिक गहराई में उपस्थित रहते हुए कोयले, तेल के भण्डार आदि की उपस्थिति के सूचक **(Indicators)** के रूप में भी कार्य करते हैं। तेल के भण्डारों वाले स्थानों में तेल जीवाणु **(Oil bacteria)** पाये जाते हैं, जिनकी उपस्थिति पेट्रोलियम पदार्थों की उपस्थिति दर्शाती है। ये पैराफिन को पोषक पदार्थ के रूप में ग्रहण करते हैं।

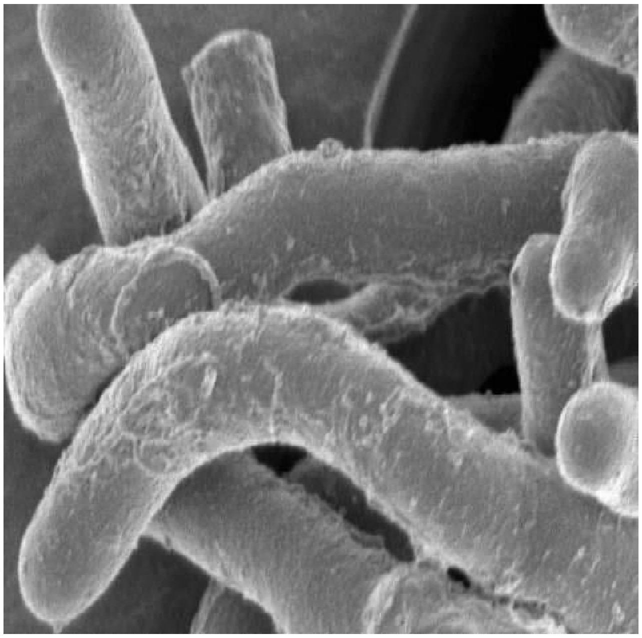

तेल जीवाणु (प्रवर्धित चित्र)

जेन्थोमोनस **(Xanthomonas)** जाति के जीवाणुओं में यह गुण पाया गया है कि ये पॉलिसेकेराइड्स का मोटा आवरण अपनी देह सतह पर बनाते हैं। इनका उपयोग उस जल की विस्कासिता बढ़ाने के काम आता है। जो तेल कूपों से तेल की प्राप्ति में सहायक होता है। यह विधि निः शोषित तेल कूपों से तेल निकालने हेतु काम में लाई जाती है। जेन्थन गम नामक श्यानक की प्राप्ति इस जीवाणु से की जाती है। इस चिपचिपे डिटरजेन्ट पदार्थ को पम्प द्वारा तेल कूपों में डाला जाता है, जिससे चट्टानों से चिपके तेल–कण अलग हो जाते हैं। जल के साथ जेन्थन गम मिलकर, तेल कुओं में खनिज तेल की अधिकाधिक मात्रा को एकत्र कर देता है, जिसका निष्कासन पम्पों द्वारा कर लिया जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इसी प्रकार बेसिलस व क्लोस्ट्रीडियम जाति के कुछ जीवाणुओं का उपयोग भी इस कार्य में करते हैं। इन जीवाणुओं का निवेशन करने के साथ ही पोषक पदार्थ शर्करा व खनिज लवण भी तेल कूपों में मिलाये जाते हैं। ये कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्पादन करते हैं, जो गैस दाब को बढ़ाती है, जिससे तेलपाइप में दाब बढ़ जाता है एवं पेट्रोलियम पदार्थ बाहर आ जाता है।

(3) नाशकजीव नियंत्रण (Pest Control) -

कीटनाशी **(Insecticides)** रासायनिक प्रकृति के एवं जैविक प्रकृति के वे पदार्थ हैं, जो नाशकजीव **(Pest)** नियन्त्रण हेतु उपयोग में लिये जाते हैं। रायायनिक प्रकृति के कीटनाशी हानिकारक हैं, लेकिन जैविक प्रकृति के निरापद हैं।

स्टेन्हॉस **(Stanhaus;1949)** नामक वैज्ञानिक ने नाशकजीवों की सूक्ष्मजीवों के द्वारा नियंत्रण करने की विधि प्रस्तुत की, जिसके अन्तर्गत नाशकजीव की देह में सूक्ष्मजीवों (बैक्टीरिया, वाइरस) के द्वारा रोग उत्पन्न किया जाता है, जिससे कीट या अन्य हानिकारक जीव–जन्तु की मृत्यु हो जाती है। नाशक जीवों पर नियंत्रण हो जाता है। जीवाणु, वायरस, प्रोटोजोआ, चिचिडियों**(mites)** को नियंत्रित किया जाता है।

सूक्ष्म जीवनाशक जीव की देह में संक्रमण उत्पन्न करके अथवा परिवर्तन में बाधा उपस्थित करके या आविष **(Toxin)** उत्पन्न करके कीट की सामान्य क्रिया को रोक देता है और इस प्रकार नाशकजीव की मृत्यु हो जाती है या वह इतना दुर्बल हो जाता है कि जनन, पाचन या परिवर्तन की क्रियाओं को पूर्ण न कर सके, अतः इनकी समष्टि का नियंत्रण हो जाता है। कीट रोगजनक सूक्ष्मजीवों को दो समूहों में विभक्त किया गया है.

(1) आमाशयी सूक्ष्मजीवी कीटनाशी–इसमें जीवाणु, प्रोटोजोआ व वाइरस आते हैं, जो रासायनिक कीटनाशकों की भॉति कीटों की कार्यिकी को प्रभावित करते हैं।

इस समूह के जीवाणु कीटों की देह में ऊतकों या द्रवों में वृद्धि करना प्रारम्भ कर देते हैं, जो आविष **(Toxin)** उत्पन्न करते हैं, अतः नााशकजीव की मृत्यु हो जाती है।

(2) सम्पर्क सूक्ष्मजीवी कीटनाशी–इस समूह में रोगजनक कवक आते हैं, जो कीटों की त्वचा या अध्यावरण के सम्पर्क में आने पर इनकी देह में प्रवेश कर जाते हैं और इनकी मृत्यु हो जाती है।

बेसिलस थूरिन्जिएन्सिस बरलिनर **(Bacillus thuringiensis berliner)**जीवाणु पाउडर या इमलशन के रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। इन्हें रासायनिक कीटनाशी की भांति जल में छिड़क दिया जाता है। यह पेरास्पोरलकाय **(Parasoporal body)** नामक क्रिस्टल बनाता है जो जैवविष **(Biotoxin)** होता है। जल में उपस्थित मच्छरों के लार्वा, कीट, पोषक पदार्थों के साथ इनका भी भक्षण करते हैं, जिससे इनकी देह में संक्रमण उत्पन्न हो जाता है व कीट की मृत्यु हो जाती है।

इस कीटनाशी का उत्पादन कई कम्पनियों के माध्यम से हो रहा है। इसका उपयोग सब्जियों, फसलों, बगीचे के पौधों व फलों, भण्डारित अनाज एवं मुर्गी पालन की कीटों से रक्षा हेतु व्यापक रूप में किया जा रहा है। यह आटे, बादाम, तम्बाकू आदि में लगने वाले कीटों से भी सुरक्षा प्रदान करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सूक्ष्म जैविक नियन्त्रण तकनीक के अनेकों लाभ हैं –

(1) केवल हानिकारक कीट की जनसंख्या प्रभावित होती है, अन्य लाभदायक कीट या जन्तु अप्रभावित रहते हैं।

(2) ये रायायनिक कीटनाशकों की भांति आविष अवशेष **(Toxin residues)** नहीं छोड़ते, अतः अन्य जीव जन्तुओं की हानि नहीं होती है।

(3) इन कीटनाशकों की सूक्ष्म मात्रा ही आवश्यक परिणाम उत्पन्न कर देती है।

(4) इनका प्रभाव लम्बे समय तक लगभग 10 वर्षों तक देखा गया है, अतः एक बार उपयोग करने के बाद बार–बार इनकी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजैविक कीटनाशी

(अ) जीवाणु –लगभग 100 से अधिक प्रकार के रोगजनक जीवाणु उपलब्ध हैं, जो कीटों में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं इनमें बेसिलसवा, पांपिलिए, बेसिलस मारब्स, स्यूडोमोनास आदि प्रमुख हैं। बे, थूरिन्जिएन्सिस का उपयोग मच्छर के लार्वा, चने के छेदक एवं गन्ने के छेदक एवं अन्य छेदक कीटों के नियंत्रण हेतु किया जाता है।

(ब) कवक –फाइकोमाइसिटिज, एस्कोमाइसिटिज, बेसिडिया माइसिटिज तथा ड्यूटैरोमाइसिटिज समूह की कवक कीटों की विभिन्न जातियों पर आक्रमण करती है। अनेकों कवक जैसे एस्परजिलस फ्लैब्स, एल्फाटॉक्सिन तथा व्यूवेरिया बेसिएना व्यूवरसिन आदि आविष **(Toxin)** स्त्रावण करते हैं, जिनसे पोषक कीटों की मृत्यु हो जाती है। ये कवक स्तनियों के लिए भी हानिकारक हैं। अतः इनका उपयोग वर्जित है।

4)पोषजैविक यौगिकों का निम्नीकरण (Degradation of Xenobiotic compounds) -

खेतों, खलिहानों, अनाज के एवं अन्य खाद्य पदार्थों के संग्रह केन्द्रों, अनाज के गोदामों तथा अपशिष्ट पदार्थों पर नाशकजीव **(Pests)** व कीटों के नियंत्रण हेतु सन् 1600 से रासायनिक कीटनाशी पदार्थों जैसे **DDT, BHC,** लिन्डेन, उल्ड्रिन, डाउल्ड्रिन, क्लोरेडेन, हेप्टाक्लोर का प्रयोग किया जाता रहा है। इनके प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विकराल हो गई है।

ये यौगिक फल, सब्जियों, अनाज, जल, दुग्ध आदि के साथ भोजन श्रृंखला **(Food chain)** का अंश बनकर हमारी देह में प्रवेश कर जाते हैं। ये देह में संग्रहित होते जाते हैं। भोजन श्रृंखला के जितने ऊंचे पद **(Step)** पर जीव होता है एवं जितना अधिक उसका भार होता है, इनकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यह क्रिया जैव–आवर्धन **(Bio-magnification)** कहलाती है। ऐसे पोषजीवक यौगिकों को हटाने की विधियॉ निम्न प्रकार हैं–

1. उपापचय द्वारा (By metabolism) - सूक्ष्म जीव, ऐसे पदार्थों को ग्रहण करने के उपरांत स्वयं ही उपापचयी क्रियाओं द्वारा सरल अणुओं में रूपांतरित कर देते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. सह उपापचय द्वारा (By Co- metabolism) - इस विधि में सूक्ष्म जीव स्थानान्तरण क्रिया द्वारा ऊर्जा प्राप्त नहीं करते एवं सहउपापचयी पदार्थ सूक्ष्म जीव की वृद्धि में सहायता नहीं करता।

3. संयुग्मी यौगिकों के निर्माण द्वारा - इस विधि में पोषक जीव यौगिकों के उत्पादों को अन्य जैविक प्राकृतिक पदार्थों जैसे अमीनो अम्ल, शर्करा आदि के साथ संयुग्मी पदार्थ बनाकर अहानिकारक बना दिया जाता है। डाईथिओकार्बमेट **(Dithiocarbamate)** नामक कवकनाशी इसका उदाहरण है। स्यूडोमोनास पुटिडा **(Pseudomonas Puttida) -** नामक जीवाणु ऐसा प्लाज्मिड रखता है, जो ऑक्टेन, जाइलीन, मेटाजाइलीन एवं कपूर आदि रसायनों को विखण्डित करने हेतु किण्वकों का उत्पादन करता है। यह समुद्र की सतह पर फैले पेट्रोलियम पदार्थ व तेलीय पदार्थों का विघटन करने की क्षमता रखता है।

5) पृष्ठ सक्रियकों का निम्नीकरण (Degradation of surfactants) -

जल में झाग उत्पन्न करने वाले पदार्थ पृष्ठ सक्रियक **(Surfactants)** कहलाते हैं। जल स्वयं अपनी गति से भी झाग उत्पन्न करता है किन्तु वास्तव में यह क्रिया अनेक जलीय पादपों व प्राणियों द्वारा ऐसे कार्बनिक पदार्थ के संश्लेषण करने एवं इन्हें जल में त्यागे जाने के कारण होती है। शुद्ध जल का घनत्व 0.997 ग्राम/सेमी होता है, जबकि समुद्री जल का घनत्व 1.02822 ग्राम/सेमी होता है। ताप द्वारा जल की श्यानता बदलती है। पृष्ठ सक्रियकों द्वारा जल का पृष्ठ तनाव बदलता है। पृष्ठ सक्रियकों के उदाहरण वसीय पदार्थ, पेट्रोलियम पदार्थ, डिटरजेन्ट, साबुन आदि हैं। जलीय जीव–जन्तु एवं पादपों के वितरण एवं गतिविधियों पर पृष्ठ सक्रियकों का बहुत प्रभाव पड़ता है। अनेक प्राणी इसके कारण जल सतह पर उतरते रहते हैं, कुछ तैरते रहते हैं या निश्चल पड़े रहते हैं। अनेक पादप व शैवाल शीघ्रता के साथ जल सतह पर फैल जाती हैं।

पृष्ठ सक्रियक जल प्रदूषक हैं। इनका निम्नीकरण प्रकृति में ऑक्सीकारी जीवाणुओं द्वारा किया जाता है। प्रयोगशाला में यह क्रिया जल में एल्यूमिनियम सल्फेट मिलाकर जल पृष्ठ सक्रियकों का स्कन्ध करा कर की जाती है। ये इस क्रिया द्वारा जल के पेंदे में बैठ जाते हैं तथा स्वच्छ जल सतह से निथार कर पृथक कर लिया जाता है।

6) सूक्ष्म जीवों द्वारा प्रदूषण नियंत्रण (Micro-organism in pollution control) -

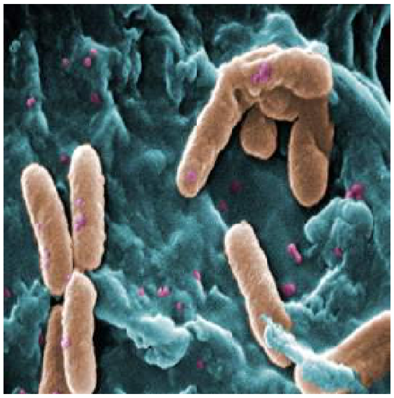

स्यूडोमोनास (प्रवर्धित चित्र)

वाहितमल व अपशिष्ट जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों को नष्ट करने का कार्य अनेक वायवीय **(Aerobic)** एवं अवायवीय **(Anaerobic)** सूक्ष्म जीवों द्वारा किया जाता है। दुग्ध, पनीर बनाने वाली डेयरी के अपशिष्ट जल, यीस्ट, तेल आदि उद्योगों के जल, आलू व स्टार्च के कारखानों से अपशिष्टों को नष्ट करने की क्रिया अवायवीय विधि से की जाती है। इस प्रकार इन कारखानों से उठने वाली दुर्गन्ध से बचा जा सकता है। इस क्रिया में मीथेन गैस बनती है, जिसका उपयोग ईंधन **(Fuel)** क रूप में करते हैं। स्यूडोमोनास जाति का जीवाणु अनेक हाइड्रोकार्बन यौगिकों व एरोमेटिक यौगिकों का अपघटन कर अहानिकारक या कम विषालु पदार्थों में रूपान्तरित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

और अपघटित करने की क्षमता रखता है। कुछ सूक्ष्मजीव एक सूक्ष्मजीव द्वारा अपघटित कार्बनिक पदार्थ को पुनः और अपघटित कर इस क्रिया को सम्पन्न कराते हैं।

7) सूक्ष्मजीव एवं जैवभार उत्पादन (Microbes and biomass production) -

सौर ऊर्जा का उपयोग कर ताप, विद्युत एवं संश्लेषणीय ईंधन प्राप्त कर सकते हैं। घास, गन्ना, शैवाल, वन या जंगली पौधे सौर ऊर्जा का उपयोग कर जैवभार में वृद्धि करते हैं। इनसे जीवाश्मीय ईंधन बनता है।

8) इथेनॉल, हाइड्रोकार्बन एवं हाइड्रोजन का उत्पादन (Production of Ethanol, Hydrocarbon and Hydrogen) -

इथेनॉल एक उच्च कोटि का ईंधन है। यह रासायनिक व प्लास्टिक उद्योग में कच्चा माल के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका उत्पादन वनस्पतिक जैवभार से प्राप्त कार्बोहाइड्रेट्स के सूक्ष्म जैविक किण्वन **(Fermentation)** द्वारा किया जाता है। पौधे, मक्का **(Maize),** आलू, गन्ना, अन्नानास, चुकन्दर, शकरकन्द व ज्वार से मुख्य शर्करा सूक्रोस **(Sucrose)** प्राप्त कर इनका सूक्ष्मजीवों द्वारा निश्चित ताप पर किण्वन, कराकर इथेनॉल प्राप्त किया जाता है। यह पेट्रोल के साथ **20%** के अनुपात में मिलाकर ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। **94%** हाइड्रेटेड इथेनाल को पेट्रोल के साथ मिलाये बिना ईंधन के रूप में उपयोग लाते हैं।

यूफोरबिएसी कुल के पौधे लेटेक्स **(Latex)** का स्त्रावण करते हैं। लेटेक्स में **70%** जल एवं **30%** हाइड्रोकार्बन होते हैं। हाइड्रोकार्बन का उपयोग गैसोलीन निर्माण हेतु किया जाता है। कोशीय शैवाल बोट्रीकॉकस ब्रान्टी **(Bortycoccus braunti)** के शुष्क द्रव्य में **15%** से **75%** हाइड्रोकार्बन होते हैं। इनका उपयोग पेट्रोकेमिकल्स के रूप में संभव है।

तरल हाइड्रोजन उच्च कोटि का ईंधन है, जो सुगमता के साथ संग्रह किया जा सकता है, एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाया, ले जाया, जा सकता है। यह प्रदूषण भी नहीं फैलाता है। इसके लिए कच्चामाल जल है, जिसका H_2 व O_2 में विघटन किया जाता है।

(4) सामाजिक
(Social)

पर्यावरण हमारा सुरक्षा कवच है। जब कवच बहुत अच्छा होगा (अर्थात पर्यावरण प्रदूषित नहीं होगा व पर्याप्त मात्रा में होगा) तो हमारा पूर्ण विकास होगा, हम पूर्ण मानव बन सकेंगे जो विकास की अंतिम परिणिति है।

अतः हम सभी की सामूहिक जिम्मेदारी है कि हम पर्यावरण का संरक्षण (संतुलित दोहन) कर, उसके बढ़ते प्रदूषण को पहले रोकने का प्रयास करें और बाद में विभिन्न प्रकार की टेक्नोलॉजी **(Technology)** अपना कर उसके प्रदूषण को कम करें। यह करना अति आवश्यक भी है क्योंकि इसका कोई विकल्प नहीं है।

इसके लिए सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद ली जा सकती है। आज सभी विकसित तथा विकासशील देशों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ी है। पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम के लिए हम सभी को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समाज के साथ जुड़कर पर्यावरणीय प्रदूषण नियंत्रण संबंधी कार्यक्रम स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर बनाये जाने चाहिए और सरकार को उनकी कड़ाई से पालन सुनिश्चित करना चाहिए। सर्वप्रथम हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि हम अपने चारों और फैल रहे प्रदूषण को रोकें, यह तब ही संभव हो सकता है यदि–

1. सरकार द्वारा सभी उद्योगों के प्रदूषण रोधक संयंत्र (फिल्टर, भाप संग्राहक, वैद्युत अवक्षेप, अवशोषक) लगाने को अनिवार्य बनाना चाहिए तथा प्रदूषण रोधक यंत्रों की जांच समय–समय पर की जानी चाहिए कि वह मानकों के अनुरूप है अथवा नहीं।

विद्युत चालित अवक्षेपक संयंत्र

2. नये उद्योग स्थापित करने पर पर्यावरण प्रदूषण के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाये तथा फैक्ट्री एक्ट में भी आवश्यक संशोधन किये जाने चाहिए।

3. समाज के सभी लोगों को चाहिए कि वे इस बात का ध्यान रखें कि गली–मोहल्लों में कूड़े–कचरे के ढेर न लगने दें, समय रहते उनकी सफाई करें तथा गन्दगी से उत्पन्न बीमारियों के बारे में लोगों को आगाह करें।

4. वाहन प्रदूषण से बचने के लिए सभी वाहन चालकों को अपने वाहनों की समय–समय पर प्रदूषण सम्बन्धी जॉच करानी चाहिए और समाजसेवी लोगों को छुट्टियों तथा विशेष अवसरों पर सड़कों पर केम्प का आयोजन कर उनके द्वारा वाहन चालकों को प्रदूषण सम्बन्धी जानकारी दी जानी चाहिए।

5. सार्वजनिक स्थलों पर कूड़ा–कचरा डालने हेतु समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए तथा दीवारों पर स्लोगन लिखे जाने चाहिए।

6. लोगों के मस्तिष्क में यह बात बैठानी चाहिए कि उनके सहयोग के बिना प्रदूषण नियंत्रण सम्भव नहीं हैं। उन्हें यह बात समझानी चाहिए कि रेल्वे स्टेशन, बस स्टैण्ड, पार्क, सिनेमा हॉल, धर्मशाला आदि पर व्यर्थ पानी न बहायें, रास्ते में कूड़ा–करकट न फेंकें, जोर–जोर से बातें न करें, धूम्रपान व नशीले पदार्थों का सेवन न करें अथवा ऐसा व्यवहार न करें जिससे प्रदूषण फैलता हो।

7. सरकार द्वारा सस्ते एवं स्वच्छ शौचालयों हेतु लागू योजनाओं की जानकारी ग्रामीणों को दी जानी चाहिए क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में खुले स्थानों पर शौच आदि करने से प्रदूषण फैलता है।

8. ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण संबंधी अनौपचारिक शिक्षा ग्रामवासियों को समय–समय पर दी जानी चाहिए, जिससे पर्यावरण के प्रति वह जागरूक हो सके।

9. सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान पूर्णतः प्रतिबंधित होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति धूम्रपान करने वाले के संपर्क में रहता है, तो उस पर भी धूम्रपान का 50 प्रतिशत से अधिक प्रभाव होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

10. सरकार द्वारा जनता के सहयोग से वनों के पुनः उत्थान के लिए तेजी से प्रयास किये जाने चाहिए। वृक्षारोपण को राष्ट्रीय कार्यक्रम मानना चाहिए।

11. उद्योगों के लिए यह अनिवार्य हो कि वह मशीनों की ध्वनि को माप कर उसी के अनुसार साइलेन्सर का प्रयोग करें। नयी मशीन से शोर कम होता है, अतः मशीनों का समय–समय पर नवीनीकरण करते रहना चाहिए।

12. वाहनों के निर्माण में नयी तकनीक का प्रयोग किया जाना चाहिए।

13. वाहनों में सी.एन.जी. गैस तथा सीसा रहित पेट्रोल का ही प्रयोग अधिकांशतः किया जाये।

14. प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों एवं एक सीमा से अधिक पुराने वाहनों की प्रदूषण संबंधी जॉच प्रदूषण नियंत्रण विभाग द्वारा समय–समय पर अनिवार्य रूप से की जाये।

15. खेतों में रासायनिक खाद एवं रासायनिक कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखा जाये कि उनका पानी बहकर पीने वाले जलाशयों में तो नहीं जाता है। कृषकों को जैविक खाद तथा जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।

16. घर से निकलने वाले गंदे पानी, वाहित मल, कारखानों से निकले अवशिष्ट पदार्थों आदि को नदियों, नहरों या समुद्र में नहीं गिरना चाहिए तथा कूड़ा–करकट को भी जलाशयों में न डालकर गांव अथवा शहर के बाहर गड्ढों में डालकर मिट्टी से ढ़ंक देना चाहिए।

17. जिन सड़कों पर वाहनों की संख्या अधिक हो वे अनिवार्य रूप से पक्की बनाई जाये, जिससे वायु प्रदूषित न हो तथा सड़कों के किनारे अधिक से अधिक वृक्ष लगाये जाने चाहिए।

18. औद्योगिक इकाईयों एवं ईंट भट्टों की चिमनियों को अधिक ऊँचा बनाना चाहिए तथा चिमनियों में फिल्टर तथा विशेष छन्ने लगाये जाने चाहिए और इनकी स्थापना आबादी वाले क्षेत्र से दूर होनी चाहिए।

19. ग्रामीण क्षेत्र में पशुओं के गोबर को खुले में बाहर न डालकर गोबर गैस संयंत्र लगाकर उसमें प्रयोग करना चाहिए।

20. शहरी तथा अर्द्धशहरी क्षेत्रों में सुलभ शौचालयों तथा विद्युत शवदाह गृहों की स्थापना की जानी चाहिए जिससे गन्दगी व अधजले शवों तथा कार्बनिक पदार्थों को नदियों में बहने से रोका जा सके।

21. सभी स्तरों पर शिक्षा के क्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण संबंधी जानकारी विद्यार्थियों को दी जानी चाहिए।

22. समाज में यह जागरूकता पैदा करनी होगी कि वन संरक्षण से पर्यावरण संरक्षण काफी हद तक संभव है। हमें हर घर में एक हरा पेड़ अवश्य लगाना चाहिए। स्कूलों, सड़कों, गलियों, खलिहानों, खेतों आदि में जहॉ पेड़ लगाने की जगह हो, पेड़ अवश्य लगाया जाए और उसकी परवरिश भी की जाये।

23. ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में जहॉ पीने हेतु कुंओं पर निर्भरता है, कुंओं को ढ़ंककर रखा जाये और प्रतिमाह पोटैशियम परमैग्नेट तथा ब्लीचिंग पाउडर डालकर पानी को शुद्ध रखा जाये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

24. मानव द्वारा भौतिक सुख–सुविधाओं की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले प्रकृति के विनाश एवं उससे उत्पन्न खतरों की जानकारी की शिक्षा का प्रावधान जरूरी है।

25. प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करने वाले एवं पर्यावरण प्रदूषित करने वाले व्यक्ति का सामूहिक रूप से दंड का विचार होना चाहिए।

26 सामाजिक संगठन सरकार को आगाह करें कि वह बीड़ी, सिगरेट, शराब इत्यादी नशीली पदार्थों की बिक्री बंद करे।

27. शालाओं में ईको क्लब (प्रकृति क्लब) का निर्माण करें। इसके लिए केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय 2500 रूपए वार्षिक आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

विद्यालय में ईको क्लब

28. जिला स्तर पर पर्यावरण वाहिनी गठित की जानी चाहिए। इसमें प्रशासक, विद्यार्थी, शिक्षा शास्त्री, स्वयंसेवी संस्था के सदस्य, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रतिष्ठित नागरिक आदि 100 सदस्य हो सकते हैं। प्रत्येक सदस्य को 100 रूपए प्रतिमाह सरकार देती है, जिन्हें पर्यावरण संबंधी गतिविधि पर खर्च कर सकते हैं। सदस्य, क्षेत्र में प्रदूषण फैलाने वाले उद्योग या अन्य तंत्र के बारे में लिखित सूचना दे सकता है, जिस पर जिलाधीश अविलम्ब कार्यवाही करेंगे। जिलाधीश इस संगठन के अध्यक्ष होते हैं।

29. पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण प्रदूषण को रोकने व कम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में मेलों व त्यौहारों के समय विशेष प्रदर्शनियॉं आयोजित की जानी चाहिए। पोस्टर, स्लाइड और दृश्य श्रव्य सामग्री द्वारा प्रचार प्रसार होना चाहिए।

30. राज्य सरकारों, व्यक्तिगत संस्थाओं को अपराम्परागत साधनों बायोगैस, सौर ऊर्जा के चूल्हे, निर्धूम चूल्हे, पानी गर्म करने के हीटर आदि का विकास करना चाहिए।

31. सरकार को चाहिए कि वह रसोई गैस एलपीजी को आसानी से उपलब्ध कराये जिससे वनों का कटान, कम हो सके।

32. घरों में ट्यूबवेल खोदकर लोग जल का शोषण कर रहे हैं, इस पर पाबंदी लगानी चाहिए।

33. शहरों में प्रदूषण रोकने हेतु ग्रामीणों को शहरों की तरफ पलायन से रोकना होगा। इस हेतु ग्रामीण उद्योगों तकनीकों की जानकारी जरूरी है। जैसे–गुड़ निर्माण, बांस उद्योग, उद्यान, कृषि से प्राप्त उत्पाद पर आधारित उद्योग कमजोर वर्ग के लोगों के विकास हेतु मददगार हो सकते हैं। भूमिहीनों के लिए उद्योग जैसे–बढ़ईगिरी, रस्सी, टोकरी, ईंट एवं बड़ी बनाना, तेन्दू पत्ते का संग्रहण विकास में मददगार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हो सकते हैं। हथकरघा, सिलाई, ट्रेक्टर, साइकिल, जीप की मरम्मत, टंकण कार्य उपयुक्त उद्योग है। बालबाड़ी के माध्यम से बच्चों की शिक्षा, राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के द्वारा सफाई, स्वास्थ्य, संतुलित आहार की शिक्षा देनी चाहिए।

34. पारिस्थितिक विस्थापितों, नवीनीकरण, क्षरण, भूकम्प, जैव–विविधता में कमी, विद्युत संचरण में हानियों को रोकने हेतु बड़े बांधों की तुलना में छोटे बॉधों के निर्माण पर जोर देना चाहिए।

35. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारतीय संसाधनों के उपयोग एवं उनके अनुचित उत्पादों का भारतीय बाजारों में प्रवेश पर प्रतिबंध आवश्यक है।

36. ग्रामीण पुनर्निर्माण हेतु परिवार को लघु इकाई एवं 10–15 ग्रामों के बीच सेवा केन्द्र तथा विकासखंड मुख्यालय के विकास केन्द्र के रूप में विकसित करना होगा।

37. परिवार कल्याण कार्यक्रम को 'प्रदूषित पर्यावरण हमारे लिए खतरा है' की जानकारी देकर प्रभावी बनाना चाहिए।

38. श्रव्य दृश्य साधनों तथा रेडियो एवं समाचार पत्रों के माध्यम से लोगों की छोटे परिवार की महत्ता समझाना चाहिए। बेटे, बेटी में भेदभाव नहीं करने की जागृति लाना चाहिए।

39. वनों की अनावश्यक कटाई रोकी जानी चाहिए तथा आवश्यक स्थिति में भी परिपक्व पेड़ों को ही कटवाना चाहिए।

40. बढ़ते हुए मरूस्थल को रोकने हेतु मरूप्रदेश में वृक्षारोपण की योजनाओं की अभिवृद्धि करनी चाहिए।

41. उद्योगों से अपशिष्ट पदार्थों को जल में छोड़े जाने की प्रक्रिया को रोकना चाहिए या छोड़ने से पूर्व उपचार करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

42. हाल के वर्षों में की गई शोधों के अनुसार डीजल इंजन 40 प्रतिशत मिथानोल तक मिश्रित ईंधन से चलने में समर्थ है। मिथानोल एक स्वच्छ ज्वलनशील ईंधन है। यह पानी और वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाती है। सरकार को इस तकनीक का प्रयोग करना चाहिए।

पर्यावरण प्रबंधन के कानूनी प्रावधान
(Legal Provisions for Environmental Management)

जून 1972 ई. में स्टाकहोम में सम्पन्न मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिवेशन के अनुसार ''मनुष्य अपने पर्यावरण का निर्माता एवं शिल्पकार दोनो ही है जिससे उसे भौतिक स्थिरता मिलती है तथा उसे बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास का सुअवसर प्राप्त होता है।'' इस ग्रह पर मनुष्य जाति की एक लम्बी तथा पीड़ादायक उत्क्रमण यात्रा में एक ऐसी स्थिति आ गयी है जब विज्ञान तथा तकनीकी के तीव्र विस्तार के द्वारा मनुष्य ने एक प्रकार से अपने पर्यावरण की कायापलट करने की क्षमता प्राप्त कर ली है।

पर्यावरण प्रबंधन के लिए अनेक कानूनी प्रावधान बनाये गये हैं जिनकी मुख्य भूमिकाएँ निम्न हैं –

1. कानून पर्यावरण को क्षति पहुॅचाने वाले व्यक्ति को दण्डित करता है।
2. कानून पीड़ित को क्षतिपूर्ति दिलवाता है।
3. कानून व्यक्ति को पर्यावरण पर दबाव बढ़ाने से वर्जित करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. कानून पर्यावरण संरक्षण नीति को कार्यरूप में परिणत करता है।

5. कानून विकास नीति को भी कार्यरूप में परिणत करता है।

भारत में पर्यावरण कानून का इतिहास 115 वर्ष पुराना है। प्रथम कानून 1894 में पास हुआ था जिसमें वायु प्रदूषण नियंत्रणकारी कानून थे। वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण एक जटिल समस्या है तथा वह सम्पूर्ण विश्व के लिए चुनौती है। आज का बढ़ता हुआ प्रदूषण सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अभिशाप बन गया है। मानव के अतिरिक्त वन एवं वन्य जीव प्रदूषण से त्रस्त है। इसीकारण संविधान में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है तथा इस समस्या से निपटने के लिए समय–समय पर कई कानून भी बनाये गये हैं।

कानूनी स्थिति

(Legal Status)

पर्यावरण कानून का प्रमुख उद्देश्य वातावरण के प्रमुख उपहार को प्रदूषण से मुक्त रखना है। भारतीय समाज धार्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण यहॉं प्राकृतिक संसाधन (पौधे, जन्तु, नदियॉं) पूजे जाते हैं। इसी कारण प्राचीनकाल में पर्यावरण रक्षा के लिए कोई कानून नहीं बना था लेकिन पिछली सदी से पर्यावरण को बचाने के लिए बड़ी संख्या में कानून बनाये गये। ये सभी कानून तीन श्रेणियों में बॉंटे जा सकते हैं –

1. सामान्य कानून
2. विनियामक कानून
3. विशेष विधान

1. सामान्य कानून (Common Laws):- सामान्य कानून इंग्लैण्ड के परम्परागत कानूनकी संख्या है। यह न्यायिक निर्णयों पर आधारित है और यह अभी तक लागू है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 372 कॉमन लॉ पर आधारित है । इस कानून के अंतर्गत किसी भी कार्य के विरूद्ध जो संपत्ति या व्यक्ति को हानि का कारण बना हो प्रभावित पक्ष क्षतिपूर्ति या निषेधाज्ञा या दोनों का दावा कर सकता है। पर्यावरण प्रदूषण के लिए निम्न तीन कारक हैं:–

(1) व्यवधान

(2) अतिक्रमण

(3) लापरवाही।

2. विनियामक कानून (Statutory Law) - विनियामक प्रावधान जो सभी प्रकार के प्रदूषण को रोकने तथा नियन्त्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है वह इस प्रकार है –

(1) संवैधानिक प्रावधान

(2) नागरिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधान

(3) फैक्टरीज एक्ट 1948

(4) वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट 1972

(5) मोटर साईकिल एक्ट 1988

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. विशेष विधान (Specific legislations) - जल एवं वायु प्रदूषण ।

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions) - भारतीय संविधान विश्व का पहला संविधान है, जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना यह सुनिश्चित करती है कि हमारा देश समाजवादी समाज की अवधारणा पर आधारित है, जहाँ राज्य व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक समस्याओं को प्राथमिकता देता है। समाजवाद का मूल लक्ष्य है 'सभी को जीवन का सुखद स्तर' उपलब्ध करवाना जो कि केवल एक प्रदूषण मुक्त वातावरण में ही संभव है।

मूल अधिकार

(Fundamental Rights)

अनुच्छेद 19 (1ए) प्रत्येक नागरिक को बोलने तथा अभिव्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रता की गारंटी देता है। इसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल है। यह अनियंत्रित नहीं है। इसे अनुच्छेद 19(2) में वर्णित आधारों पर सीमित किया जा सकता है।

भारत में जनमत तथा मीडिया ने जनसामान्य के पर्यावरण संबंधी मुद्दों के बोध को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न गैर सरकारी संगठनों **(NGO'S)** ने अनुच्छेद 19 (1ए) में प्रदत्त मूलभूत स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए पर्यावरण से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया है। उदाहरण के लिए टिहरी डेम प्रोजेक्ट में जनमत तथा मीडिया ने प्रस्तावित बॉध के उचित पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के लिए तथा प्रोजेक्ट के सभी सुरक्षा पहलुओं पर विस्तार से एकाधिकबार विचार करने के लिए सरकार को बाध्य कर दिया है।

अनुच्छेद 19(1जी) सभी नागरिकों को व्यापार तथा धंधा करने की स्वतंत्रता का अधिकार देता हैं यह अधिकार भी उन्मुक्त नहीं है। इस पर अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत जनता के व्यापक हित में यथोचित प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। इसी अनुच्छेद के तहत एम.सी. मेहता (1996) के केस में उच्चतम न्यायालय में निर्देश दिया था कि खतरनाक, हानिकारक, भारी तथा बड़े पैमाने पर दिल्ली में चल रहे उद्योगों को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अन्य उपनगरों में दिल्ली के मास्टरप्लान 2001 के अंतर्गत हटाया या पुनर्स्थापित किया जाए।

सन 1976 में राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों में 42 वें संविधान संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 48 'ए' जोड़ा गया है। जो घोषणा करता है कि 'देश में सरकार पर्यावरण की रक्षा व संवर्द्धन के लिए एवं वनों तथा वन्यजीव की सुरक्षा के लिए प्रयास करेगी'। सन 1976 से पहले पर्यावरण राज्यों की सूची में था किन्तु 42 वें संशोधन के पश्चात यह समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया।

अनुच्छेद 51 ए (जी) हर नागरिक पर यह उत्तरदायित्व डालता है कि वह वनों, झीलों, नदियों तथा वन्यजीवन सहित प्राकृतिक वातावरण का संरक्षण तथा सुधार करें और जीवित प्राणियों के प्रति करूणा रखें।

अनुच्छेद 47, 48 तथा 51 ए (जी) के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य है कि वह पर्यावरण तथा नागरिक स्वास्थ्य की रक्षा तथा सुधार करे और जनता के लिए प्रदूषण रहित जल, वायु तथा पर्यावरण सुलभ कराये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संघीय ढांचा

(Federal Structure)

भारतीय संविधान का भाग–1 एक्स न्यायिक तथा प्रशासनिक संबंधों को नियमित करता है। अनुच्छेद–246 संसद को समूचे देश के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है, जबकि राज्य न्यायाधिकरण अपने–अपने राज्यों के लिए कानून बनाने की शक्ति रखते हैं। संविधान की अनुसूची **(VII)** संघ तथा राज्यों को पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं।

पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका (उच्चतम न्यायालय) की भूमिका –भारत में न्यायपालिका ने पर्यावरण संबंधी जनजागृति लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय संघ (1991) बनाम एम.सी.मेहता के केस में उच्चतम न्यायालय में निम्नलिखित निर्देश आम जनता में पर्यावरण संबंधी जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से जारी किये –

1. सभी सिनेमा हाल, चल सिनेमा तथा वीडियो पार्लर अनिवार्य रूप से कम से कम दो पर्यावरण फिल्म, संदेश अनिवार्यरूप से प्रत्येक शो में निःशुल्क दिखायेगी। यह उनके लिए लाइसेंस जारी करते समय पूर्व शर्त होगी।

2. पर्यावरण तथा प्रदूषण संबंधी रूचिकर कार्यक्रम का प्रसारण प्रतिदिन 5 से 7 मिनट अवधि के लिए तथा सप्ताह में एक बार लम्बी अवधि के लिए दूरदर्शन तथा आल इंडिया रेडियो द्वारा प्रसारित किया जाना।

3. सिनेमा हाल में प्रतिदिन लघु अवधि की पर्यावरण तथा प्रदूषण संबंधी सूचनाप्रद फिल्म दिखाना।

4. छात्रों में सामान्य जागृति लाने के लिए पर्यावरण को विद्यालयों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में एक अनिवार्य विषय बनाया जाना।

पर्यावरण के संबंध में न्यायिक सक्रियता का सबसे उज्जवल उदाहरण एम.सी. मेहता विरूद्ध भारतीय संघ केस है। इसमें कानपुर से बहते गंगा के जल व तालाबों में बहता चमड़ा कारखाने से औद्योगिक बहिस्त्राव से दूषित होकर विषैला तथा स्वास्थ्य के लिए घातक होने का मामला था। उच्चतम न्यायालय ने अपशिष्ट प्रवाह को रोकने तथा उपचार संयंत्र स्थापित करने के लिए प्रशासन को समयबद्ध निर्देश जारी किये।

उच्चतम न्यायालय ने वाहनों से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए विभिन्न निर्देश जारी किये हैं जैसे

1. सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग चार महानगरों (दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई) तथा सन 2000 तक पूरे देश में।

2. नये पंजीकृत वाहनों में कैटालिटिक कन्वर्टर लगे होने चाहिए।

3. दिल्ली में अप्रैल सन् 2001 तक टैक्सियों, आटो रिक्शा तथा बसों में सी.एन. जी. का प्रयोग।

देश की पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य में न्यायपालिका द्वारा प्रदर्शित रूचि बने रहने की आवश्यकता है। यह अकेला निकाय है जो पर्यावरण संबंधी मसलों को प्रभावित कर सकता है। उच्चतम न्यायालय के प्रयास आम जनता द्वारा सराहे गये हैं।

भारतीय दण्ड संहिता (IPC) तथा अपराधिक प्रक्रिया संहिता (CRPC) -

भारतीय दंड संहिता का अध्याय **(xiv)** जनता के स्वास्थ्य, सुरक्षा,सुविधा, शालीनता तथा मनोबल से संबंध रखता है। भारतीय दंड संहिता का अनुभाग 268 में सार्वजनिक मनोबल के लिए दण्ड का प्रावधान है। इन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रावधानों के अंतर्गत किसी व्यक्ति का कोई भी कृत्य या भूल जो कि दूसरे व्यक्ति को पर्यावरण प्रदूषण के द्वारा क्षति पहुँचाता है, को नियंत्रित किया जा सकता है।

अनुभाग 272 से 276 (भारतीय दंड संहिता) में खाद्य, पेय तथा औषधियों के अपमिश्रण से संबंधित है। अनुभाग 277 (भारतीय दंड संहिता) में जल प्रदूषण की रोकथाम के लिए प्रयोग किया जाता है। अनुभाग 277 के अनुसार यदि किसी सार्वजनिक झरने, कुएँ या जलाशय के जल को दूषित किया जाता है तो तीन मास तक के लिए कारावास या 500/–जुर्माना दोनों से दण्डनीय हैं यदि वह यह कृत अनजाने में नहीं करता है।

अनुभाग 133 **(CRPC)** के अधीन जिला मजिस्ट्रेट या सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट या कार्यालय मजिस्ट्रेट यदि उसे राज्य सरकार द्वारा शक्ति प्रदत्त है। पुलिस अधिकारी से प्राप्त रिपोर्ट या अन्य सूचना की प्राप्ति पर, प्रदूषणकारक सार्वजनिक मलीनता को दूर करने के सशर्त आदेश दे सकता है। सशर्त आदेश अंतिम भी हो सकता है तथा यदि संबंधित व्यक्ति उसके अनुपालन में चूक करता है, तो उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के अधीन दण्डित किया जा सकता है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1980 (संशोधित 1988) इसके निम्नलिखित मुख्य बिन्दु हैं –

1.सरकारी अनुमति के बिना प्राकृतिक वन अन्य प्रकार के वनोपण में परिवर्तित नहीं किया जाना चाहिए।

2.अवैध भूमि अधिग्रहण/अतिक्रमण तथा फसल चक्रण पर प्रभावकारी निगरानी होनी चाहिए।

3.वन प्रबंधन तथा प्रशिक्षण पर बल दिया जाना चाहिए।

4.पर्वतों पर वृक्षों की कटाई 10 हेक्टेयर तथा मैदानों में 20 हेक्टेयर से अधिक नहीं होनी चाहिए।

5.यदि कोई एक वन क्षेत्र को किसी विकास प्रकल्प के लिए रूपान्तरित करता है तो उसे उसके बराबर क्षेत्र पर वनरोपण करना चाहिए।

6.पुनर्वनीकरण के उद्देश्य से किसी भी क्षेत्र को निर्वनीकरण नहीं करना चाहिए।

7.वन भूमि की चराई प्रतिबंधित होनी चाहिए।

8.कानून का कोई भी उल्लंघन दण्डनीय होना चाहिए।

वन (संरक्षण) अधिनियम 1980–वनों के संरक्षण संबंधी कई नियम तथा कानून प्रभावी हैं, लेकिन वनों के संरक्षण के लिए वन संरक्षण अधिनियम 1980 मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य गैर–वानिकी कार्यों के लिए वन क्षेत्रों के उपयोग को निरूत्साहित करना है। इस अधिनियम में राष्ट्र के विकास के लिए यदि कोई भी गैर वानिकी कार्य करवाता है जैसे–सड़क बनाना, बॉध का निर्माण कराना, विद्युत लाइन डालना, खनन कार्य करवाना आदि कार्यों की परियोजनाएँ चालू करना हो तो ऐसी स्थिति में कुछ शर्तों के अंतर्गत वन क्षेत्र के स्थानान्तरण के लिए सरकार के द्वारा अनुमति लेने का प्रावधान भी है।

राज्य सरकार को किसी वन या उजाड़ भूमि को जहॉ चराई तथा कटाई प्रतिबंधित हो आरक्षित वन घोषित करने का अधिकार है। कृषि के लिए चराई तथा वनों की सफाई भी किसी भूखण्ड पर उसे मृदाक्षय से बचाने तथा भू–जल स्तर को बनाये रखने के लिए प्रतिबंधित की जा सकती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 (1991 में संशोधन) —वन्यजीव पारिस्थितिक तंत्र का एक प्रमुख घटक है। पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने, मृदा क्षय रोकने, औषधि, खाद्य, मसालों, सुगंधों आदि का स्त्रोत के रूप में, आर्थिक उत्पादों के स्त्रोत के रूप में, उत्तम नस्लों के प्रजनन के लिए वन्य जीवन अपरिहार्य है। आदिकाल से वन्य जीव को बचाने के लिए विविध न्यायिक उपाय अपनाये गये हैं, जैसे —

1. मद्रास वाइल्ड एलीफेंट प्रीजर्वेशन एक्ट 1873
2. वाइल्ड वर्ड प्रोटेक्शन एक्ट 1887
3. वाइल्ड वर्ड एण्ड एनिमल प्रोटेक्शन एक्ट 1912
4. सेंट्रल बोर्ड आन वाइल्ड लाइफ 1952
5. वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट 1972 संशोधित 1991

वाइल्ड लाईफ प्रोटेक्शन एक्ट के अंतर्गत

1.एक भारतीय वन्य जीवन बोर्ड की स्थापना की गई जिसकी अध्यक्षता भारत के प्रधानमंत्री करते हैं तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक वन्य जीवन सलाहकार बोर्ड का गठन किया गया।

2.वन्य जीवन अधिनियम के अंतर्गत कतिपय जैव भौगोलिक क्षेत्रों का गठन किया गया है। वे संकटग्रस्त प्रजातियों को प्राकृतिक आवास, संसाधन तथा संरक्षण उपलब्ध कराते हैं तथा जैव विविधता को सुरक्षित रखते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं —

(1) जैव मंडलीय आरक्षित क्षेत्र

(2) राष्ट्रीय उद्यान

(3) अभ्यारण्य।

3. वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम वन्य प्राणियों के शिकार तथा उन्हें पकड़ने को निषेध करता हैं।

4. वन्य उत्पाद जैसे खाल तथा हॉथी दॉत का व्यापार प्रतिबंधित हैं।

5. बोटेनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया तथा जूलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया दोनों संकटग्रस्त दुर्लभ तथा आपदाग्रस्त प्रजातियों की सूची तैयार करते हैं।

जल (प्रीवेन्शन एण्ड कन्ट्रोल ऑफ पोल्यूशन) एक्ट 1974, संशोधित 1988

1. जल एक्ट को संविधान के अनुच्छेद 252 (1) के अंतर्गत समाज कल्याण मानक के रूप में जल प्रदूषण की रोकथाम तथा नियंत्रण एवं अभिरक्षण या जल की परिपूर्णता की रक्षा के लिए बनाया गया है।
2. जल प्रदूषण की रोक थाम तथा नियंत्रण के लिए केन्द्रीय तथा राज्य बोर्डों की स्थापना।

केन्द्रीय बोर्ड के कार्य

बोर्ड का प्रमुख कार्य है। राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में जल धाराओं तथा कुओं की स्वच्छता को बढ़ाना। यह निम्नलिखित कार्यों का निष्पादन कर सकता हैः—

1. केन्द्र सरकार को जल प्रदूषण से संबंधित नियंत्रण से संबंधित मामलों में सलाह देना।
2. राज्य बोर्डों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना या उनके बीच विवादों का समाधान करना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. राज्य बोर्डों को तकनीकी सहायता तथा मार्गदर्शन उपलब्ध कराना तथा जल प्रदूषण संबंधी खोज एवं अनुसंधान को प्रायोजित करना।
4. जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण में लगे व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण की योजना तथा आयोजन करना।
5. जन संचार माध्यमों के द्वारा जल प्रदूषण के संबंध में व्यापक कार्यक्रम आयोजित करना।
6. जल प्रदूषण संबंधी तकनीकी एवं सांख्यिकीय ऑकड़ों का संग्रह, संकलन तथा प्रकाशन करना।
7. एक जल धारा या कुएँ के लिए मानक तय करना।
8. जल प्रदूषण की रोकथाम तथा नियंत्रण के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना तथा आयोजन करना।
9. किसी अवजल या औद्योगिक अपशिष्ट के नमूनों के विश्लेषण के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना करना या मान्यता देना।

राज्य बोर्ड के कार्य

1. जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण तथा अपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम बनाना।
2. जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण तथा अपशमन से संबंधित मामलों में राज्य सरकार को परामर्श देना।
3. जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण तथा अपशमन से संबंधित सूचनाएँ एकत्र करना तथा प्रसारित करना।
4. जल प्रदूषण नियंत्रण से संबंधित केन्द्रीय बोर्ड के द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सहयोग देना तथा तत्संबंधी व्यापक शिक्षा कार्यक्रमों को आयोजित करना।
5. अवजल, औद्योगिक अपशिष्ट तथा अवजल एवं औद्योगिक उपचार कार्यों तथा संयंत्रों का निरीक्षण करना।
6. अवजल तथा औद्योगिक अपशिष्ट के उपचार के लिए कम खर्चीली तथा भरोसेमंद विधियों को विकसित करना।
7. कृषि में अवजल तथा अनुकूल औद्योगिक अपशिष्टों के उपयोग की विधियॉ विकसित करना।
8. भूमि पर अवजल तथा औद्योगिक अपशिष्ट के निपटान की प्रभावी विधियॉ विकसित करना।
9. किसी जलधारा विशेष में निष्काषित किये जाने वाले अवजल तथा औद्योगिक अपशिष्ट के निपटान के लिए प्रभावी विधियॉ विकसित करना।
10. ऐसे उद्योग जिसके द्वारा किसी जल धारा या कुएँ के जल को प्रदूषित किये जाने का खतरा हो, स्थिति के संबंध में राज्य सरकार को परामर्श देना।
11. किसी अवजल या औद्योगिक अपशिष्ट के पानी के नमूनों के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना करना तथा मान्यता देना।

राज्य बोर्ड की शक्तियॉ

(1) सूचना प्राप्त करने की शक्ति–बोर्ड के पास लोगों से जल के स्थानान्तरण तथा निस्तारण तंत्र की रचना, स्थापना तथा संचालन संबंधी सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।

(2) बाह्य स्त्राव के नमूने लेने की शक्ति बोर्ड या कोई प्राधिकृत अधिकारी के पास किसी तंत्र या कुएँ से

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पानी के नमूने या किसी अवजल या औद्योगिक बहिस्त्राव के नमूने विश्लेषणार्थ लेने की शक्ति है।

(3) नमूनों के विश्लेषण की रिपोर्ट तीन प्रतियों में बनायी जाएगी एक प्रति संबंधित व्यक्ति या एजेंट, दूसरी प्रति यदि कानूनी कार्यवाही करनी हो तो न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए रखी जाएगी।

(4) राज्य बोर्ड द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के पास बोर्ड की ओर से किसी भी स्थान में किसी संयंत्र, अभिलेख, पंजी, दस्तावेज या किसी पदार्थ की जॉच करने या किसी स्थान की खोजबीन करने तथा किसी दस्तावेज या अन्य पदार्थ को जब्त करने के लिए प्रवेश करने का अधिकार होगा।

(5) प्रदूषक पदार्थ के निपटान इत्यादि के लिए जलधारा तथा कुएॅ के प्रयोग के निषेध का अधिकार।

(6) राज्य बोर्ड किसी उद्योग या उपचार तथा निपटान व्यवस्था की स्थापना की सहमति केवल तभी देगा जबकि बोर्ड द्वारा लागू की गई शर्तों का पालन किया जाता हो। राज्य बोर्ड द्वारा लागू की गई शर्तों का पालन किया जाता है। राज्यबोर्ड द्वारा समय–समय पर उसके द्वारा लागू की गइ शर्तों की समीक्षा करेगा।

(7) जब किसी दुर्घटना या किसी कारण विषैला या प्रदूषक पदार्थ किसी जलधारा या कुएं या भूमि पर मौजूद है या उसके प्रवेश की सम्भावना है तो निम्न में से किसी उद्देश्य के लिए बोर्ड लिखित अभिलेख करते हुए कोई अभियान चला सकता है –

1. उस पदार्थ को हटाना तथा निपटारा करना।
2. इसकी उपस्थिति से उत्पन्न किसी भी प्रदूषण को हटाना तथा उपचार करना।
3. संबंधित व्यक्ति को किसी भी विषैले या प्रदूषक पदार्थ को निस्सारण करने से रोकने तथा निष्क्रिय करने हेतु आदेश जारी करना।

(9) सन् 1988 में जोड़े गये नये प्रावधान के अंतर्गत बोर्ड अपनी शक्ति के प्रयोग तथा उसके कार्य निर्वहन में किसी व्यक्ति को कोई आदेश दे सकता है, जिसमें –

1. किसी उद्योग, अभियान या प्रक्रिया को बंद करना, रोकना या नियमन
2. बिजली, पानी या अन्य किसी सेवा को रोकना या नियमन सम्मिलित है।

(10) किसी विषैले पदार्थ या प्रदूषक पदार्थ के किसी धारा, कुएॅ या भूमि पर प्रसार होने देने पर डेढ़ वर्ष से छह वर्ष तक कारावास तथा जुर्माने का दण्ड है।

एअर (प्रीवेन्शन एण्ड कंट्रोल ऑफ पोल्यूशन) एक्ट 1981, 1987 में संशोधित –

जून 1972 ई. में स्टाक होम में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में लिये गये निर्णयों को लागू करने के उद्देश्य से अनुच्छेद के अंतर्गत एअरएक्ट लाया गया था। इसका अधिकारिक क्षेत्र पूरा भारत है।

इसके मुख्य उद्देश्य हैं –

1. वायु प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण तथा उपशमन के लिए प्रावधान।
2. केन्द्रीय तथा राज्य बोर्डों की स्थापना के लिए प्रावधान।
3. ऐसे बोर्डों की शक्तियॉ प्रदान करने तथा उनके क्रियाकलाप तय करने का प्रावधान।

बोर्ड का संयोजन तथा सदस्यों की अर्हता तथा अनर्हता वाटर एक्ट के अधीन गठित बोर्ड के समान है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

केन्द्रीय बोर्ड के कार्य

1. वायु प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण तथा उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बनाना तथा उसे लागू करवाना।
2. वायु के गुणवत्ता में सुधार तथा वायु प्रदूषण से संबंधित मुद्दों पर केन्द सरकार तथा राज्य बोर्डों को सलाह देना।
3. नमूनों के विश्लेषण के लिए प्रयोगशालाओं को स्थापित तथा चिन्हित करना।
4. शुद्ध वायु के मानक तय करना।
5. जनता को वायु प्रदूषण के कारण, प्रभाव, रोकथाम तथा नियंत्रण के बारे में शिक्षित करने के लिए प्रसारण माध्यमों की सेवाओं का उपयोग करना।
6. वायु प्रदूषण के क्षेत्र में लोगों के प्रशिक्षण की योजना तथा आयोजन करना।

राज्य बोर्ड के कार्य

1. वायु प्रदूषण की रोकथाम तथा नियंत्रण के लिए कार्यक्रमों की योजना बनाना।
2. राज्य सरकार को वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र घोषित करने योग्य क्षेत्र तथा वायु प्रदूषण की सम्भावना वाले उद्योगों का पता लगाने के संबंध में सलाह देना।
3. समय–समय पर वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र की वायु की गुणवत्ता का निरीक्षण करना तथा वायु प्रदूषण को घटाने के लिए कदम उठाना।
4. वायु प्रदूषण के कारण, रोकथाम एवं नियंत्रण संबंधी सूचना एकत्रित तथा प्रचारित करना।

राज्य बोर्ड की शक्तियाँ

1. राज्य बोर्ड वायु प्रदूषण नियंत्रण वाले क्षेत्रों में औद्योगिक कार्यों को परिसीमित कर सकता है।
2. राज्य सरकार को राज्य की सीमा के भीतर किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियंत्रित क्षेत्र घोषित करने की संस्तुति करना। सम्पूर्ण पंजाब वायु प्रदूषण नियंत्रित क्षेत्र घोषित किया गया है।
3. राज्य बोर्ड की संस्तुति पर राज्य सरकार उद्योग को केवल स्वीकृत ईंधन तथा स्वीकृत उपस्कर प्रयोग करने के निर्देश दे सकती है। यह किसी भी पदार्थ के जलाये जाने को प्रतिबंधित कर सकती है।
4. बोर्ड वायु या उत्सर्जन नमूनों को विश्लेषण के लिए ले सकता है।
5. बोर्ड किसी भी उद्योग से सहमति वापस ले सकता है तथा नयी शर्तें लागू कर सकता है।
6. बोर्ड मोटर वाहन उत्सर्जन के मानकों के लिए मोटर वाहन अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकरणों/अधिकारियों को निर्देश दे सकता है।
7. बोर्ड द्वारा तय मानकों से अधिक वायु प्रदूषण उत्सर्जन होने पर डेढ़ वर्ष से छह वर्ष तक कठोर कारावास या दण्ड का जुर्माना होगा। यदि विफलता जारी रहती है तो प्रथम दोष सिद्धि के बाद पॉच हजार रूपए प्रतिदिन का अतिरिक्त जुर्माना होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण से क्या तात्पर्य है ?
2. कणिकीय प्रदूषकों के निस्तारण करने के लिए किस यंत्र का उपयोग करते हैं ।
3. प्रदूषित जल में उपस्थित रासायनिक पदार्थों द्वारा मनुष्यों के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
4. सिन्थेटिक दूध के दुष्प्रभावों के प्रबंधन के क्या उपाय हैं ?
5. हमें घर के पास बगीचा क्यों विकसित करना चाहिए ?
6. तरल हाइड्रोजन उच्च कोटि का ईंधन क्यों है ?
7. पर्यावरण प्रबंधन में कानून की क्या भूमिका है ?
8. एअर एक्ट के क्या उद्देश्य हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय समझाइए।
2. मृदा प्रदूषण के प्रभाव को समझाइए।
3. पालीथिन प्रयोग के दुष्प्रभाव को समझाइए। इसे किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है ?
4. पर्यावरणीय प्रबंधन के आर्थिक पक्ष के क्या उद्देश्य हैं ?
5. पर्यावरण प्रबंधन के सामाजिक पहलू पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।
6. पर्यावरण संरक्षण में उच्चतम न्यायालय की क्या भूमिका है ?
7. जल एक्ट में राज्य बोर्ड के क्या कार्य हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जल प्रदूषण के प्रमुख प्रभावों को लिखिए। जल प्रदूषण नियंत्रण के क्या उपाय है?
2. पर्यावरण प्रबंधन के इथिकल (नैतिक) पहलू पर प्रकाश डालिए।
3. पर्यावरणीय प्रबंधन के आर्थिक पक्ष को कौन–कौन से तत्व प्रभावित करते हैं? समझाइए।
4. जल एक्ट क्यों बनाया गया है? जल एक्ट में राज्य बोर्ड के कार्य एवं शक्तियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 5

पर्यावरण प्रबन्धन के उपगमन (एप्रोचेस)

पाठ्यक्रम–

आर्थिक नीतियॉं, पर्यावरण सूचक, मानकों (स्टैण्डर्स) की सेटिंग, सूचनाओं का आदान–प्रदान एवं निगरानी।

(1) आर्थिक नीतियॉं

(Economic Policies)

सरकारों ने आर्थिक विकास के लिए आर्थिक कार्यक्रमों में प्रत्यक्ष सहयोग देना प्रारंभ कर दिया है अर्थात अनेक कार्यक्रम स्वयं सरकार ही चला रही है। इनके सफल क्रियान्वयन के लिए सरकार द्वारा आर्थिक नीतियॉं बनायी गयी हैं। सरकार का उद्देश्य उपलब्ध प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों का पूर्ण उपयोग कर जनता के जीवन स्तर को उन्नत करना है और यह भी ध्यान रखना है कि जनता को आवश्यक वस्तुएॅं उचित मूल्य पर, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, उत्पादन बढ़े, लेकिन आर्थिक विषमता घटे, रोजगार के अवसर बढ़े, जनता को न्याय मिले व उसका शोषण न हो। आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। दीर्घकालीन विकास का ध्यान भी रखना होता है। राष्ट्र के आर्थिक विकास करने के लिए सरकार को आर्थिक नीतियां निर्धारित करनी पड़ती है और उनके पालन हेतु आवश्यक नियंत्रणों की भी व्यवस्था करनी होती है।

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning &Definition):-

आर्थिक विकास को गति देने के लिए वैज्ञानिक तरीके प्रयुक्त किये जा रहे हैं। राज्य को अपने महत्वपूर्ण निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासनिक अधिकारियों एवं राज्य कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता है। लेकिन सरकारी तंत्र किस आधार पर कार्य करे और उसके मार्गदर्शक तत्व क्या हो, यह निश्चित करना पड़ता है। अतः राज्य द्वारा निर्धारित उद्देश्यों, विचारों तथा निर्देशों को कुछ संक्षिप्त एवं स्पष्ट मार्गदर्शक सूत्रों एवं कार्य सिद्धान्तों में परिवर्तित करना आवश्यक हो जाता हैं इन मार्गदर्शक सूत्रों या सिद्धान्तों को नीतियां कहते हैं। इस प्रकार राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं के संचालन के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों तथा विचारों को आर्थिक नीतियॉं कह सकते हैं। राज्य अपने द्वारा आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आर्थिक नीतियों को साधन के रूप में प्रयुक्त करता है। प्रशासन तंत्र इन आर्थिक नीतियों के आधार पर आर्थिक गतिविधियों को सही दिशा देता है और निर्णय लेता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक नियोजन में सबसे पहले उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। आर्थिक नीतियॉ इन उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन है। इसलिए नियोजन के उद्देश्य निर्धारित करने के बाद आर्थिक नीतियों का निर्धारण किया जाता है। ये नीतियां ही योजना को क्रियान्वित करने वाले तंत्र का मार्गदर्शन करती है। आर्थिक नीतियॉ उस क्षेत्र की सीमा निर्धारित कर देती हैं, जिस पर निर्णय लेना है और ये इस बात का भी निश्चय करती हैं कि निर्णय उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो।

नीतियों की विशेषताएं (Characteristics of policies)

नीतियों की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ होती हैं –

(1) निरंतर चलने वाले दिशा निर्देश (Continuing Directive Guidelines):-

नीतियॉ ऐसे निर्णय निर्देश होती हैं जो एक बार निश्चित करने के बाद सदैव दिशा निर्देश देती रहती हैं। समय–समय पर परिस्थितियों के अनुसार इनके दिशा निर्देश मिलते रहते हैं।

(2) निर्णय सीमा की व्याख्या (Definition of Decision Limit):-

नीतियॉ प्रबन्धकों की निर्णय लेने की शक्ति को समाप्त नहीं करती बल्कि उस सीमा का निर्देशन करती है, जिस सीमा तक प्रबन्धकों को निर्णय लेने का अधिकार दिया गया है।

(3) नीतियॉ उद्देश्यों से भिन्न हैं (Policies are different from objectives)-

उद्देश्य हमारी योजना की वह मंजिल है जहॉ हमें पहुँचना है और नीतियॉ वे साधन या सविधियां हैं जिनके द्वारा मंजिल तक पहुॅच सकते हैं। इस प्रकार उद्देश्य योजना के लक्ष्यों की व्याख्या करते हैं और नीतियॉ उन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मार्ग–दर्शन देती हैं।

(4) नीतियॉ नियम नहीं है (Policies are not Rules) -

नीतियॉ किसी विचार पर आधारित एक निर्णय–निर्देश देती हैं। लेकिन निश्चित सीमा में अधिकारियों को अपनी परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेकर उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयत्न करना है, किन्तु नियम का पालन करना अनिवार्य है। नियमों का पालन नहीं करने पर दण्ड भी दिया जा सकता है।

आर्थिक नीति (Economic policy)

आर्थिक नीति का तात्पर्य किसी देश की सरकार द्वारा अपनाई गई उस नीति से है जो अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध नियमन एवं नियंत्रण को सरल बनाती है ताकि आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये आर्थिक नीति निर्धारित करते हैं। नीति में अनुकूल क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाता है। जबकि प्रतिकूल क्रियाओं को नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार आर्थिक नीति एक ऐसी क्रियाओं को प्रोत्साहित करने तथा प्रतिकूल आर्थिक क्रियाओं को नियमित एवं नियंत्रित करने की व्यवस्था होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक नियोजन में सरकार सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धारित करती है। इनकी प्राप्ति के लिये आर्थिक नीतियॉं निर्धारित की जाती हैं। प्रशासनिक अधिकारी आर्थिक क्रियाओं के संचालन में आर्थिक नीतियों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं । इस प्रकार आर्थिक नीति का तात्पर्य आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अपनायी जाने वाली कार्य–विधि से है। आर्थिक कियाओं में मुख्य रूप से उत्पादन, आय व सम्पत्ति का वितरण, वस्तुओं का प्रयोग, प्राकृतिक व मानवीय साधनों का प्रयोग, विनिमय (आयात–निर्यात) तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि को सम्मिलित किया जाता है। आर्थिक नियोजन के उद्देश्य भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। उद्देश्यों के अनुरूप ही आर्थिक नीतियां निर्मित की जाती हैं। प्रजातांत्रिक देशों में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य अधिकतम जन कल्याण होता है। अतः अधिकतम जन कल्याण के लिये ही आर्थिक नीतियां बनायी जाती हैं।

आर्थिक नीतियॉं सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों से भी प्रभावित होती हैं। अतः आर्थिक नीति, सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, जनता का जीवन स्तर उन्नत करना, राजनीतिक स्थिरता बनाये रखना व शांति व्यवस्था बनाये रखने के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए । जैसे यदि सामाजिक समानता व न्याय चाहिये तो आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को समाप्त करने वाली होनी चाहिए । अतः आर्थिक नीति दूसरे में विरोधी लक्ष्यों के मध्य समन्वय आवश्यक है। कभी यह भी संभव हो सकता है कि एक आर्थिक नीति दूसरे लक्ष्य की विरोधी हो जैसे हम तीव्र विकास की नीति अपनाते हैं। किन्तु साथ ही कीमतों में स्थिरता भी चाहते हैं जबकि तीव्र विकास के साथ मूल्य वृद्धि आवश्यक है। अतः आर्थिक नीति में विरोधी लक्ष्यों में समन्वय आवश्यक है।

आर्थिक नीति के उद्देश्य (Objectives of economic policy) -

सरकार की आर्थिक नीति के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं। कुछ उद्देश्य एक दूसरे के सहायक व कुछ परस्पर विरोधी हो सकते हैं । उद्देश्य निर्धारण के समय तात्कालिक आवश्यकताओं एवं दीर्घकालीन दृष्टिकोण को ध्यान में रखा जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था वादी आर्थिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते है –

1. रोजगार की प्राप्ति–विकासशील देशों में आर्थिक नीति का प्रमुख उद्देश्य रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना होता है, जिससे जन शक्ति का आर्थिक विकास में पूर्ण उपयोग हो सके । भारत में बेरोजगारी निरन्तर बढ़ रही है, इसका अर्थ है कि रोजगार की दिशा में कोई ठोस योजना नहीं बनी और न ही ऐसी नीतियॉं लागू हुई हैं। आर्थिक नीति ऐसी होनी चाहिये कि यह बेरोजगारी दूर करने व रोजगार के अवसर बढ़ाने में सहायक हो ।

2. तीव्र आर्थिक विकास–आर्थिक नीतियों को तीव्र आर्थिक विकास में सहायक होना चाहिये और साथ में इनमें संतुलित आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिये । इससे आर्थिक विकास के साथ समानता को बढ़ावा मिलता है। आर्थिक नीतियों में उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम उपयोग करके अर्थ तंत्र को उचित दिशा दी जाती है। सीमित साधन है, अतः प्राथमिकताओं का निर्धारण कर अधिक महत्व की परियोजनाओं को पहले पूरा किया जाता है। विकास की उच्च दर द्वारा जनता के जीवन स्तर को उन्नत कर सकते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. आर्थिक स्थायित्व—आर्थिक नीति में व्यापार चक्रों के कारण तेजी मंदी अथवा मूल्यों में उतार—चढ़ाव को नियंत्रित करना होता है। आर्थिक नीतियों द्वारा उत्पादन व उपभोग, वितरण व मॉग में ऐसा समन्वय किया जाता है।

4. अधिकतम सामाजिक कल्याण—आर्थिक नीतियों में आय व सम्पत्ति का गरीब व्यक्तियों के पक्ष में वितरण होना चाहिये। इसके लिये प्रगतिशील कर नीति अपनायी जाती है तथा गरीब वर्ग को आय उपलब्ध करवायी जाती है। धनवान व्यक्ति से धन लेकर गरीबों में वितरित करने से ही अधिकतम सामाजिक कल्याण हो सकता है।

5. आर्थिक समानता एवं न्याय—आर्थिक नीति का उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ विकास के लाभों का न्यायोचित वितरण करना भी है, जिससे समाज में सम्पत्ति, आय व अवसरों की समानता बढ़े । समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता, अन्याय व शोषण को दूर किया जा सके । आर्थिक विकास के साथ समाज के कमजोर वर्ग को सामाजिक व राजनीतिक न्याय मिलना भी आवश्यक है। इस हेतु आर्थिक नीति में रोजगार के समान अवसर, समान काम के लिये समान वेतन व न्यूनतम मजदूरी का प्रावधान होना जरूरी है।

6. आर्थिक स्वतंत्रता—प्रत्येक व्यक्ति को जनहित के किसी भी प्रकार के व्यवसाय को अपनाने की स्वतंत्रता को आर्थिक स्वतंत्रता कहते हैं। सरकार द्वारा प्रत्येक नागरिक को व्यवसाय करने की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिये ।

7. उत्पादन में वृद्धि—आर्थिक नीति का उद्देश्य राष्ट्र में उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहित करना है। कृषि मूल्य नीति में किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिलने का प्रावधान होना चाहिये । जिससे वे अधिक उत्पादन के लिये प्रोत्साहित हो। औद्योगिक नीति ऐसी हो कि देश का विकास तीव्र हो, उत्पादन बढ़े और जनता को उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध हो। वाणिज्य नीति ऐसी हो कि निर्यात बढ़े और आयात सीमित होने में सहायता मिले।

8. नियोजित विकास को प्रोत्साहन—आर्थिक विकास नियोजित होने से संतुलित विकास होना व निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकेगा ।

9. निर्यात वृद्धि—इसके द्वारा भुगतान असाम्यता को दूर किया जा सकता है।

10. सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के मध्य समन्वय—भारत की आर्थिक नीति में दोनों क्षेत्रों को उचित महत्व दिया गया है। निजी क्षेत्र के लिये उदारीकरण एवं निजीकरण की नीति पर बल दिया जा रहा है। इससे आर्थिक विकास में दोनों क्षेत्रों का सहयोग मिलेगा। इसके लिये भारत सरकार के औद्योगिक नीति, राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति में व्यापक परिवर्तन किये हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक नीति के उपकरण

(Instruments of economic policy)

वास्तव में अविकसित एवं विकासशील देशों की समस्याएं विकसित देशों की समस्याओं से अधिक जटिल एवं ज्वलन्त होती है। समस्याओं के हल हेतु उनके अनुरूप ही प्रत्येक देश आर्थिक नीति अपनाता है। आर्थिक नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिये कुछ उपकरणों की आवश्यकता होती है। उपकरणों का चयन व प्रयोग उचित होना चाहिये, जिससे आर्थिक नीति सफल हो सके।

आर्थिक नीति के निम्नलिखित उपकरणों पर विचार करते हैं :–

(1) मौद्रिक उपकरण–मौद्रिक उपकरण वे होते है जो देश की अर्थव्यवस्था में मुद्रा व साख के मात्रा को प्रभावित करते है। इनसे आर्थिक उच्चावयों को अपेक्षित दिशा मिलती है। इन उपकरणों में मुद्रा के नियमन व नियंत्रण में प्रयुक्त की जाने वाली सभी प्रणालियां सम्मिलित है। इनकाा प्रयोग देश के केन्द्रीय बैंक की सहायता से किया जाता है। ये उपकरण विनिमय दर से स्थिरता बनाये रखना, मृदा एवं साख की मात्रा को नियंत्रित करना मूल्य स्तर में स्थायित्व पूर्ण रोजगार, बैंकिग विकास, स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास, उचित ब्याज दर, पूंजी निर्माण या विनियोग को प्रोत्साहन आदि के लिए प्रयुक्त किये जाते है। प्रमुख मौद्रिक उपकरण निम्नलिखित है –

1. साख नियंत्रण–साख नियंत्रण से आशय साख का सृजन करने वाली मौद्रिक एवं वित्तीय संस्थाओं की साख सृजन क्षमता को इस प्रकार नियंत्रित करने से है। जिससे साख की कुल पूर्ति किया जा सके । साख नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य आर्थिक उच्चावचनों को नियंत्रित कर आर्थिक नियोजन को सफल बनाना है। केन्द्रीय बैंक साख नियंत्रण द्वारा मौद्रिक व्यवस्था का संचालन करती है।साख नियंत्रण की निम्न दो रीतियां हैं –

(अ) परिमाणात्मक रीतियॉं–इन रीतियों से साख की मात्रा व लागत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। जैसे बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएं नकद कोषानुपात में परिर्वतन, तरल कोषानुपात में परिवर्तन आदि।

(ब) गुणात्मक रीतियॉं–ये साख के प्रयोग व व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। इनमें चयनित साख नियंत्रण, साख का समभाजन, प्रचार, नैतिक अनुनय, प्रत्यक्ष कार्यवाही आदि शामिल हैं।

2. विनिमय दर–वह दर जिस पर एक देश की करेंसी, दूसरे देश की करेंसी में बदली जाती है, विनिमय दर कहलाती है। देश की मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखना है। विनिमय दर में स्थायित्व का अर्थ है कि देश की मुद्रा का बाह्य मूल्य स्थिर बना रहे विनिमय दर में स्थिरता से उद्योग, व्यापार, रोजगार का विकास होता है व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिलता है।

3. ब्याज दर–ब्याज दर देश में बचत, विनियोग एवं पूंजी निर्माण को प्रभावित करती है। सरकार ब्याज दर के माध्यम से बचत व विनियोग की दिशा निर्धारित करती है। सरकार द्वारा सस्ती ब्याज दर पर पर्याप्त ऋण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उपलब्ध कराने पर विनियोग बढ़ जाता है। जिन जमाओं पर ऊँची ब्याज दर निर्धारित करती है। इनके माध्यम से सरकार अपनी योजनाओं को लागू करती है।

4. बैंकिंग विकास—बैंक ऋण देने के साथ बचत को प्रोत्साहित करती है और तकनीकी सलाह भी देती है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद सरकार ही रिजर्व बैंक के माध्यम से इनकी ऋण, साख एवं विस्तार नीति निर्धारित करती है। इनके माध्यम से सरकार अपनी योजनाओं को लागू करती है।

5. बचतों को प्रोत्साहन—मौद्रिक उपकरणों के माध्यम से सरकार बचतों को प्रोत्साहित करती है। बैंकिग विकास के माध्यम से समाज की अतिरिक्त आय को बचत एवं विनियोग के लिये प्रोत्साहित कर सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिग सुविधाओं का विकास कर छोटी–छोटी बचतों को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है। इससे सरकार को विकास के लिये पर्याप्त वित्त मिल जाता है।

(2) राजकोषीय उपकरण—सरकार की विकास के लिये वित्त जुटाने एवं उसे उचित ढंग से व्यय करने की क्रियाएँ राजकोषीय नीति का अंग है। सरकार की राजकोषीय नीति के निम्नलिखित उपकरण है —

1. सार्वजनिक आय—सरकार को वित्त की आवश्यकता पड़ती है। यह वित्त करारोपण, सार्वजनिक उपक्रमों की आय आदि से प्राप्त किया जाता है। कर सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा वसूल किया जाने वाला अनिवार्य भुगतान है। कर सार्वजनिक आय का मुख्य साधन है।

2. सार्वजनिक ऋण—सरकार अपने विकास व्ययों को पूर्ति के लिये सार्वजनिक ऋण लेती है। वर्तमान में सरकार केवल असामान्य परिस्थितियों के लिये ही नहीं बल्कि नियमित आय–व्यय के घाटे को पूरा करने के लिये भी ऋण लेती है।

3. हीनार्थ प्रबंधन—जब सरकार के व्यय उसकी आय से अधिक हो और वह उस घाटे को अन्य साधनों से पूरा न कर सके तो वह अतिरिक्त नोट छापकर घाटे की पूर्ति करती है, इसे हीनार्थ प्रबन्धन कहते हैं। विकासशील देशों में हीनार्थ प्रबन्धन आवश्यक हो गया है।

(3) वाणिज्यिक उपकरण—आर्थिक नीति में व्यापारिक उपकरणों का महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट होता है —

1. मुक्त एवं प्रतिबन्धित व्यापार—वर्ष 1995 से पूर्व अधिकांश देशों ने प्रतिबंधित व्यापार नीति अपना रखी थी । इस नीति में व्यापार पर अनेक प्रतिबंध लगाये जाते हैं। 1 जनवरी 1995 से विश्व व्यापार संगठन ने कार्य प्रारंभ किया और स्वतंत्र व्यापार नीति को बढ़ावा दिया । आज अधिकांश देशों ने इसकी सदस्यता ग्रहण कर ली है।

2. राष्ट्रानुसार प्राथमिकताएँ—आर्थिक नीति की सफलता के लिये व्यापारिक नियंत्रण लगाये जाते है। कुछ देशों से व्यापार पर कठोर प्रतिबंध लगाये जाते हैं। सरकार विभिन्न देशों से भिन्न निम्न शर्तें निर्धारित करती हैं। यह भी तय किया जाता है कि किन वस्तुओं को आयात–निर्यात में प्राथमिकता दी जाये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. वस्तु के अनुसार प्राथमिकता–व्यापार नीति के द्वारा वस्तु की माँग एवं पूर्ति में समायोजन किया जाता है। यह निश्चित करना होता है कि किन वस्तुओं को आयात–निर्यात में प्राथमिकता दी जाये।

नियंत्रण (Controls)

आर्थिक क्रियाओं को स्वेच्छा से न चलने देकर निश्चित दिशा में संचालित करना, आर्थिक नियंत्रण कहलाता है। आर्थिक नीति की सफलता हेतु नियंत्रण लगाये जाते हैं –

1. मूल्य नियंत्रण–आर्थिक कार्यक्रमों की सफलता के लिये मूल्य वृद्धि पर नियंत्रण लगाना जरूरी है। इससे उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा होती है।

2. विनियोग पर नियंत्रण–सरकार विनियोग नियंत्रण द्वारा आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण व असंतुलित विकास को रोकती है एवं विशिष्ट उद्योगों की विशिष्ट स्थानों पर स्थापना व विकास करती है, इससे विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा मिलता है और औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों का विकास होता है।

3. लाइसेन्स व्यवस्था–इसके द्वारा वस्तुओं के उत्पादन, आयात–निर्यात, साधनों की लागत तथा पद्धति पर नियंत्रण रखा जाता है। निजी एवं सार्वजनिक उपक्रमों के उत्पादन क्षेत्र निर्धारित किये जाते हैं तथा उनमें अनावश्यक प्रतिस्पर्धा को रोका जाता है। उत्पादन की मात्रा को नियंत्रित कर वस्तु की माँग एवं पूर्ति में संतुलन बनाया जाता है।

4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली–इसके अंतर्गत आवश्यक एवं सीमित पूर्ति वाली उपभोग की वस्तुओं की सरकारी वितरण व्यवस्था आती है। उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करवायी जाती हैं।

आर्थिक सहायता (Economic subsidies) -

इसके अंतर्गत सरकार आर्थिक सहायता देकर ऐसी वस्तुओं के उत्पादकों को कम लागत पर उत्पादित करने में सहायता देती है जिन वस्तुओं का उत्पादन सामाजिक हित में होता है। आर्थिक सहायता के अनेक प्रकार हैं–

1. कृषि क्षेत्र को आर्थिक सहायता–यह सब्सिडी सिंचाई, बीज, उर्वरक, कीटनाशक, कृषि, उपकरण, डीजल एवं किसानों की बिजली आपूर्ति इत्यादि पर दी जाती है।

2. निर्यात आर्थिक सहायता–यह सहायता समूह मुफ्त अनुदानित परिवहन सुविधा अथवा करों में रियायत के रूप में दी जाती है।

3. उपभोक्ताओं को आर्थिक सहायता–इसके अंतर्गत उपभोक्ताओं को खाद्य पदार्थों पर आर्थिक सहायता, कपड़े, ईंधन गैस, केरोसीन व रसोई गैस, घरेलू रोशनी आदि पर दी जाने वाली आर्थिक सहायता आती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक नीति के घटक

(Components of economic policy)

सामान्य रूप से आर्थिक नीति के निम्नांकित घटक होते हैं–

1. **कृषि नीति**–कृषि नीति में कृषि की प्रमुख प्रणाली, भू–स्वामित्व, तकनीक, विनियोग, कृषि उत्पादन की मात्रा, कृषि वस्तुओं के मूल्य, सरकार की न्यूनतम मूल्य नीति, भण्डारण व्यवस्था, विपणन व्यवस्था, बीज, खाद, कीटनाशक दवाईयों की उपलब्धि, कृषि यंत्रीकरण आदि अनेक बातें सम्मिलित हैं। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में सरकार कृषि विकास के लिए आवश्यक आदानों की व्यवस्था करती है किन्तु किसान फसल के चुनाव, उत्पादन, विक्रय, वित्त प्रबंध के लिए स्वतंत्र है। समाजवादी आर्थिक प्रणाली में समस्त निर्णय सरकार द्वारा लिये जाते हैं। भारत में सरकार केवल कृषि उपजों का मूल्य निर्धारण, कृषि उत्पादों की बिक्री तथा आवश्यक कृषि आदानों की उचित मूल्य पर पूर्ति आदि के संबंध में नीति निर्धारित करती है।

2. **औद्योगिक नीति**–इसके अंतर्गत सरकार औद्योगिक विकास को नियमित एवं नियंत्रित करने के उपाय घोषित करते हैं। इसमें देश के औद्योगिक विकास को प्रभावित करने वाले सभी सरकारी सिद्धांत, नियम, वित्त प्रबंध, विकास आदि से संबंधित व्यवस्थाएँ निश्चित करती हैं।

3. **व्यापारिक नीति**–इस नीति में मुख्य रूप से आयात–निर्यात नीतियाँ, विदेशी व्यापार की दिशा एवं स्वभाव, स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण, विदेशी ऋण व सहायता, व्यापार समझौते, भुगतान संतुलन आदि बातें शामिल हैं। विकासशील देशों में आयात सीमित कर निर्यात बढ़ाने का प्रयास रहता है। देश को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास रहता है।

4. **राजकोषीय नीति**–यह नीति ऋण एवं व्यय के वितरण, कर, सार्वजनिक आय, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए वित्तीय साधन उपलब्ध कराने तथा अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित करने में सहायक होती है। इसका राष्ट्रीय बचत, विनियोग, पूँजी निर्माण, वित्त व्यवस्था आदि से प्रत्यक्ष संबंध है।

5. **मौद्रिक नीति**–किसी देश की सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में किसी विशेष आर्थिक उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए (जैसे मूल्य स्थिरता, विनिमय दर में स्थिरता, पूर्ण रोजगार, आर्थिक विकास) संचालन में मुद्रा एवं साख की मात्रा के प्रसार तथा संकुचन के प्रबंध को मौद्रिक नीति कहा जाता है। मौद्रिक नीति बेरोजगारी, आर्थिक अनिश्चितता, मूल्य वृद्धि, निर्धनता, बाजार की अपूर्णता, विनियोग एवं बचत की कमी, आर्थिक उच्चवचन, मुद्रा –स्फीति के कारण मूल्यों में वृद्धि व भुगतान असाम्यता जैसी समस्याओं को हल करने में सहयोग प्रदान करती है।

6. **मूल्य नीति**–विकासशील देशों में विकास की प्रारंभिक अवस्था में आधारभूत एवं बड़े उद्योगों एवं सामाजिक सेवाओं पर भारी व्यय किया जाता है। इन उद्योगों की निर्माण अवधि लम्बी होती है, जिससे इन पर किया गया व्यय तो आय के रूप में समाज तक पहुँच जाता है, किन्तु इनमें उत्पादन प्रारंभ नहीं होती है। आय बढ़ने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

से वस्तुओं की मॉग बढ़ जाती है लेकिन पूर्ति देरी से बढ़ती है जिससे मूल्य वृद्धि हो जाती है। आदमी का जीना कठिन हो जाता है। अतः मूल्य नीति घोषित की जाती है। इसके अंतर्गत वस्तुओं के अधिकतम मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। कुछ वस्तुऍ सरकार द्वारा उचित मूल्य पर उपलब्ध करवायी जाती हैं।

7. मजदूर नीति–श्रमिक से अन्य साधनों के समान व्यवहार नहीं किया जा सकता है क्योंकि श्रमिक में भावनाऍ होती है वह आर्थिक व्यवस्था के साथ सामाजिक व्यवस्था को भी प्रभावित करता है। अतः मजदूर नीति बनाने में आर्थिक दृष्टिकोण के साथ सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक पक्षों का भी ध्यान रखना होता है। मजदूर नीति समाज में मजदूरों की प्रतिष्ठा, उनके जीवन स्तर, उनकी समाज के प्रति वचनबद्धता, उत्पादकता, मनोबल, उत्प्रेरणा, सामाजिक व्यवस्था, मूल्य स्तर, आर्थिक समानता, न्याय आदि को प्रभावित करती है। यदि नीति से श्रमिक संतोष अनुभव करते हैं तो राष्ट्रीय उत्पादन, आय एवं श्रम उत्पादकता में वृद्धि होगी। यदि श्रमिक असंतोष अनुभव करता है तो आर्थिक व सामाजिक प्रभाव भयानक होंगे।

आर्थिक नीति की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसके विभिन्न संघटकों का निर्माण करते समय समग्र उद्देश्य को सामने रखा जाये ताकि विभिन्न घटकों में प्रतिस्पर्धा एवं टकराव न होकर समन्वय रह सके। नीतियों के निर्माण के साथ इनका ईमानदारी एवं निष्ठा से पालन करना और समय–समय पर मूल्यांकन करना भी आवश्यक है ताकि बाधक तत्वों का पता करके उन्हें हटाया जा सके।

पर्यावरण सूचक

(Environment Indicators)

पारिस्थितिकी (Ecology) पर प्रदूषण दबाव के प्रभाव को ज्ञात करने में जैविक विविधता (Biological diversity) डोमिनेन्स विश्लेषण और उस स्थान पर आने वाले पौधे बहुत उपयोगी हैं।

प्रत्येक जीवधारी व पादप जिन शर्तों के अंदर बड़े होते हैं, वे उनके उत्पाद हैं। अतः जीवधारी व पादप, पर्यावरण के माप हैं। प्रत्येक जाति को क्रिया करने के लिए पर्यावरणीय शर्तों की आवश्यकता होती है किसी भी स्थान पर उगने वाले पौधे व पाये जाने वाले जीवधारी एवं पारिस्थितिक कारकों के बीच पूर्ण संबंध होता है। विभिन्न जातियों की पारिस्थितिकी संबंधी आवश्यकताऍ भिन्न होती हैं तथा प्रत्येक जाति उसी स्थान पर स्थाई हो सकेगी और पूर्ण विकसित होगी। इसलिए वनस्पति व जन्तु का प्रारूप और उसकी जातियां किसी आवास के सभी संघठित प्रभाव के सूचक होते हैं।

परिवर्तन को मोनिटर करने हेतु पिछले कुछ वर्षों से सूचकों के उपयोग के प्रति रूचि और कार्य बढ़ा है। नीति के लिए उपयोगी सूचकों के विकास की जरूरत है। अच्छे सूचक प्रायोगिक नीति के लिए पर्यावरणीय शर्तों के मापक हैं। सूचकों द्वारा यह अंदाज हो जाता है कि किस स्थान पर किस प्रकार का विकास संभव है। इस प्रकार देश के विकास में पर्यावरणीय सूचक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

हम यहॉ पर विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय सूचकों का वर्णन करने जा रहे हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जैविक सूचक

(Bio Indicators)

पौधे वायु प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। वायु प्रदूषण के कारण सूर्य के प्रकाश की मात्रा में कमी आती है, जिससे पौधों की प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित पदार्थ पत्तियों पर एकत्रित होकर पर्ण रन्ध्रों को अवरूद्ध कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप वाष्पोत्सर्जन की क्रिया मन्द हो जाती है।

वायु प्रदूषण वाले क्षेत्रों के वर्षा जल में विभिन्न गैंसे तथा विषैले पदार्थ घुलकर धरती पर आ जाते हैं तथा जड़ों द्वारा ग्रहण होकर पौधों के शरीर में पहुॅच जाते हैं, जिससे बहुत से हरे–भरे पौधे नष्ट हो जाते हैं।

पौधे और जीव प्रदूषण के जैविक सूचक कहलाते हैं। पौधे सूचक जातियों की धारणा पशुसूचक जातियों से बहुत पुरानी है।

यहाँ पर विभिन्न जैविक सूचकों पर प्रदूषक पदार्थ के प्रभाव का वर्णन कर रहे हैं –

1. तम्बाकू, टमाटर, मटर, चीड़ (जैविक सूचक) पर प्रभाव –इन पौधे की पत्तियों के खंभ उतक (Pallisade tissue) को हानि होती है। ये ऊतक जल उन्मुक्त करने लगते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं।

यह इस बात का सूचक है कि वायु में ओजोन की मात्रा मानक मान 0.02 पीपीएन से अधिक है।

2. साल्विया, डहलिया तथा चीड़ पर प्रभाव–पत्तियों की उपरी सतह पर लाल व भूरी धारियॉ या सफेद चकते, अधिक मात्रा में, प्रदूषण होने की स्थिति में पत्तियों का किनारे से मुड़ जाना या फट जाना, चीड़ की पत्तियों की नोक के ऊपरी भाग का जल जाना। यह इसका सूचक है कि वायु में ओजोन की मात्रा मानक मान से अधिक है।

3. बरगद, जीनिया तथा चीड़ पर प्रभाव–पत्तियों की शिराओं और किनारे के मध्य हल्के चकते तथा उसके पास के उतकों का मृत हो जाना।

यह प्रभाव सूचना देता है कि वायु में सल्फर डाई ऑक्साइड की मात्रा स्टेण्डर्ड मान से अधिक है।

4. पत्तियों पर प्रभाव–नव अंकुरित पत्तियॉ व ऊतक का क्षय होना, इनका काले पड़ जाना। इसका द्योतक है कि SO_2 की मात्रा वायु में अधिक है।

5. संगमरमर भवन (जैसे ताजमहल) पर प्रभाव–धवलता नष्ट होना यह दर्शाता है कि वायु SO_2 की अधिक मात्रा द्वारा प्रदूषित है।

6. ग्लेड्यूलस और चीड़ पर प्रभाव–पत्तियों की उपरी नोक व किनारे के ऊतकों का मृत हो जाना। इसका संकेत करता है कि वायु में हाइड्रोजन फ्लोराइड की मात्रा अधिक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

7. ऑक का प्रभाव–बाह्य दल सूख जाते हैं अर्थात वायु में एथिलीन अधिक मात्रा में उपस्थित है।

8. पालक, तम्बाकू, अल्फा पर प्रभाव–पौधों का रंग उड़ जाता है। यह इस ओर संकेत करता है कि वायुमंडल में ऑक्सीकारक धूम अधिक है।

9. आम पर प्रभाव–औद्योगिक क्षेत्रों के निकट क्षेत्रों में पत्तियों का ऊतक क्षय, पत्तियों का समय पूर्व झड़ना, कलियों का मुर्झाना तथा फल के छोटे आकार का होना। इन प्रभावों का संकेत वायु में SO_2 की अधिकता है।

10. सदाबहार पौधों पर प्रभाव–सल्फर डाईऑक्साइड युक्त ओस तथा कोहरे से सर्वाधिक नुकसान होता है। वर्षा ऋतु में वातावरण में उपस्थिति SO_2 जल के साथ निक्षालित होकर सल्फ्यूरस अम्ल के रूप में जमीन पर आ जाती हैं यहां सल्फ्यूरस अम्ल वायु द्वारा ऑक्सीकृत होकर सल्फ्यूरिक अम्ल में बदल जाता है, जिससे मृदा की अम्लीयता में (4pH) तक की वृद्धि हो जाती है। इससे पौधों में भोज्य पदार्थों से कैल्शियम इत्यादि आयनों की हानि हो जाती है।

11. लाइकेन तथा मास पर प्रभाव–इन पौधों की मन्द गति से वृद्धि करने तथा अधिक समय तक जीवित रहने और पर्यावरण के प्रदूषण तत्वों को अपने शरीर में संचित करने की योग्यता के कारण इन पौधों का उपयोग सल्फर डाइऑक्साइड जैसे विषैली गैसों के वायु में जैव आयापन हेतु किया जाता है।

यथार्थ में लाइकेन्स विशेषकर विषैली गैसों, फ्लोराइड, भारी धातुओं, रेडियो न्यूक्लाइड, कृषि रसायनों तथा जैव नाशकों के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील होते हैं। इंग्लैण्ड के कुछ स्थान जो पूर्व में लाइकेन्स की विभिन्न जातियों से परिपूर्ण थे, बढ़ते हुए औद्योगीकरण के साथ लाइकेन्स मरूस्थलों में परिवर्तित हो गये हैं, क्योंकि लाइकेन्स की अधिकांश जातियों का बड़े शहरों में औद्योगिक तथा अन्य कारणों से बड़े प्रदूषण के कारण उन्मूलन हो गया है। उदाहरण के लिए 'इपिंग वन' में एक शतक पूर्व लाइकेन्स की लगभग 120 जातियां पायी जाती है। वहॉं अब केवल 30 जातियॉं ही पायी जाती हैं।

12. कैलोट्रोपिस, आर्जेमोनमेक्सिकाना, अगेव व केक्टाई आदि पौधे जलवायु व मृदा की दृष्टि से अर्ध मरूस्थलीय पारिस्थितियों का संकेत देते हैं।

13. धातु परिद्रावकों **(Smelters)** से निकले धुएं में कार्बन के अलावा तॉंबा, जस्ता आदि धातुएँ भी पर्याप्त मात्रा में होती हैं। धातु परिद्रावक उद्योगों की अधिकता वाले कॉपर हिल्स(जोर्जिया) तथा स्वान्सी (साउथ वेल्स) स्थानों की वनस्पति विहीन पहाड़ियॉं इस बात का द्योतक है कि ये पदार्थ वनस्पतियों के लिए निश्चित रूप से हानिकारक होते हैं ।

14. कुछ कीट विशेषत– मधुमक्खी एवं शलभ तथा अनेक कीटभक्षी, स्तनपोषी कुछ विशेष प्रकार के औद्योगिक वायु प्रदूषण के कारण बड़ी संख्या में मरते हैं। कीटों की कुछ जातियों में पर्यावरण प्रदूषण के प्रभावों के प्रति अनुकूलन हेतु आधारभूत परिवर्तन भी उत्पन्न हो गये हैं। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है–ब्रिटेन तथा महाद्वीपीय यूरोप के कुछ भागों में पाये जाने वाले पीपर्ड शलभ (Peeperd-moth) की औद्योगिक अति कृष्णता

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(Industrial melanism) है। इस कीट की दो जातियॉं होती हैं—एक हल्के रंग की तथा दूसरी गहरे रंग की। गहरे रंग की जाति एक शतक पूर्व बहुत ही दुर्लभ थी (ग्रामीण क्षेत्रों में जहॉं उद्योग नहीं वहॉं अभी भी दुर्लभ है), किन्तु अब औद्योगिक क्षेत्रों में बहुतायत से मिलती हैं । औद्योगिक क्षेत्रों की वायु में उपस्थिति धुएॅं तथा कोयले के कणों के कारण वृक्षों के तने काले रहते हैं। इन काले तनों पर रहने वाले काले रंग के पीपर्ड शलभ पक्षियों को सरलता से नहीं दिखते, अतः सुरक्षित रहते हैं। इसके विपरीत हल्के रंग के शलभ सुगमतापूर्वक दिखाई देते हैं और पक्षियों का भोजन बन जाते हैं।

15. पशुओं का प्रभाव—हड्डियों तथा दॉंतों में फ्लुओरिसस होना, वजन घटना, लंगड़ापन आना। इससे संकेत मिलता है कि घास इत्यादि चारे पर विभिन्न फ्लोराइड यौगिकों के अवपात के कारण ये पदार्थ पशुओं के शरीर में चले जाते हैं।

16. सूचक प्रजातियॉं (Indicator species) -

1. ग्रेसेवूड (Grease wood), खारी मृदा (Saline soil) का सूचक है।
2. मॉसेस (Mosses) अक्सर अम्लीय मृदा (Acidic soil)का सूचक है।
3. टुबिफेक्स कृमि (Tubifex worms), मृदा में कम ऑक्सीजन (Oxygenpoor) का सूचक है।
4. रूका हुआ जल (Stagnant water)इस बात का सूचक है कि यह पानी पीने योग्य नहीं है।
5. प्रोसोपिस (Prosopis), पानी का स्तर गहरा है का सूचक है।

17. कुछ प्रजातियॉं पर्यावरण शर्तों के लघु परिवर्तनों के लिए बहुत संवेदनशील (Sensitive) होती हैं, जबकि कुछ अन्य अधिक सहनशील होती हैं। कई पर्यावरणीय ग्रेडियन्ट और कई प्रदूषणों के लिए इन संवेदनशील और सहनशील प्रजातियों का पता लगाना संभव है। कुछ प्रजातियों की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर किसी क्षेत्र विशेष में प्रचलित प्रदूषण को जाना जा सकता है।

तालिका वायुमण्डल में प्रदूषण के जैविक सूचक —

संवेदनशील पौधे	सहनशील पौधे
अल्फा अल्फा	कदम्ब
आम	तुलसी
लिचर—मॉसेस	बरगद
सेव	बेर
गेहूं	अमरूद
रूई	संतरा
जौं	प्याज

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

18. व्यापारिक मत्स्य ग्रहण (Commercial fishing) - आधुनिक औद्योगिक धीवरकर्म में ऐसे प्रयोग किये गये जिनमें मछली की ध्वनि सुनी जाती है, लेकिन यह विधि अप्रायोगिक थी। समुद्री मछुआरों ने यह ज्ञान भी प्राप्त किया कि पर्यावरणीय शर्तों के प्रेक्षण से कहॉ मछली का पाना संभावित है। पानी का रंग और धारा की उपस्थिति या विभिन्न जल शरीरों (Water bodies) के बीच सीमा रेखा, कुछ सामान्य फिश इंडिकेटर हैं। पानी का ताप मछली को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण भौतिक गुण है। मछुआरों ने ओसीनोग्राफर्स (Oceanographors) से सर्वप्रथम थर्मामीटर के प्रयोग से मछली प्राप्त करने के साथ भविष्य में इच्छित प्रजातियों की उपब्धता को सीखा।

19. मेगालोपटेरा लार्वा (Megaloptera Larvae) -की प्रदूषित पानी की उच्च सहनशीलता के कारण यह महत्वपूर्ण पर्यावरणीय सूचक है।

20. आपेक्षिक आर्द्रता (Relative humidity) –आपेक्षिक आर्द्रता हवा में जल वाष्प की मात्रा व संतृप्त हवा में जल वाष्प की मात्रा की अनुपात है। आर्द्रता पर्यावरण की एक संयुक्त केन्द्र (Index) है।

कमरे के ताप पर सरन्ध्र पदार्थ के रंध्रों में पानी की मात्रा को आपेक्षिक आर्द्रता द्वारा ठीक प्रकार से बताया जाता है। ताप के अधिक प्रभाव के बिना लवणीय विलयनों (Salt solutions) द्वारा पानी का अवशोषण, आपेक्षिक आर्द्रता से संबंधित है।

इस प्रकार आपेक्षिक आर्द्रता को विस्तृत रूप से पर्यावरणीय सूचक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

21. सूचक जीवाश्म (Fossils Indicators) -

(1) Silurian और Dvonian समुद्री चट्टानों में सोलिटरी मूंगा (Solitary corals) की विलुप्त प्रजाति जीवाश्म के रूप में प्राप्त हुई। सीसटिफाइलम (Cystiphyllum) एक हॉर्न मूंगा (Horn coral) था। अन्य मूंगों की तरह यह भी विशिष्टताऍ रखता था और इसलिए इसका जीवाश्म महत्वपूर्ण पर्यावरणीय सूचक है।

(2) पेलीओजीओग्राफी (Paleogeography) में जमीनी पौधों के जीवाश्म (Fossil land plants) को बहुत पहले से जलवायु सूचकों के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। जब आंतरिक जालीदार संरचना संरक्षित है तो यह ज्ञात करना संभव है कि पौधा सूखी या गीली जलवायु में था और ताप और वर्षा में प्रेक्षण योग्य अधिक (Marked) मौसम परिवर्तन था।

अभी–अभी नई बनी भूगर्भीय चट्टानें जो जीवाश्म रखती हैं और उनके वंशज अभी जीवित पौधों के रूप में है तो पिछली जलवायु परिभाषित की जा सकती है।

22. सूचक जीवाणु (Bacteria Indicators)–अनेक जीवाणु मृदा की गहरी पर्तों में पाये जाते हैं, जो विशिष्ट धातुओं के अयस्क (Ore) के साथ जुड़े रहते हैं। अतः ये जीवाणु इन धातुओं या खनिज पदार्थों के सूचकों के रूप में कार्य करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानकों (स्टैण्डर्स) की सेटिंग

(Setting of Standards)

जनसंख्या वृद्धि एवं विकास के कारण आज हमारे सभी ओर अर्थात पानी, वायु भूमि में विषाक्तता की वृद्धि हुई है। पेड़ पौधों की अंधाधुंध कटाई हुई है एवं वन्य जीवों की हिंसा हुई जिससे पारिस्थितिकी असंतुलित हो गई है।

पानी, वायु, भूमि में विषाक्त पदार्थ होती है। पानी व वायु में उपस्थित विषाक्त पदार्थों को मानव, वन्य जीव एवं वनस्पतियॉ ग्रहण करती हैं। इन विषाक्त पदार्थों को निश्चित मात्रा से अधिक ग्रहण करने पर ये रोगी हो जाते हैं। इन विषाक्त पदार्थों की यह निश्चित मात्रा ही उनके मानक (Standard) कहलाते हैं।

वाहितमल जल से भूमि को सिंचित करने से पूर्व उसे उपचारित करना होता है अन्यथा भूमि रोगी हो जाती है। आतिशबाजी के विस्फोट बिन्दु से कुछ दूरी बाद शोर सीमा निश्चित की गई है। विभिन्न प्रकार के वाहनों के निर्माण के समय शोर संबंधी मानकों को निर्धारित किया गया है।

जल, वायु में उपस्थित विषाक्त पदार्थों एवं गैसों के, वाहितमल जल में उपस्थित विषाक्त पदार्थों के शोर एवं अन्य मानकों के बारे में हम विस्तार से चर्चा करेंगे –

1. फ्लोराइड मानक –औद्योगिक बहिःस्राव, रासायनिक सुगंध, दवाईयॉं, कीटनाशकों में 1 से 3 प्रतिशत फ्लोराइड होता है।

फ्लोराइड की विभिन्न मात्रा से मनुष्य पर प्रभाव–

< 0.5 mg/1 मनुष्यों के लिए निरापद मात्रा है।

0.5–1.5 mg/1 दॉत के इनेमेल (Enamel) बनने में बढ़ावा।

>1.5 mg/1 फ्लोरोसिस रोग (Destruction of enamel) in Bones जिसमें हड्डियों में बांकापन, पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र व कंकाल अव्यवस्थित हो जाते हैं।

2. शोर मानक (Noise standard) - मनुष्य बिना किसी असुविधा के जो शोर सह सकता है उसकी अधिकतम सीमा 80 डेसीबल है। इससे अधिक वाले शोर में लम्बे समय तक रहने से सुनने की शक्ति स्थायी रूप से खत्म हो जाती है। दस वर्षों में सुनने की शक्ति लगभग 15 डेसीबल रह जाती है।

(अ) दिन (प्रातः 6.00 बजे से रात्रि 10.00 बजे तक) व रात्रि (10.00 बजे से प्रातः6.00 बजे तक) के समय में विभिन्न क्षेत्रों में शोर के अर्थ में हवा की गुणवत्ता के मानक निम्न सारिणी प्रदर्शित किये गये हैं –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका – हवा की गुणवत्ता के मानक –

क्षेत्र	ध्वनि का स्तर–डेसीबल में	
	दिन	रात
औद्योगिक	75	70
व्यापारिक	65	55
आवासीय	55	45
संवेदनशील	50	40

(ब) अग्नि पटाखों के लिए शोर मानकों पर नोटिफिकेशन

नोटिफिकेशन का मुख्य उद्देश्य उत्सवों पर पटाखें फूटने से शोर प्रदूषण नियंत्रित करने का है। उच्च तीव्रता के पटाखों के उपयोग से मानव के सुनने के तंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए पटाखों के निर्माण के स्तर पर शोर को नियंत्रित करने के लिए विशिष्ट मानक विकसित किये गये।

नोटिफिकेशन का अतिमहत्वपूर्ण रूप इस प्रकार है –

अग्नि पटाखों के कारीगरों से आशा की जाती है कि वे चार मीटर दूरी पर 125 डेसीबल से अधिक शोर स्तर के पटाखों का निर्माण न करें।

शीघ्रदाह्य (विस्फोटक) विभाग (Department of explosives) से आशा की जाती है कि वह अग्नि पटाखों के लिए नियत किये गये मानकों को लागू करने में आश्वस्त हों।

(स) अग्नि पटाखों के लिए शोर मानकः–

1. पटाखे फूटने के बिन्दुओं से चार मीटर दूरी पर, अग्नि पटाखों द्वारा उत्पन्न शोर स्तर 125 डेसीबल या 145 डेसीबल से बढ़ने पर उनकी कारीगरी, विक्रय या उपयोग निषेध है।

2. जुड़े हुए अग्नि पटाखों (Jointed fire crackers) के लिए उपयुक्त निर्धारित सीमा कम है। शीघ्रदाह्य विभाग को इन मानकों को लागू करने में आश्वस्त होना चाहिए।

3. विभिन्न गाड़ियों के निर्माण स्तर (Manufacturing stage) - इस प्रकार के मानक तालिक के माध्यम से दिग्दर्शित किये जा सकते हैं –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका–वाहनों के निर्माण स्तर पर शोर मानक–

वाहन	दिनांक	शोर सीमा या मानक–डेसीबल (dB) में			
		80 cm^3 तक विस्थापन के लिए	80cm^3 से ज्यादा व 175 cm^3 के विस्थापन के लिए	शून्य से 175 तक के विस्थापन के लिए	175cm^3 से अधिक के विस्थापन के लिए
दुपहिया	1 जन.03	75	77	–	80
	1 अप्रै.05	75	77	–	80
तीन पहिया	1 जन.03	–	–	77	80
	1 अप्रै.05	–	–	77	80
पेसेन्जर कार	**1 जन.03**	**–**	**–**	**–**	**75**

4. वाहितमल जल से सिंचाई हेतु उसमें उपस्थित तत्वों के मानक–निरंतर वाहितमल जल से सिंचाई करने पर भूमि की जल शोषण क्षमता घटने से जल भीतरी स्तरों की ओर बढ़ता है तथा अंततः भूमि जल से मिश्रित हो जाता है। इस प्रकार, यह पेय जल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। नाइट्रेट, फ्लोराइड तथा बोरेट की मात्रा बढ़ जाने से जल पीने योग्य नहीं रह जाता है।

शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद में किये गये वाहितमल जल के उपयोग संबंधी प्रारंभिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो चुका है कि ऐसे जल से सिंचाई करने से मृदा प्रदूषण बढ़ सकता है, जिससे पौधे विषैले तत्वों की अधिक मात्रा अवशोषित कर सकता है। शीलाधर फार्म पर उपलब्ध वाहितमल जल में भारी धातुओं की सान्द्रता एवं एफ.ए.ओ. के अनुसार सिंचाई जल में अधिकतम अनुमेय सान्द्रता तालिका में प्रदर्शित की गई है –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका–सिंचाई हेतु वाहित मल जल में भारी धातुओं के मानक

भारी धातुएँ	वाहितमल जल में सान्द्रता (ppm में)	एफ.ए.ओ.के अनुसार वाहितमल जल अधिकतम अनुमेय सान्द्रता (ppm में)
कैडमियम	0.54	0.01
क्रोमियम	0.58	0.1
लैड	3.52	5.0
जिंक	8.32	2.0
आयरन	10.57	5.0

यहॉं पर **ppm**= part per million

5. अस्पताल से जुड़ी नाली में बहने वाले बहिःस्राव के संबंध में सुनिश्चित मानक (सीमाएं) तालिका में दिग्दर्शित किये गये हैं।

तालिका अस्पताल के बहिःस्राव की सुनिश्चित सीमाएं–

पैरामीटर्स	आज्ञा योग्य सीमाएं
pH	6.3 –9.0
निलंबित ठोस	100 mg/l
तेल तथा ठोस	10 mg/l
बॉयलॉजीकल ऑक्सीजन डिमाण्ड (BOD)	30 mg/l
केमिकल ऑक्सीजन डिमाण्ड (COD)	250 mg/l

यहॉं पर mg/l = मिलीग्राम प्रति लीटर।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. जल के प्रदूषण की क्षमता—जल के प्रदूषण की क्षमता प्रायः इसकी जैव रसायन ऑक्सीजन डिमाण्ड (Biological Oxygen Demand - BOD) पर निर्भर करती है। BOD जल में धुलित ऑक्सीजन की वह मात्रा जो एक निश्चत समय में तथा निश्चित ताप पर पानी में स्थित सूक्ष्मजीवों द्वारा ग्रहण की जाती है।

BOD को मापने के लिए पानी के एक नमूने को जिसमें ज्ञात ऑक्सीजन की मात्रा अंधेरे में 20 अंश सेल्सियस पर पॉच दिवसों के लिए रखते हैं। सैम्पल को अंधेरे में इसलिए रखा जाता है कि किसी भी जीवधारी द्वारा प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया सम्पन्न न की जाये। इस अवधि के उपरांत ऑक्सीजन की मात्रा का पुनः मापन किया जाता है। बी.ओ.डी. की अधिक मात्रा इस तथ्य को इंगित करती है कि उसमें सूक्ष्मजीवी प्रदूषण है।

घर की गन्दी नाली से निकले गन्दे पदार्थों की बी.ओ.डी. 200—400 ppm होती है। अप्रदूषित जल का BOD 5 mg O_2 /लीटर/प्रति 5 दिन होता है। वाहितमल (Sewage) का BOD लगभग 600 mg O_2 /लीटर/प्रति 5 दिन होता है। पीने योग्य स्वच्छ पानी की BOD O1 ppm से कम होनी चाहिए।

वाहितमल के शुद्धिकरण (Sewage treatment) द्वारा, वाहितमल (Sewage) के BOD को 30 mg O2 /लीटर/प्रति 5 दिन किया जा सकता है।

7. विकिरण (Radiation) के मानक —विकिरण की कोई सुरक्षित मात्रा नहीं है। विकिरण की मात्रा में अल्प बढ़ोतरी भी खतरे का संकेत होती है। अधिक समय तक अथवा बार—बार विकिरण से कैंसर अथवा ल्यूकीमिया हो सकता है तथा उत्परिवर्तन (Mutation) के अवसर बढ़ जाते हैं। हानिकारक जीन मनुष्य, पादपों तथा प्राणियों में सदैव बना रह सकता है एवं उनकी संतानों/आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित कर सकता है।

8. हवा की गुणवत्ता के राष्ट्रीय मानक —मनुष्यों के लिए सल्फरडाइऑक्साइड (SO_2) की 0.5 ppm मात्रा, सान्द्रता की वह सीमा है, जहॉ तक की इसका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। वृक्ष SO_2 की 60 PPM तक की मात्रा में भी जीवित रह लेते हैं।

9. पानी की गुणवत्ता के स्वीकृत मानक —पानी की गुणवत्ता से संबंधित मानकों को तालिका में दिया गया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका पानी की गुणवत्ता के स्वीकृत मानक (Water quality accepted standards)

mg/l में pH को छोड़कर

लाक्षणिक (Characterstics)	विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा 1971		भारत सरकार द्वारा 1975/ नवीनत	
	इच्छा योग्य सीमा	अधिकतम संभव	स्वीकार्य	अधिकतम संभव
pH	7.5–8.5	6.0–9.2	6.5 7 8.5	6.5–8.5
सल्फेट क्लोराइड	200	400	200	400
क्लोराइट	200	600	200	1000
फ्लोराइड	01	01.5	01	01.5
नाइट्रेट	75	200	75	200
मैग्नीशियम	30	150	30	150
आयरन	0.1	01	0.1	01
मैग्नीज	0.05	0.5	0.05	0.05
तांबा	0.05	0.1	0.05	1.5
जिंक	5	15	5	15
फिनोल	0.001	0.002	0.001	0.002
पारा	–	0.001	0.001	0.001
डिटरजेंट	–	–	–	01
कैडमियम	0.01	0.01	0.01	0.01
क्रोमियम	0.01	0.05	0.05	0.05
सेलेनियम	–	0.01	0.01	0.01
लेड	–	0.1	0.01	0.1

नोट–pH का कोई मात्रक नहीं होता है। ppm = parts per million

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

10. कोयले की खदानों के नियमों के अंतर्गत वेन्टिलेशन के मानक :– जमीन के अंदर हवा में 19% ऑक्सीजन से कम ऑक्सीजन नहीं होनी चाहिये। जमीन के अंदर हवा में कार्बन डाइऑक्साइड या अन्य हानिकारक गैसें 0.5% से अधिक नहीं होनी चाहिए।

किसी भी स्थान पर वेट बल्ब (Wet bulb) थर्मामीटर का ताप 33.5ºC से अधिक नहीं होना चाहिए ।

सूचनाओं का आदान–प्रदान एवं निगरानी

(Information Exchange and Surveillance)

प्राचीन समय में सूचना का स्थानान्तरण विभिन्न तरीकों से किया जाता था जैसे यूनानी अगोरा, सभा चौक, भारतीय पंचायत आदि। जहॉं लोग अपने विचारों एवं किसी घटना की जानकारी का आदान–प्रदान करते थे। आज से छः हजार वर्ष पूर्व बेबीलोनिया में व्यापारियों ने मिट्‌टी की पट्‌टियों पर ऑंकड़ों का संकलन किया था। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया मानव का ज्ञान बढ़ने लगा। ज्ञान को संचित करने के तरीके उत्तरोत्तर विकसित होते गये। कागज व कलम का सूचना संकलन के इतिहास का एक स्वर्णिम पक्ष है। सरकारों ने भी इस हेतु कई विभागों की स्थापना की। सूचनाएँ पत्र, पत्रिका, पुस्तक, तार, रेडियो के माध्यम से आने जाने लगीं।

दूर संवेदी उपग्रह

आज तो सूचना प्रौद्योगिकी का विकास चरम पर पहुँच गया है। संसार में घटित होने वाली घटना की जानकारी उसी क्षण पूरे संसार में प्रसारित हो रही है। आजकल सूचनाओं का आदान–प्रदान तुरंत ही टेलीविजन, टेलीफोन, फेक्स, इंटरनेट, मोबाइल, एसएमएस, स्पेस संचार, उपग्रह संचार, दूर संवेदन (Remote sensing), प्रकाशीय संचार के माध्यम से हो रहा है। आज मानव के पास पुस्तकों, साहित्य, शोध कार्यो, और व्यापार के रूप में सूचनाओं का भंडार हैः उनको सुचारू रूप से संगठित और संग्रहित करने के लिये कम्प्यूटर उपयोगी सिद्ध हुआ है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कम्प्यूटर में सूचना संचय बाइनरी अंकों के रूप में करते हैं। सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की तकनीक को "संचार तकनीक" कहते हैं। साइबर क्रांति से सूचना संचार के क्षेत्र में हमारे जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा है। सूचना संचार इंजीनियरिंग की ब्रांच इलेक्ट्रॉनिक्स और कम्युनिकेशन इंजीनियरिंग के अन्तर्गत आती है। कम्प्यूटर को डाटा (नाम, मकान नम्बर, चित्र, बोले गये शब्द) प्रदान किये जाते हैं। डाटा का परिष्कृत संशोधित रूप सूचना कहलाता है। इन सूचनाओं को भौतिक मीडिया पर डिजिटल संचय करते हैं। भौतिक मीडिया के अर्न्तगत चुम्बकीय टेप, ऑडियो व विडियो कैसेट,फ्लोपी डिस्क, हार्ड डिस्क, सीडी ,डीवीडी आती हैं। कम्प्यूटर दिये गये डाटा का प्रोसेसिंग करता है, जिससे महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त होते हैं।

संचार तंत्र के अन्तर्गत सामान्यतः जब एक व्यक्ति दूसरे से बात करता है तो बोलने वाला सूचना के स्त्रोत एवं प्रेषित (Transmitter) की तरह कार्य करता है। दोनों व्यक्यिों के मध्य हवा संचार चैनल (Communication channel) तथा सुनने वाला अभिग्राही की तरह कार्य करता है। यह सरलतम संचार तंत्र है।

दूर तक संदेश भेजने हेतु संचार तंत्र का प्रतिरूप –

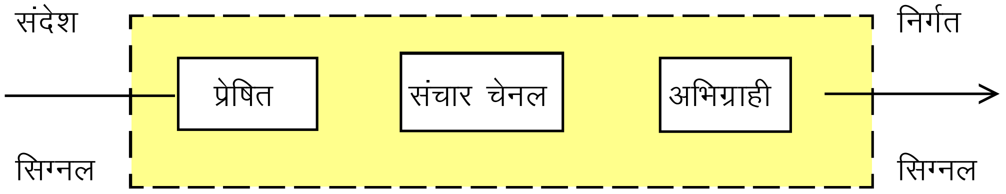

सूचना तकनीकी वर्तमान में विज्ञान की वो देन है जिससे शायद ही कोई क्षेत्र अछूता रहा हो। उन्हीं में से एक पर्यावरण विज्ञान है। पर्यावरण अध्ययन के विभिन्न पद जैसे पर्यावरण पर शोध सूचना का एकत्रीकरण, इन महत्वपूर्ण सूचनाओं को उचित माध्यम द्वारा जन साधारण तक पहुँचाने में सूचना तकनीकी का महत्वपूर्ण योगदान है।

पर्यावरण सम्बन्धी हर सूचना प्रतिक्षण, अंतरिक्ष में स्थापित उपग्रह द्वारा जमीन के केन्द्रों पर प्राप्त होती रहती है। बड़े–बड़े संयंत्रों, कारखानों में घटी किसी भी दुर्घटना या आपातकालीन स्थिति की सूचना इस तकनीक की सहायता से संबंधित केन्द्रों पर पहुँच जाती है। मौसम विज्ञान (मौसम तंत्र का विकास एवं मौसम संबंधी भविष्यवाणी), जलवायु संबंधी अध्ययन (Climatology), समुद्र संबंधी अध्ययन (समुद्री सतह का ताप, समुद्र में बर्फ की स्थिति का आकलन कचरा एवं प्रदूषण की निगरानी आदि) दूर संवेदन के कुछ मुख्य उपयोग हैं । इसके अन्य उपयोगों में पुरातत्व, भू–सर्वेक्षण पानी के स्त्रोतों का सर्वेक्षण, शहरी जमीन के उपयोग का सर्वेक्षण, खेती एवं वानिकी और प्राकृतिक आपदा आदि आते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आज के शोध विद्यार्थियों को किसी भी जानकारी को प्राप्त करने के लिये महीनों इंतजार नहीं करना पड़ता है। इंटरनेट के माध्यम से सेकण्डों में उन्हें वांछित जानकारी प्राप्त हो जाती है। आज इंटरनेट पर हर क्षेत्र की जानकारी फीड है। भिन्न–भिन्न वेब साइट पर भिन्न–भिन्न जानकारी यथा –शिक्षा, चिकित्सा, पर्यावरण, जैविक प्राप्त की जा सकती है। चेटिंग द्वारा दूर बैठे दोस्त से बात कर सकते हैं।

पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका

मानव स्वास्थ्य के क्षेत्रों में तो सूचना तकनीकी एक क्रांति से कम नहीं। आज के युग में बीमारियों को पकड़ना उनका सही स्थान ज्ञात करना, उनके तीन आयामी चित्र प्राप्त करना, बिना किसी चीर फाड़ के ऑपरेशन की छोटी–छोटी चिप (Micro chip) ने संभव कर दिया है।

सूचना प्रौद्योगिकी की पराकाष्ठा का उदाहरण दूरस्थ चिकित्सा है। आज उपकरणों व उपग्रहों के जरिये एक सर्जन अमेरिका में बैठ कर भारत में शल्य क्रिया कर सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण से संबंधित सूचनाएँ उपलब्ध कराने एवं वैश्विक पर्यावरण पर निगरानी रखने के लिये संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने एक प्रणाली स्थापित की है, जिसे विश्वव्यापी पर्यावरण मॉनीटरिंग प्रणाली (GESM) कहते हैं। इस प्रकार से विश्व संसाधनों के बारे में जानकारी एकत्रित करने के लिए ग्लोबल रिसोर्स इंफ्रार्मेशन डेटाबेस प्रणाली (ग्रिड) विकसित की गई है। इन दोनों प्रणालियों में पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं की पहचान एवं निराकरण पर जोर दिया है। इनमें जलवायु और वायुमण्डल, महासागर, नवीकरणीय योग्य संसाधन, प्रदूषण एवं स्वास्थ्य पर प्रदूषण का प्रभाव भी शामिल है। विश्वव्यापी पर्यावरण मॉनीटरिंग प्रणाली नेटवर्क में 25 अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी केन्द्र सम्मिलित हैं, जबकि ग्लोबल रिसोर्स इंफ्रार्मेशन, डेटाबेस प्रणाली (ग्रिड) में 13 केन्द्र सम्मिलित हैं। पर्यावरणीय सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्रित करने में संस्थाओं और व्यक्तियों की सहायता के लिये एक विश्वव्यापी नेटवर्क इंफोटेरा संचालित किया जा रहा है। इसके 179 देशों में राष्ट्रीय केन्द्र हैं, जो संगठनों और आम लोगों को ओजोन गैस के क्षय, जलवायु परिवर्तन, परिवहन एवं अपशिष्ट पदार्थों का निस्तारण, सागरीय पर्यावरण, जल प्रणाली, मिट्टी अपरदन, वनोन्मूलन, जैव विविधता, नगरीय पर्यावरण, स्वपोषित या टिकाऊ विकास, ऊर्जा संरक्षण, मानव अधिवास और जनसंख्या से जुड़े विभिन्न पहलुओं, स्वास्थ्य, विषैले रसायन, पर्यावरणीय कानून और शिक्षा आदि के बारे में सूचनाएँ प्रदान करते हैं। जहरीले होने की आशंका वाले रसायनों पर निगरानी के लिये इंटरनेशनल रजिस्टर ऑफ पोटेंशियली टॉक्सिक केमिकल्स (IRPTC) बनाया गया है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का उद्योग और पर्यावरण कार्यालय व्यावहारिक सूचनांए प्रदान करता है। अपने क्षेत्रीय समुद्री कार्यक्रम के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम समुद्री पर्यावरण की सुरक्षा करता है और समुद्री संसाधनों के उचित उपयोग की तकनीक का सूचना के माध्यम से प्रसार करता है।

राष्ट्रीय स्तर पर भारत में केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा पर्यावरण सूचना प्रणाली नेटवर्क के रूप में आम जनता के लिये पर्यावरण सूचना के संग्रह, भण्डारण और प्राप्ति तथा प्रसार के लिये एक पर्यावरण सूचना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रणाली (ENVES) कायम की गई हैं। पर्यावरण सूचना प्रणाली नेटवक्र में इस समय, इस विषय से सम्बन्धित 25 केन्द्र राष्ट्र के पर्यावरण प्राथमिक क्षेत्रों, विभिन्न संगठनों और संस्थाओं में स्थापित किये गये हैं। पर्यावरण की दृष्टि से मंत्रालय स्थित मुख्य केन्द्र से पर्यावरण एब्स्ट्रेक्ट नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका निकाली जाती है, जिसमें भारतीय सन्दर्भ में पर्यावरण अनुसंधान की जानकारी दी जाती है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम में पर्यावरण स्त्रोतों के लिये अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ प्रणाली, इनफोटेरा ने भारत की पर्यावरण सूचना प्रणाली को दक्षिणी एशियाई और उन क्षेत्रीय देशों के लिये क्षेत्रीय सेवा केन्द्र तथा राष्ट्रीय मुख्य केन्द्र के रूप में मान्यता दी है। पर्यावरण कानून, अपशिष्ट प्रबंधन, पर्यावरण शिक्षा और जागरूकता, वायु और जल प्रदूषण आदि विभिन्न मुद्दों से संबंधित कुल 20,051 सवालों का पर्यावरण सूचना प्रणाली ने वर्ष 2002—03 के दौरान जवाब दिये हैं।

वर्तमान में इंटरनेट पर ऐसी कई वेबसाइट्स हैं, जिन पर पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य से संबंधित सामग्री, शोध पत्र एवं ग्रंथ, पत्रिकाएँ, जर्नल आदि उपलब्ध हैं। इनमें हमारे चारों ओर क्या हो रहा है और भविष्य में क्या हो सकता है, की जानकारी उपलब्ध है। आज कोई भी विद्यार्थी ऑन—लाइन यानि सीधे दूसरे सिस्टम (कम्प्यूटर) पर उपलब्ध व्यक्ति (विशेषज्ञ) से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

निगरानी

(Surveillance)

जब कोई भी योजना प्रदूषण नियंत्रण हेतु लागू की जाती है तो हमें पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए कि कार्य ईमानदारी से होगा, क्योंकि अभी कलियुग का अंतिम चरण चल रहा है। अतः, कार्य की निगरानी, निरीक्षण, रखवाली, चौकसी अति आवश्यक है।

निगरानी हेतु Surveillance cameras/ equipments (UNEP) का उपयोग करते हैं। निगरानी हेतु निगरानी समितियों का निर्माण भी करते हैं। इस संदर्भ में सन् 1985 में गंगा के प्रदूषण निवारण के लिये एक कार्य योजना तैयार की गई थी। प्रदूषण और गंगा जल की पवित्रता पुनः स्थापित करने के लिये एक योजना का क्रियान्वयन गंगा परियोजना निदेशालय द्वारा किया जा रहा है।

गंगा कार्य योजना की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिये एक निगरानी समिति बनाई गई हैं।

दो पृथक निगरानी कार्यक्रम अभी निर्धारित किये गये हैं —

1. ऋषिकेश से उलबेरिया तक 27 स्थानों पर गंगा नदी का ''स्थूल स्तरीय कार्यक्रम'' जिसे वृहत स्तरीय कार्यक्रम भी कहते हैं।

2. ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी जैसे महत्वपूर्ण स्थलों पर ''गहन निगरानी कार्यक्रम'' जिसे सूक्ष्म स्तरीय निगरानी कार्यक्रम कहते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वृहत स्तरीय निगरानी कार्यक्रम –

1. पृष्ठभूमि –केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने जल प्रदूषण की अपनी परियोजना बेसिन तालिका के अंतर्गत सम्पूर्ण बेसिन से संबंधित एकीकृत अंतर्राज्यीय अध्ययन किया है। इसमें जल गुणवत्ता के सभी संगत पंक्षों को लिया गया हैं। इस अध्ययन के अंतर्गत केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड ने 1981–96 के दौरान सम्पूर्ण नदी में 32 नमूना स्थलों पर नियमित जल निगरानी की है और विभिन्न भौतिक, रासायनिक और जैव पैरामीटरों का विश्लेषण किया है।

गंगा कार्य योजना के अधीन क्रियान्वित की जा रही, विभिन्न प्रदूषण के साथ, जल गुणवत्ता को सह–संबंधित करने के लिये गंगा परियोजना निदेशालय ने केन्द्रीय बोर्ड से अनुरोध किया है कि वे अपने कार्यक्रम को संशोधित करें।

2. जल गुणवत्ता निगरानी स्कीम में संशोधन –केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली और औद्योगिक विष–विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ इन दोनों एजेंसियों को गंगा नदी के जल पर निगरानी रखने के संदर्भ में विभिन्न कार्य सौंपे गए हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली को भौतिक, रसायनिक और जैव पैरामीटरों के संबंध में गंगा नदी की गुणवत्ता का कार्य सौंपा गया है।

औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान परिषद, लखनऊ को भारी धातुओं और कीटनाशकों के विश्लेषण का काम सौंपा गया है। इस परिषद के लिये, विश्लेषण हेतु नमूने एकत्र करने और उन्हें परिषद को सौंपने का कार्य उत्तरप्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल इन तीनों राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किया जा रहा है।

रिपोर्ट के संदर्भ में निम्नलिखित पैरामीटर चुने गये हैं–

(1) विलीन ऑक्सीजन (डी.ओ.)

(2) जैव रासायनिक ऑक्सीजन (बी.ओ.डी.)

(3) फीकल कोलीफार्म (एफ.सी.)

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा ऋषिकेश और उलुबेरिया के मध्यवर्ती नदी भाग के पैरामीटर के वर्गीकरण के संबंध में मापदण्ड बनाया गया है। प्रत्येक नदी भाग की जल गुणवत्ता के बारे में संबंधित मौसम के संदर्भ में मापदण्ड के अनुसार समिति को इसकी सूचना दी जाती है।

विभिन्न पैरामीटर (बी.ओ.डी., डी.ओ. और एफ.सी. को छोड़कर) के संदर्भ में वर्ष के अंत में एक तालिका बनाई जाती हैं, जिसमें अधिकतम और अल्पतम देखे गये मूल्यों और नदी के चारों भागों में से प्रत्येक में औसत मानक विचलनों का उल्लेख रहता है।

भारी धातुओं और कीटनाशकों के संबंध में भारतीय विष–विज्ञान अनुसंधान केन्द्र सभी नमूना–स्थलों के प्रत्येक महीने के अनुसार परिणाम घोषित कर रहा है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सूक्ष्म स्तरीय गहन निगरानी –

पृष्ठ भूमि –वृहत स्तरीय निगरानी से भिन्न यह एक विशिष्ट निगरानी कार्यक्रम है। यह सेपलिंग की बारम्बारता और सेपलिंग केन्द्रों की संख्या की दृष्टि से गहन निगरानी है ताकि (1) उत्तरप्रदेश में गंगा नदी की जल गुणवत्ता और (2) उत्तरप्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की सहायता से उत्तरप्रदेश के पांच मुख्य नगरों में गंगा नदी की नियमित निगरानी द्वारा प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रम की सफलता का अनुमान लगाया जा सके। पॉच नगर हैं –ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी । इन नगरों की श्रृंखला के अंतर्गत चुने गए 42 नमूना केन्द्रों में गंगा नदी की निगरानी की जा रही है।

ये नमूने एक माह में तीन बार लिये जाते हैं। पहला नमूना माह के पहले से दसवें दिन, दूसरा नमूना ग्यारहवें से इक्कीसवें दिन और तीसरा नमूना इक्कीसवें दिन से तीसवें दिन के भीतर लिया जाता है। नालों की गुणवत्ता का अनुमान लगाने के लिये इन पॉच नगरों के नालों के पानी की महीने में एक बार जॉच की जाती है।

गंगा परियोजना निदेशालय द्वारा उत्तरप्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा भेजे गये ऑकड़ों का संग्रह कम्प्यूटर में किया जाता है। जल गुणवत्ता मॉडलिंग के प्रयोजन के लिये बी.ओ.डी., डी.ओ., पीएच और तापमान का संग्रह करके औसत मानक विचलनों जैसी गणनाएॅ कर ली जाती हैं।

निगरानी के लिये ऑकड़ों का विश्लेषण किया जाता है और मौसमवार न्यूनतम और अधिकतम प्रेक्षित मूल्यों तथा प्रतिशत विचलनों का हिसाब लगाया जाता है।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. "नीतियॉ नियम नहीं है" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. हीनार्थ प्रबंधन से क्या तात्पर्य है ?
3. किन्हीं दो संवेदनशील पौधों के नाम लिखिए ।
4. दूर तक संदेश भेजने हेतु संचार तंत्र का प्रतिरूप बनाइए।
5. दूरस्थ चिकित्सा से क्या तात्पर्य है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर्थिक नीति के किन्हीं पॉच घटकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. वायुमण्डल में प्रदूषण के जैविक सूचक के रूप में किन्हीं पॉच पौधों के नाम दीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. मानव संसाधन के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका का वर्णन कीजिए।

4. राष्ट्रीय स्तर पर भारत में पर्यावरण सूचना प्रणाली नेटवर्क कायम किया हैं। इसका उद्देश्य क्या है ?

5. आर्थिक नियंत्रण किसे कहते हैं ? आर्थिक नीति की सफलता हेतु कौन–कौन से नियंत्रण लगाये जाते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक नीति से क्या तात्पर्य है? आर्थिक नीति के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

2. वायु में सल्फर डाइऑक्साइड प्रदूषण से कौन–कौन से पौधों पर किस प्रकार से दुष्प्रभाव पड़ता है ? वर्णन कीजिए।

3. पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका का वर्णन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–3

अध्याय – 6

संधारित/सतत् विकास

पाठ्यक्रम – संधारित विकास की अवधारणा, संधारित उपभोग की अवधारणा, वर्तमान एवं भविष्य के जीवन स्तर में सुधार हेतु संधारित विकास की आवश्यकता। संधारित विकास की चुनौतियाँ–सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक चुनौतियाँ

संधारित/सतत् विकास की अवधारणा (Concept of Sustainable Development)- 22 दिसम्बर 1989को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपने 85वें पूर्ण अधिवेशन में ब्राजील में पर्यावरण और विकास सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन आयोजित करने का संकल्प पारित किया। संयुक्त राष्ट्र द्वारा यह निर्णय लिया गया कि सम्मेलन में सभी देशों में पर्यावरण सम्बन्धी ह्रास को रोकने तथा इस प्रक्रिया को बदलने के लिए तथा पर्यावरण के सम्बन्ध में ठोस तथा सतत विकास के लिए कार्यनीतियों तथा उपायों पर विस्तृत रूप से विचार किया जायेगा। सितम्बर 2003 में जोहेन्सवर्ग, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित 'अर्थ सम्मिट' की विषयवस्तु संधारित/सतत् विकास थी।

ब्रंट और कमीशन 1987 के अनुसार संधारित/सतत् विकास का आशय ''भावी पीढ़ी द्वारा उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने की अपनी क्षमता को प्रभावित किये बिना मौजूदा समय की आवश्यकताओं को पूरा करना है।'' इसलिए सतत् विकास का आशय उस विचारधारा से है, जहॉं मानव उत्सर्जन के परिणामस्वरूप प्रकृति की पुनः उत्पादक क्षमताऍं संतुलन में रहती हैं।

विकास से सतत् विकास– जब देश की अर्थव्यवस्था सशक्त और लाभप्रद हो जावे देश के लोगों की सेहत बेहतर हो जावे, सभी को उच्च स्तर की शिक्षा मिले, सुरक्षा व्यवस्था इतने मजबूत हो कि अन्य देश ऑंख उठाने की साहस भी न कर सके, कई क्षेत्रों में समर्थ बन जावे उच्च कोटि की वस्तुओं का निर्माण व उत्पादन होने लगे, ऐसी दशा जिस देश की है उसे हम '' विकसित देश' कहते हैं। हमारे देश में इस प्रकार की क्षमता है। हमारा यह सपना 15–20 वर्षों में पूरा हो सकता है। इसे हम आर्थिक विकास कहेंगे। विकास की अवधारणा का यह अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण है। इसकी कुछ विशेषताऍं हैं, जैसे –

– सकल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि दर में बढ़ोतरी

– रोजगार के अवसरों में वृद्धि

– अधिक उत्पादन एवं अधिक उपभोग

– आर्थिक संसाधानों का निर्माण एवं तीव्र औद्योगीकरण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सामाजिक विकास– आर्थिक दृष्टिकोण से विकास का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका तो विकास की अवधारणा भी बदलने लगी। हमें सतत् विकास की अवधारणा तक पहुँचना है। इसी प्रयोजन से विकास की बदलती अवधारणाओं का उल्लेख किया जा रहा है। आर्थिक विकास के बाद दूसरी कड़ी सामाजिक विकास की है। जो विकास मानवीय आवश्यकताओं और जीवन की गुणवत्ता से सम्बन्धित हो उसे सामाजिक विकास कहा जाने लगा। जिस प्रकार सकल राष्ट्रीय उत्पाद आर्थिक विकास का आधार है, उसी प्रकार सकल राष्ट्रीय कल्याण सामाजिक विकास का आधार है। इसे हम सामाजिक विकास का गुणवत्ता आधार कह सकते हैं। हाब हाउस ने सामाजिक विकास के चार मापदण्ड बताये हैं –

1. **मात्रा में वृद्धि –** सामाजिक विकास के इस मापदण्ड के अनुसार जनसंख्या के आकार में वृद्धि होती है।

2. **कार्यक्षमता –** कार्यक्षमता अधिक होने पर विकास भी अधिक होता है।

3. **पारस्परिकता–** लोगों के बीच पारस्परिक सहयोग एवं समन्वय होने पर विकास की संभावना बढ़ जाती है।

4. **स्वतंत्रता –** वैचारिक स्वतंत्रता एवं कार्य करने की स्वतंत्रता भी विकास का मापदण्ड है। जहॉं वैचारिक स्वतंत्रता एवं कार्य करने की स्वतंत्रता अधिक होगी वहां विकास भी अधिक होगा।

सामाजिक विकास की अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है, इसके अंतर्गत सामाजिक कल्याण के सभी पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

मानव विकास– सतत् विकास को समग्र दृष्टिकोण से समझने के क्रम में मानव विकास के अर्थ को समझना भी आवश्यक है। मानव विकास की अवधारणा में मानव को केन्द्रित कर विकास को स्पष्ट करने का प्रयास किया। विकास के आर्थिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक दृष्टिकोण में जो कमी थी उसे दूर करने के लिए मानव विकास की अवधारणा को विकसित किया। संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) के तहत 1990 में मानव को विकास का केन्द्र मानकर मानव विकास रिपोर्ट तैयार की गई । उसके बाद से प्रति वर्ष मानव विकास रिपोर्ट प्रकाशित होती है।

मानव विकास की चर्चा से यह स्पष्ट है कि विकास का सम्बन्ध केवल कल–कारखानों बॉंधों और सड़कों से नहीं है। इसका संबंध लोगों के जीवन तथा मानवीय पक्ष से है। विकास के सूचकांक में मनुष्य के जीवन से सम्बंधित आधारभूत पक्षों को सम्मिलित किया गया है। जैसे विभिन्न आयु वर्ग में मृत्यु दर व जीवित रहने की दर, साक्षरता दर, प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर सकल नामांकन दर, सकल घरेलू उत्पाद, आय, स्वास्थ्य, स्वच्छ जल की सुलभता, कुपोषण आदि मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित आधारभूत पक्ष है। इन्हीं के आधार पर विभिन्न देशों को सूचकांक प्रदान किये जाते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानव विकास रिपोर्ट 2005 में 177 देशों की सूची में हमारे देश का स्थान 127 वॉं है। हमारा देश मध्यम सूचकांक वाले देशों में आता है। मानव विकास के उच्च सूचकांक वाले देशों की संख्या 57 हैं। मध्यम सूचकांक वाले 88 देश है और इनमें भी हमारा स्थान बहुत नीचे है। निम्न सूचकांक वाले देशों की संख्या 32 हैं।

उल्लेखनीय है कि वर्तमान दौर में भारत की गिनती विश्व में तेज बढ़ती हुई अर्थ व्यवस्था में होती है, लेकिन मानव विकास सूचकांकों में अभी हमें आगे बढ़ना है। आर्थिक विकास और जन कल्याण के बीच की दूरी को कम करना है। आम लोगों के जीवन स्तर को उन्नत करने के प्रयास और तीव्र करते हैं। विकास की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा, स्वास्थ्य और आय का वितरण हो। इन सभी के साथ विकास के टिकाऊपन की आवश्यकता है।

अब तक हमने विकास के आर्थिक, सामाजिक एवं मानवीय दृष्टिकोण का विवेचन किया है। विकास के इन तीन आयामों के बाद सतत्/टिकाऊ विकास की संकल्पना का चिंतन प्रारंभ हुआ। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए टिकाऊ विकास का सैद्धांतिक पक्ष एवं व्यावहारिक पक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

सतत्/संधारित विकास का अर्थ– विकास का सम्बन्ध संसाधनों से जुड़ा है। संसाधन उपलब्ध है तो विकास होता है। संसाधनों के अभाव में विकास की गति ठहर जाती है। चाहे हम आर्थिक विकास की बात करें अथवा सामाजिक विकास और मानव विकास की। विकास का आधार ही संसाधन है। जब सतत या टिकाऊ विकास को समझना है तो संसाधनों की उपलब्धता और उनके दोहन की बात को ध्यान में रखना आवश्यक है। आर्थिक, सामाजिक और मानव विकास के संदर्भ में संसाधनों के प्रयोग और दोहन को आधार बनाकर विकास की बात करते हैं। जबकि सतत या टिकाऊ विकास के साथ एक महत्वपूर्ण सतत् या टिकाऊ विकास की संकल्पना विश्व के सीमित संसाधनों के अनुभव से निर्मित हुई। संसाधन सीमित है लेकिन उनके उपभोग का अनुपात निरंतर बढ़ता रहा, फलस्वरूप पर्यावरण के जीवनदायी घटकों को नुकसान पहुँचने लगा। ऐसी दशा में सतत् या टिकाऊ विकास की धारणा विकसित हुई। इसी धारणा के आधार पर सतत् विकास की व्याख्या की गई और एक नीति बनाई गई।

सतत् विकास का प्रस्ताव सबसे पहले 1972 में स्टॉकहोम में रखा गया। इसके अनुसार पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियंत्रण पर जोर दिया गया।

विश्व पर्यावरण और विकास आयोग के अनुसार सतत् विकास परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, प्रौद्योगिकी के विकास और संस्थागत परिवर्तन की दिशा के बीच तालमेल हो और जिससे मानवीय आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को पूरा करने की वर्तमान और भावी क्षमताओं में वृद्धि हो। पर्यावरण नीतियों और विकास कार्यक्रमों के बीच समन्वय सतत् विकास की संकल्पना का केन्द्र बिन्दु हैं –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सतत् विकास के महत्वपूर्ण आयाम

– पृथ्वी पर जीवन को बनाये रखने वाली प्राकृतिक प्रणालियों को खतरे से बचाना।

– संसाधनों के उपयोग में कमी करना।

– संसाधनों का पुनश्चक्रण तथा पुनः उपयोग।

– गैर–नव्यकरणीय संसाधनों (तेल और कोयला) की अपेक्षा नव्यकरणीय (सौर, पवन ऊर्जा) संसाधनों का अधिक उपयोग।

– सभी वंचित लोगों की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हों तथा बेहतर जीवन जीने का अवसर उपलब्ध हो सके।

– पारिस्थिकीय तंत्र को संतुलित किया जाए।

सतत् विकास का सिद्धांत – संसाधन दोहन एवं संसाधन संरक्षण के बीच सामंजस्य बनाये रखना सतत् विकास का सिद्धांत है। पारिस्थितिक संतुलन एवं सामाजिक आर्थिक विकास के बीच समन्वय इसी सिद्धांत का अनिवार्य पक्ष है। सतत् विकास के सिद्धांत के अनुसार तीन प्रकार की प्रक्रियाओं के बीच समन्वय बना रहता है

(अ) सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया

(ब) संसाधन दोहन

(स) प्राकृतिक संरक्षण अथवा पर्यावरण सुरक्षा।

जब ये तीनों प्रक्रियाएँ आपसी तालमेल के साथ निरंतर चलती हैं तो इसे सतत् विकास कहा जाता है। इसी सिद्धांत के अनुरूप सतत् विकास की प्रक्रिया में निरन्तरता बनी रहती है।

सतत् विकास और भारतीय दर्शन – सतत् विकास की संकल्पना विश्व समुदाय ने सर्व सम्मति से प्रतिपादित की है। सतत् विकास के सिद्धांत का अनुमोदन भी सभी देशों ने किया है। प्रश्न यह है कि ऐसी परिस्थिति क्यों बनी? हमारे देश के दर्शन और हमारे संस्कारों को तो अतीत से ही सतत् विकास के सिद्धांत की पृष्ठभूमि एवं नींव कहा जा सकता है। वेद, उपनिषद्, शतपथ ब्राम्हणकालीन समय में संसाधन एवं विकास का गरिमामय अस्तित्व था। विद्वेष, अलगाव, प्रतिस्पर्धा और अमानवीय प्रवृत्तियों का अभाव था। सांस्कृतिक समृद्धि पर्यावरण से सम्बद्ध रही। वनस्पति एवं प्राणियों के कल्याण के लिए हवन तथा अन्य कर्मकाण्ड किये जाते थे। पौधे से पुष्प तोड़ने से पूर्व आज्ञा लेने की मन की चेतना थी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का 'कुटीर चिन्तन' इसी सतत् विकास से जुड़ा चिंतन रहा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन अर्थात हमारे देश का जीवन दर्शन पर्यावरण रक्षा का दर्शन रहा है। प्राकृतिक संसाधनों में जल, जंगल और जमीन तीन ही प्रमुख तत्व हैं। इनके प्रति कृतज्ञता का भाव रहा है। इन संसाधनों से मानव जो कुछ प्राप्त करता रहा उसकी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

क्षतिपूर्ति का प्रबन्ध भी समानान्तर रूप से होता था। प्राकृतिक संसाधनों के क्षमता से अधिक दोहन तथा अवैज्ञानिक तरीके से भूमि के उपयोग से सतत् विकास की संकल्पना की आवश्यकता हुई। यदि भारतीय दर्शन के अनुसार कृतज्ञ भाव से दोहन और पुनर्भरण की नीति को विश्व समुदाय अपना लेता तो टिकाऊ विकास व्यावहारिक रूप से दिखाई देता।

सतत् विकास की मान्यताएँ –

– विकास के लिए पेड़ काटना अपरिहार्य है तो जितने पेड़ काटे जाते हैं, उनसे दुगुने पेड़ पुनः लगाना अनिवार्य है।

– कारखानों से निकलने वाली गैसों का अपशिष्ट का सही निस्तारण हो।

– उपयोग में लाये जाने वाले अपशिष्ट का पुनः चक्रण किया जाये।

– पर्यावरण मैत्री प्रक्रिया चलाना।

– वन्य प्राणियों की संख्या में वृद्धि का ध्यान रखते हुए उनके प्रजनन की सुरक्षा करना।

– जल में अवशिष्टों के विसर्जन को रोकने के प्रयास तथा अवशिष्ट से प्रभावित जल के पुनः शुद्धीकरण के उपाय करना।

– विकास की निरन्तरता और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एक–दूसरे के पूरक बने रहें।

सतत् तथा टिकाऊ विकास की संकल्पना का निष्कर्ष यह है कि हम प्रगति करें लेकिन संसाधनों का संतुलन भविष्य में बना रहे। केवल संसाधनों का दोहन ही विकास का लक्ष्य न हो।

संधारित/सतत् उपयोग की अवधारणा

टिकाऊ विकास एवं टिकाऊ उपभोग एक–दूसरे पर आश्रित हैं। विकास और उपभोग साथ–साथ चलने वाली प्रक्रिया है। जब से विकास की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव हुआ तभी से मानवीय आवश्यकताऍं भी प्रकट होने लगी। उपभोक्ता शब्दावली का जन्म भी विकास एवं अंतहीन मानवीय इच्छाओं के परिणामस्वरूप हुआ। इतना ही कहना पर्याप्त है कि सतत् विकास की प्रक्रिया है तो सतत् उपभोग की प्रक्रिया भी बनी रहेगी। आखिर सतत् उपभोग का अर्थ क्या हो सकता है, यही बात हमें समझनी है।

सतत् उपभोग का अर्थ –

संसाधनों को उपयोग में लाना, वस्तुओं का प्रयोग करना, पदार्थों को काम में लेना सामान्य अर्थ में उपभोग कहा जा सकता है। इस दृष्टि से विश्व का एक भी प्राणी ऐसा नहीं है जो संसाधनों अथवा वस्तुओं को काम में नहीं लेता है। सभी प्राणियों को जीवित रहने के लिए भोजन, जल एवं वायु की आवश्यकता तो होती है। सभी संसाधनों का उपभोग करते हैं इसलिए 'उपभोक्ता' कहलाते हैं। उपभोक्ता यदि मानव है तो वह अन्य जीवों से भिन्न प्रकार का उपभोक्ता कहलाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हम सतत् उपभोग की संकल्पना का विवेचना मानव उपभोक्ता के संदर्भ में ही करेंगे। मानव की आवश्यकताएँ अनेक प्रकार की हैं विविध प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही मानव उपभोक्ता बन जाता है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त वह उपभोग करता ही रहता है। अतः उपभोग की निरन्तरता, नवीनता व आवश्यकता सदैव बनी रहती है। इसी को सतत् उपभोग कहा जा सकता है। न्यूनतम आवश्यकताओं को प्राप्त करना प्रत्येक मानव का अधिकार भी है। लेकिन समस्या न्यूनतम आवश्यकता को परिभाषित करने की है। न्यूनतम आवश्यकता आर्थिक, जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक हो सकती है। इसके देश–काल–परिस्थिति के अनुसार मापदण्ड भी निर्धारित होते रहे हैं। न्यूनतम आवश्यकता के जो भी मापदण्ड रहे हों उनसे सतत् उपभोग की संकल्पना के विश्लेषण की आवश्यकता नहीं पड़ी । सतत् उपभोग का विवेचन असीमित आवश्यकता के कारण पड़ता है। मौलिक मानवीय आवश्यकताओं के अंतर्गत रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि आते हैं। इन्हीं मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्य संसाधनों का प्रयोग किया जाता है संसाधनों की उपलब्धता निरंतर बनी रहे और आवश्यकताओं की पूर्ति भी निरंतर होती रहे, यही सतत् उपभोग है। आवश्यकताएँ बढ़ती रहेगी संसाधनों की उपलब्धता घटती रहेगीं तो यह सतत् उपभोग नहीं है।

उपभोक्तावाद एवं पर्यावरण –

टिकाऊ उपभोग एक विचारणीय बिन्दु है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने पर्यावरण का सबसे अधिक विनाश किया है। टिकाऊ उपभोग के विवेचन की आवश्यकता ही उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण हुई। अभी हम उन दशाओं को समझने का प्रयास करेंगे जिनसे असीमित उपभोग होने लगा। पिछले 50 वर्षों में मानव ने पारिस्थितिकी तंत्र को जितना परिवर्तित किया उतना परिवर्तन पहले कभी नहीं हुआ। अपनी असीमित आवश्यकताओं के कारण पिछले 50 वर्षों में अधिक से अधिक भूमि का उपयोग होने लगा। अनेक जीवों का अस्तित्व संकट में पड़ा, अनेक प्रकार की बीमारियों का जन्म हुआ, मौसम में बदलाव होने लगा। पारिस्थितिकी तंत्र का मूल्यांकन करने वाले दल ने तो यह भी चेतावनी दी है कि यदि उपभोक्तावादी संस्कृति का क्रम इसी प्रकार विस्तृत होता रहेगा तो आने वाली पीढ़ियों के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इस संस्कृति से ही पारिस्थितिक असंतुलन उत्पन्न हुआ और पर्यावरण का विनाश प्रारंभ हुआ।

हम अपने ही प्रांत छत्तीसगढ़ की बात करें तो स्पष्ट है कि प्राकृतिक संसाधनों के क्षमता से अधिक दोहन तथा जंगलों के अंधाधुंध कटाई से मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। भूमि का ह्रास हुआ, बंजर तथा पथरीली भूमि के आकार में वृद्धि हुई, लवणीय व क्षारीय भूमि का आकार बढ़ा। यह सब दशाएँ मरूस्थलीय को दर्शाती हैं। भू–उपयोग की युक्तियुक्त भावना की कमी से पर्यावरण को नुकसान हो रहा है।

वन एवं वन्य जीवों का उपयोग– वन एवं वन्य जीव भारतीय जीवन का आधार हैं। इनसे उपभोक्ता को विविध प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है। जड़ी बूटियॉं, प्राकृतिक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री, इमारती लकड़ी, कागजी लकड़ी आदि वन से प्राप्त होती है। अनेक प्रकार के वन्य जीव भी वनों में ही निवास करते हैं। ग्रामीण समुदाय का बड़ा भाग वनों से अपनी आजीविका चलाता है । हमारे देश की अर्थव्यवस्था का आधार स्तंभ भी वन सम्पदा है। वन सम्पदा का टिकाऊ उपभोग तो उचित है। लेकिन जिस क्रूरता और स्वार्थ के लिए वन एवं वन्य जीवों का उपभोग हो रहा है, ये उपभोग टिकाऊ नहीं हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वन एवं वन्य जीवों का टिकाऊ उपभोग वह उपभोग है, जो उनके संरक्षण और उपयोग की निर्धारित सीमा में होती है लेकिन इनका उपयोग सीमा से बाहर हो रहा है। यह दुरूपयोग वन सम्पदा की घटने का कारण रहा है।

उपभोक्तावादी संस्कृति ने सजाने और श्रृंगार की सामग्री का बाजार विकसित किया है इस बाजार में जंगली जानवरों की खाल, बाल, नाखून व हड्डियों से बना सामान बेचा जाता है। इन बाजारों में ऐसे आभूषण बिक्री के लिए उपलब्ध होते हैं जो कई जीवों को मारने के बाद बनाये जाते हैं। जैसे मूँगा एक छोटा समुद्री जीव है, इसे मारकर आभूषण बनाये जाते हैं। सीपी, घोंघा, मोती, हाथी दॉत आदि से भी कई सजाने की सामग्रियॉ व आभूषण बनाये जाते हैं। यह सब उपभोक्ता को आकृष्ट करने के लिए किया जाता है। इससे वन एवं वन्य जीवों का निरंतर विनाश हो रहा है। उनके संरक्षण एवं पुनर्भरण के साथ युक्तियुक्त उपभोग की स्थिति को सतत् उपभोक्ता कहा जा सकेगा। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि जंगल घट रहे हैं, वन्य जीवों की कई प्रजातियॉ तो लुप्त हो रही हैं, अन्य वन्य जीवों का उपभोग बढ़ने से उनकी संख्या कम हो रही है। इस स्थिति को सतत् उपभोग की संकल्पना के आधार पर बदलने की आवश्यकता है।

ऊर्जा एवं सतत् उपभोग –

ऊर्जा का उपभोग विकास एवं सतत् उपभोग की संकल्पना के विश्लेषण में प्रासंगिक है। ऊर्जा उपभोग के चार मुख्य क्षेत्र हैं – 1. घरेलू 2. जनसेवाओं में 3. कृषि एवं 4. उद्योग । प्रश्न यह है कि उपभोग की जाने वाली ऊर्जा हमें कहॉ से प्राप्त होती है। यदि ऊर्जा का स्रोत नव्यकरणीय है तो इसका उपभोग टिकाऊ कहा जा सकता है। अगर ऊर्जा का स्रोत अनव्यकरणीय है तो यह केवल उपभोग की श्रेणी में रखा जा सकता है। टिकाऊ उपभोग भविष्य की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए अपनाया जाता है।

तथ्यों के आधार पर यह अनुमान है कि सन 2012 तक हमारे देश को 100000 मेगावाट अतिरिक्त बिजली उत्पादन के लिए 800000 करोड़ रूपए का निवेश करना होगा। यदि यह संभव नहीं हुआ तो बढ़ते उपभोग के कारण लगभग 50 प्रतिशत विद्युत कटौती करनी होगी। बढ़ती आबादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से उपभोग निरंतर बढ़ रहा है। सतत् उपभोग की संकल्पना तभी सार्थक हो सकती है, जब नव्यकरण स्रोत को बढ़ावा देते हुए उपभोग भी संतुलित हो। वैज्ञानिक समुदाय उसकी क्षतिपूर्ति के उपायों की खोज भी जारी है।

सतत् उपभोग की दिशा में प्रयास

एक पीढ़ी आने वाली पीढ़ी के लिए जो धरोहर छोड़ जाती है, उसी से पीढ़ियों की निरंतरता बनी रहती है। इस धरती पर आने वाली पीढ़ियों के लिए वन सम्पदा, वन्य जीव, स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और आवश्यकतानुसार संसाधन निरंतर बने रहेंगे तभी आने वाले लोग इस धरोहर से लाभान्वित हो सकेंगे। इस प्रकार का क्रम बिना रूकावट के चलता रहेगा तभी टिकाऊ विकास और टिकाऊ उपभोग की संकल्पना सार्थक बनेगी।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हम टिकाऊ उपभोग के लिए क्या करें –

1. पानी एकत्र करने के लिए कुएँ, तालाब, पोखर, हौज, सरोवर आदि का रख–रखाव करें। इनमें पानी जमा हो सके ऐसे परम्परागत तरीके अपनायें।
2. जल प्रबंधन एवं मितव्ययिता को प्राथमिकता देना।
3. वर्तमान पीढ़ी आने वाली पीढ़ी को यह शिक्षा दें कि वे इस पर्यावरण धरोहर का केवल उपभोग नहीं बल्कि इसे संजोने के प्रयास भी करें।
4. जल, वायु और भूमि के बेहतर उपयोग के प्रयास हों।
5. हमें अपने ऊर्जा उपयोग एवं उपभोग प्रतिमानों पर पुनर्विचार करना होगा।
6. गॉवों से शहरों की ओर पलायन रोकने हेतु गॉवों का विकास भारतीय दर्शन के अनुसार हो।
7. उपभोक्ता वस्तु उद्योग की अपेक्षा सामाजिक क्षेत्र के विकास को बढ़ावा देना।
8. प्रत्येक क्षेत्र में उपभोग में कमी करने के प्रयास हो।
9. घने जंगल बढ़ाये जाने वाले क्षेत्रों में वृक्षारोपण किया जाए।
10. पशुओं की खाल, बाल, दॉत, हड्डियों से बनी सामग्री का उपयोग नहीं करना चाहिए।

वर्तमान एवं भविष्य के जीवन स्तर में सुधार हेतु संधारित/सतत् विकास की आवश्यकता

हमारे देश के वर्तमान राष्ट्रपति की मान्यता है कि देशवासियों की आवश्यकताओं एवं उम्मीदों को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों को केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए संरक्षित नहीं रखना है, अपितु आने वाली पीढ़ियों को ध्यान में रखते हुए इनका संरक्षण करना है। इस कथन से टिकाऊ विकास की आवश्यकता का संदेश प्राप्त होता है।

सतत् विकास का महत्व

विकास के नाम पर केवल एक पक्षीय कार्यवाही होती रही। यह कार्यवाही है–

1. प्राकृतिक संसाधनों का अनवरत दोहन
2. जंगलों का निरंतर विनाश

कृषि एवं उद्योग को बढ़ावा देने के लिए जंगलों को साफ करते रहे। विकास के ऐसे दौर में सतत् विकास के महत्व को नहीं समझ पाये।

आवश्यकता और स्वार्थ में अन्तर होता है। सतत् विकास का महत्व आवश्यक है और आर्थिक विकास स्वार्थ से सम्बन्धित है। जैसे–जैसे विकास की गति बढ़ती रही, वैसे ही प्राकृतिक संसाधन घटते रहे। हमारे छत्तीसगढ़ प्रांत में भी अकाल पड़ते रहे, जंगलों का दोहन होता रहा, नदी, नाले, तालाब, पोखर, बावड़ियां, कुएँ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उपेक्षित होते रहे। इस प्रकार की स्थितियाँ एकपक्षीय है। इन्हीं के फलस्वरूप टिकाऊ विकास की आवश्यकता को समझने के प्रयास होने लगे।

टिकाऊ विकास के महत्व को हमारे पूर्वजों ने समझाया था। उन्होंने कृषि और पशुपालन व्यवसाय में संतुलन बनाये रखने के प्रयास किये। प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकतानुसार दोहन करने के लिए चेतना जागृत की। पूर्वजों ने जल–वृक्ष और गौ– धन की रक्षा के लिए जो कुछ किया उससे सतत् विकास की धारणा बलवती हुई। प्रकृति से सामंजस्य और संतुलन बनाये रखने का इनका संदेश इनको 'लोकदेवता' के रूप में स्थापित कर गया।

स्वार्थपरक आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि दर बढ़ने लगी तो प्राकृतिक संतुलन भी टूटने लगा। इससे भी सतत् विकास के महत्व को समझने में सहायता मिली। हरियाली हमारी जीवन शक्ति है, इसका निरंतर ह्रास हो रहा है, पेड़ों की संख्या निरंतर घट रही है। पेड़ों की कमी से मानसुनी हवाएँ बिना बरसे चली जाती हैं । इन दशाओं का परिणाम अकाल के रूप में प्रकट होती है। ऐसी परिस्थितियों में बदलाव के लिए टिकाऊ विकास की क्रियान्विति पर ध्यान दिया जा रहा है।

प्राकृतिक बाधाओं से बचाव

हम सतत विकास के महत्व की चर्चा कर रहे हैं। प्राकृतिक बाधाओं से बचने का यही एक तरीका है। प्राकृतिक बाधाएँ सतत् विकास अपनाने से कम हो सकती हैं ऐसा कुछ सदियों पूर्व था। हमारे देश में विकास के नाम पर जंगलों की कटाई होती रही,कृषि भूमि विस्तार के लिए हरे भरे जंगल कम होते रहे तथा औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया से कृषि भूमि के साथ जंगल के आकार सिमटते रहे। यह सतत् विकास नहीं था, इसे हम केवल विकास ही कहेंगे, क्योंकि इस विकास से विनाश अधिक हुआ, प्राकृतिक बाधाएं बढ़ती रही, नदियॉ सूखती चली गई, जल स्तर गिरता रहा, डार्क जोन बढ़ते रहे। मानव का लालच निरंतर बढ़ रहा है, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अपने स्वार्थ के लिए किया जा रहा है। यदि प्राकृतिक बाधाओं से बचना है तो सतत् विकास की संकल्पना के अनुसार प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता है।

बढ़ती आर्थिक विषमता –

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम रिपोर्ट के अनुसार विश्व के धनी देश अधिक धनवान होते जा रहे हैं। अमेरिका, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और कनाडा केवल अपने ही देश को समृद्ध बनाते जा रहे हैं। ये देश अन्य देशों को सहायता भी देते हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के ऑकड़ों से यह ज्ञात होता है कि आर्थिक विकास की दृष्टि से धनी देशों की प्रति व्यक्ति आय में कई गुना वृद्धि हुई है। जबकि अन्य देशों में प्रति व्यक्ति आय में तुलनात्मक रूप से बहुत ही कम वृद्धि हुई है। स्पष्ट है कि धनी देश अधिक धनी होते जा रहे हैं, परिणामस्वरूप आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही है। बढ़ती आर्थिक विषमता का एक कारण सतत् विकास की उपेक्षा है अतः सतत् विकास बढ़ती आर्थिक विषमता को कम करने के लिए आवश्यक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गॉव और शहर के विकास की असमानता –

वर्तमान व भविष्य में जीवन स्तर में सुधार हेतु सतत् विकास की आवश्यकता है। इस संबंध में एक तर्क यह है कि गॉव और शहर के विकास में असमानता है। गॉवों में जो संसाधन उपलब्ध हैं, उनका अति दोहन शहर के विकास हेतु किया जाता है। शहर के जीवन स्तर में सुधार के लिए गॉव की उपेक्षा होती है। इसे हम असंतुलित विकास कहेंगे। वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया के एक दशक बीतने के बाद शहर और गॉव के जीवन से जुड़े विकास के ऑकड़ों की तुलना करें तो यह स्पष्ट होता है कि गॉवों में कई अभाव और परेशानियां हैं। तुलनात्मक रूप से शहरों में समृद्धि बढ़ी है। जबकि देश की प्रगति के लिए गॉवों के विकास को महत्वपूर्ण समझा जाता है। गॉवों के लिए सिंचाई, ऊर्जा, सड़क निर्माण, पेयजल, आवास एवं संचार के क्षेत्रों में अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। ध्यान रखने की बात केवल यही है कि प्राकृतिक संतुलन बनाये रखते हुए ग्रामीण क्षेत्र का विकास होगा तो भविष्य में भी जीवन स्तर में सुधार होता रहेगा। अतः सतत् विकास के लिए ग्रामीण प्रबन्धन भी एक महत्वपूर्ण पहलू है।

ग्रामीण प्रबंधन एवं सतत् विकास –

गॉवों के बेहतर भविष्य के लिए नियोजित कार्यक्रम की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि हमारे देश के लगभग 5 लाख 80 हजार गॉवों में देश की दो तिहाई से अधिक जनसंख्या निवास करती है। हम यह भी जानते हैं कि देश की प्रगति के लिए अब भी कृषि, पशुपालन तथा अन्य ग्रामीण उद्योगों के प्रबन्धन हेतु प्रयासों की आवश्यकता है। सतत् विकास हेतु ग्रामीण प्रबन्धन से सम्बन्धित निम्न कार्य किये जा सकते हैं –

1. ग्रामीण क्षेत्रों की औद्योगिक ईकाइयों में मानव संसाधन, विपणन, सामान्य प्रबन्धन तथा वित्त जैसे प्रबन्धन के क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित करना।
2. कृषि भूमि का निरंतर विश्लेषण कर ग्रामीणों को आवश्यक सुझाव देते रहना।
3. पशुपालन तथा मत्स्य पालन जैसी संभावनाओं को बढ़ाना।
4. ग्रामीणों के लिए रोजगार के प्रभावी उपायों की खोज कर उनके क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर करना।
5. विकसित देशों के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का अध्ययन करके अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार सतत् विकास हेतु उन्हें अपनाये जा सकने का विश्लेषण करना।

पर्यावरण के खतरे एवं सतत् विकास –

समस्त विश्व को प्रभावित करने वाले पर्यावरण के खतरे सतत् विकास के महत्व की सार्थकता को प्रमाणित करते हैं। वर्तमान एवं भविष्य में जीवन स्तर में सुधार हेतु पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली गैंसों के उत्सर्जन में कमी करना आवश्यक है। हानिकारक गैसों के उत्सर्जन से पर्यावरण को अत्यधिक हानि होती है

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इन्हीं गैसों के उत्सर्जन का एक अन्य पहलू जनता के जीवन स्तर में गिरावट आया। वह समझौता को स्वीकार नहीं किया, जिससे अमेरिका की जनता के जीवन–स्तर में गिरावट आए। वह समझौता हानिकारक गैसों के उत्सर्जन को कम करने से संबंधित था। हानिकारक गैसों का उत्सर्जन अमेरिका में ही सबसे अधिक होता है। इससे पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, फलस्वरूप विश्वभर के मौसम में बदलाव आने लगे हैं। तात्पर्य यह है कि जिस देश में सबसे अधिक हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है, उसी देश की जनता का जीवन स्तर भी सबसे ऊँचा होता है। यह भी स्पष्ट है कि पर्यावरण को होने वाली क्षति की भरपाई जब तक नहीं होती है, तब तक भविष्य में जीवन स्तर में सुधार की बात न्यायसंगत नहीं लगती है। अतः पर्यावरण के खतरे को ध्यान में रखकर हानिकारक गैसों के उत्सर्जन को कम करना सतत् विकास के लिए आवश्यक है।

उत्पादन के स्थानीय स्त्रोत एवं सतत् विकास –

लोगों के जीवन स्तर में सुधार का सम्बन्ध उत्पादन के स्थानीय स्रोतों से भी है। स्थानीय उत्पादन के स्रोतों में हम स्थानीय संसाधनों को सम्मिलित करते हैं। हम अपने ही देश का उदाहरण लेकर देखें तो यह तथ्य उजागर होता है कि शहर का विकास गॉव के संसाधनों से होता है। गॉवों से कच्चा माल शहर में जाता है, गॉव के लोग रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करते हैं। फलस्वरूप आबादी का असंतुलन उत्पन्न होता है। श्रम की स्थानीय शक्ति का ह्रास होता है। उत्पादन के स्थानीय स्त्रोत भी कम हो जाते हैं इसी को हम परिस्थितिकीय असंतुलन के रूप में देख सकते हैं। उत्पादन के स्थानीय स्त्रोतों का पुनर्भरण होता रहे, आबादी का संतुलन बना रहे, इसी को सतत् विकास कहेंगे, इसी आधार पर वर्तमान व भविष्य में जीवन स्तर में सुधार होता रहेगा।

उत्पादन के स्थानीय स्त्रोत का दूसरा पहलू भी है। इस पहलू में हम उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पादन शक्तियों का उल्लेख कर सकते हैं। जैसे–कृषि पैदावार बढ़ाने के लिए उन्नत तकनीक (मशीनों), उन्नत बीज, सिंचाई के साधन इत्यादि वर्तमान में कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग होने लगा है, इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन तो बढ़ने लगा लेकिन पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ने लगा। कीटनाशकों के प्रयोग से वे जीव भी नष्ट होने लगे जो प्राकृतिक संतुलन हेतु योगदान करते हैं। प्राकृतिक रूप से संतुलित रहने वाला पारिस्थितिकी संतुलन गड़बड़ा गया। जैसे–तितलियों फूलों के परागकणों के स्थानान्तरण में अहम भूमिका निभाती है। परागकण से कृषि उत्पादन में स्वाभाविक वृद्धि होती है। अब स्थिति यह है कि कीटनाशकों के प्रयोग से तितलियॉ भी नष्ट होने लगीं तथा अनेक पौधे भी नष्ट होने लगे। इस प्रकार प्रकृति से छेड़छाड़ के प्रतिकूल परिणाम सामने आने लगे। इन परिस्थितियों से बचने का उपाय सतत् विकास ही है।

जीवन स्तर में सुधार की दशाएं –

सतत् विकास जीवन स्तर में सुधार हेतु आवश्यक हैं। इसके महत्व को हमने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है। अब हम उन दशाओं की चर्चा करेंगे जिनके आधार पर जीवन स्तर का मूल्यांकन किया जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक – यह एक पैमाना है, जिससे जीवन स्तर की दशा को समझ सकते हैं। इस पैमाने से पूर्व प्रतिव्यक्ति आय के आधार पर जीवन स्तर की दशा का मूल्यांकन किया जाता था। आर्थिक विकास के स्थान पर मानव विकास को मापना अधिक उपयुक्त समझा जाने लगा। मानव विकास को जीवन स्तर में सुधार का एक महत्वपूर्ण साधन स्वीकार किया। किसी भी देश के जीवन स्तर का मूल्यांकन तीन पहलुओं के आधार पर किया जाता है जीवित रहने की अवधि, ज्ञान एवं शिष्ट जीवन–स्तर।

संयुक्त राष्ट्र की पिछली रिपोर्ट (2005) के अनुसार हमारे देश ने तेज आर्थिक विकास की दर तो हासिल कर ली है, लेकिन आम व्यक्ति के जीवनस्तर में सुधार नहीं हुआ है। इस रिपोर्ट के अनुसार 177 देशों के अध्ययन में भारत 127 वें स्थान पर है। जीवित रहने की अवधि के आधार पर हमारे देश में जन्म लेने वाले एक हजार बच्चों में से लगभग 175 कम उम्र में ही मर जाता है। इसी प्रकार देश के कुल बच्चों में से आधे तो कुपोषण के शिकार हैं। ज्ञान की दृष्टि से 40 प्रतिशत बच्चे विद्यालय नहीं जाते हैं तथा जो बच्चे विद्यालय में अध्ययन के लिए जाते हैं, उनमें भी पॉचवी कक्षा से आगे पढ़ने वालों की संख्या आधी से कम रह जाती है। जीवन–स्तर के आधार पर वर्तमान में भी हमारे देश में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोग 25 से 30 प्रतिशत के बीच हैं।

सतत् विकास एवं भविष्य की संभावनाएँ –

एक समय, एक बूढ़ा व्यक्ति, अपने बगीचे में आम का पौधा लगा रहा था। उस समय उसकी पत्नी ने कहा कि जब यह आम का पौधा भविष्य में पेड़ बन कर फल देने लगेगा तब तक तो हम जीवित नहीं रहेंगे। इसलिए ऐसा पौधा लगाने से क्या लाभ है ? बूढ़े व्यक्ति ने अपनी पत्नी को उत्तर दिया कि हमने जो अब तक आम के फल खाये हैं वो भी तो हमारे पूर्वजों ने अपने जीवन काल में लगाये थे। मैं भी आने वाली पीढ़ी के लिए यह पौधा लगा रहा हूँ ताकि वो इसके फल खा सकें। इसे भविष्य की सोच कहेंगे।

अतः सतत् विकास, वह विकास है जो वर्तमान के आधार पर भविष्य के जीवन स्तर में सुधार ला सके। पारिस्थितिक संतुलन एवं पर्यावरण संरक्षण की सार्थकता टिकाऊ विकास पर आधारित है। विश्व में पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी तथा मानव की उत्पत्ति का निश्चित क्रम बना हुआ है। सभी आपसी ताल–मेल द्वारा अपनी जीवनचर्या पूर्ण करते हैं। प्रकृति के क्रम को जब भी तोड़ने का मानवीय प्रयास होता है, तब से ही असंतुलन की स्थिति बन जाती है। प्रकृति का क्रम निरंतर संतुलित बना रहे इस हेतु हम जितना दोहन करते हैं, उसकी क्षतिपूर्ति का प्रबंधन भी आवश्यक है। जैसे हम एक पेड़ धरती पर बड़ा करते हैं। वह पेड़ आकाश में बढ़ता है, जमीन से पानी खींचता है, यह पानी पत्तियों के माध्यम से वाष्पीकृत हो जाता है। इस प्रकार एक पेड़ तीन वास्तविकताओं में सामंजस्य स्थापित करता है – धरती, आकाश और पानी का संतुलन एक प्रतीकात्मक संतुलन है। पेड़ द्वारा क्षतिपूर्ति व्यवस्था को हम दूसरे तरीके से भी समझ सकते हैं। एक पेड़ आस–पास के ताप को सोख लेता है तथा छाया प्रदान करता है। कार्बन डाईऑक्साइड के बदले में जीवनदायी ऑक्सीजन छोड़ता है। एक पेड़ की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पत्तियाँ जानवरों के भोजन के रूप में प्रयोग की जाती है, फल भी प्राप्त होते हैं, पक्षियों एवं कीटों के लिए आवास उपलब्ध कराता है। पेड़ के सूखने के बाद भी उसका लकड़ी के रूप में उपयोग किया जाता है। सतत् विकास के लिए भविष्य की संभावना उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। हमें प्राकृतिक जंगलों का विनाश रोकना होगा। हम जितना दोहन करते हैं, उसके पुनर्भरण का प्रबन्ध भी करना होगा, तभी पारिस्थितिक संतुलन बना रहेगा।

सतत्/संधारित विकास की चुनौतियाँ

1. सामाजिक
2. राजनीतिक
3. आर्थिक चुनौतियाँ

सतत् विकास एवं चुनौती –

धरती पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की सीमा का ध्यान रखते हुए हम मानव कल्याण में सुधार को निरन्तर बनाये रखें। यह पर्यावरण विज्ञान का अहम प्रश्न है। इस प्रश्न का संभावित हल सतत् विकास है। सतत् विकास स्वयं एक चुनौती के रूप में 1987 में विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग (World commission on environment and development) की रिपोर्ट "Our common future" में प्रकट हुआ। इस रिपोर्ट के अनुसार विकास का अर्थ वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए कोई समझौता न किया जाए अर्थात् भविष्य की आवश्यकताओं को स्वीकारते हुए भविष्य हेतु संरक्षण की सोच के साथ वर्तमान में संसाधन का उपयोग करना।

चुनौती यह है कि निरन्तर विकास एवं जीवन स्तर में सुधार के लिए संसाधनों का दोहन भी निरन्तर बढ़ता है। अतः सतत् विकास की धारणा भी असंभव प्रतीत होती है। इसके दो प्रमुख कारण हैं –

(1) अनेक संसाधन अनव्यकरणीय है तथा

(2) हमारे अपशिष्ट को समाहित करने की जीवमण्डल की सीमित क्षमता।

इन्हीं दो प्रमुख कारणों से सतत् विकास के लिए चुनौतियाँ उत्पन्न होने लगी हैं। अतः सतत् विकास भी एक चुनौती के रूप में है।

सामाजिक धारणाएँ

अब हम सतत् विकास से संबंधित सामाजिक धारणाओं एवं उनके विभिन्न स्वरूपों का विवेचना करेंगे। इसके अंतर्गत उन स्थितियों का उल्लेख करेंगे जो सतत् विकास में सामाजिक दृष्टि से बाधक हैं तथा चुनौती के रूप में हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. पर्यावरण प्रदूषण एक सामाजिक समस्या – आधुनिक युग की तकनीकी से समाज में सुविधाएँ तो बढ़ी हैं लेकिन, सामाजिक जीवन और सामाजिक परिवेश पर अनेक प्रकार से नकारात्मक प्रभाव भी पड़ रहे हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से पर्यावरण प्रदूषण सतत् विकास के लिए एक बड़ी चुनौती है। इससे पारिस्थितिकी संतुलन तो बिगड़ ही रहा है, साथ में सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष भी प्रभावित हो रहा है। ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण जैसे अनेक प्रदूषण से सम्पूर्ण समाज ग्रसित है। बिगड़ते पर्यावरण के प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न कर सतत् विकास के महत्व को समझाना अपने आप में चुनौती भरा कार्य है। पर्यावरण संरक्षण में मानव संसाधन का समुचित उपयोग, हमारे देश के पर्यावरण प्रदूषण की दशा–दिशा, जनसंख्या व सामुदायिक पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करने के उपाय अभी तक भी चुनौती के रूप में है।

2. कार्य संस्कृति एवं सतत् विकास – सतत् विकास के लिए हमारे देश की कार्य संस्कृति को भी चुनौती माना जा सकता है। यहाँ कार्य संस्कृति से तात्पर्य यह है कि देश के विकास एवं संसाधन संरक्षण के प्रति हमारे दायित्व का सुचारू निर्वहन करना। वर्तमान आर्थिक दौर प्रतिस्पर्द्धा कार्य करने की क्षमता तथा कार्य करने के उत्साह का दौर है। यह आवश्यक है कि विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जाए, लेकिन पारिस्थितिकी संतुलन की उपेक्षा न हो। वैश्विक कार्य संस्कृति जीवन का मूलमंत्र बन रहा है। चुनौती यह है कि इस कार्य संस्कृति को पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियंत्रण के साथ जोड़ दिया जाए।

3. आर्थिक विकास और भूमण्डलीय अर्थतंत्र – सतत् विकास की विभिन्न चुनौतियों में आर्थिक विकास और भूमण्डलीकृत अर्थतंत्र भी महत्वपूर्ण है। हमारे देश की स्थिति से संबंधित तथ्य यह है कि गॉवों में निवास करने वाले 60–70 करोड़ लोगों का जीवन बहुत अभावों में है। नियमित आय के साधन कम हैं। सरकारी ऑकड़ों के अनुसार 26 करोड़ से भी अधिक लोग निर्धन हैं। देश के ऐसे लोगों की दशा सुधारना एक चुनौती है। इस दशा को सुधारने के लिए आर्थिक विकास की गति बढ़ाने के प्रयास हो रहे हैं। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित होकर देश को उभरते औद्योगिक देशें की श्रेणी में आना है। कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है। संसाधनों का भरपूर उपयोग करना है। इस संदर्भ में सतत् विकास की चुनौती भी स्पष्ट है। लोगों के अभावों को कम करने के लिए संसाधन जुटाना और भविष्य के लिए संसाधनों को सुरक्षित रखना चुनौती भरा काम है।

4. बढ़ती असमानता – विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश में असमानता निरंतर बढ़ रही है। बढ़ती असमानता को भी सतत् विकास की चुनौती की एक सामाजिक धारणा कह सकते हैं। इस रिपोर्ट में उत्तरप्रदेश के पालनपुर गॉव को एकल अध्ययन के रूप में सम्मिलित किया है। असमानता का एक आधार भारत की जाति व्यवस्था को बताया है तथा यह दर्शाया है कि ग्रामीण भारत में अनुसूचित जाति में गतिशीलता के अवसर कम होते हैं। लिंग आधारित असमानता भी एक उल्लेखनीय तथ्य है। बढ़ती असमानता को कम करना और सतत् विकास के प्रयास करना सापेक्ष समस्या है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. जलाशयों में बढ़ती गन्दगी एवं अपशिष्ट – जलाशय को पवित्र समझना एक परम्परागत सामाजिक मान्यता है। जलाशयों के जल को जलीय जीव प्राकृतिक रूप से शुद्ध रख सकते हैं। वास्तविकता यह है जलाशयों का जल भी प्रदूषित हो रहा है, साथ ही जल में रहने वाले जीव भी संकट में हैं। अपने देश की नदियों की बात करें तो ज्ञात होता है कि नदियों का जल सभी जीवों के लिए उपयोगी रहा है। नदियों के किनारे सभ्यता और शहरों का विकास हुआ है। नदियों से लोगों को आजीविका प्राप्त होती है। इस प्रकार नदियों की उल्लेखनीय भूमिका रही है। दूसरा पक्ष यह भी है कि नदियों का जल जब प्रदूषित होने लगा तो कुछ समय तक तो स्वतः शुद्धिकरण की प्रक्रिया चलती रही। जैसे– जैसे कूड़ा–करकट, औद्योगिक अपशिष्ट नदियों में असीमित मात्रा में प्रवाहित होने लगे, वैसे–वैसे स्वतः शुद्धीकरण की प्रक्रिया नष्ट होती गई। अब नदियों में हानिकारक अपशिष्ट की भरमार है। परिणाम यह हो रहा है जो जलीय जीव जल को शुद्ध करने में सहायक होते हैं वो भी नष्ट हो गये। नदियों का जल भी इतना प्रदूषित हो गया कि बिना रासायनिक शुद्धीकरण के इसका उपयोग हानिकारक है। सतत् विकास के लिए इसे एक गंभीर चुनौती ही कहा जाएगा।

6. पर्यावरणीय शिक्षा का अभाव – हमें इस सामाजिक धारणा को भी समझना है कि पर्यावरणीय शिक्षा का अभाव भी सतत् विकास के लिए चुनौती है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि हम वो पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान करें, जिससे प्राकृतिक संसाधनों को बुद्धिमत्तापूर्ण दोहन का ज्ञान प्राप्त हो सके। पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को मिलाकर समझ सकें। स्थानीय पर्यावरण एवं स्थानीय वनों के बारे में तथ्यात्मक जानकारी दी जा सके। स्थानीय पेड़–पौधों, प्राणियों की प्रजातियों एवं उनके लाभ का ज्ञान दे सकें। पर्यावरणीय शिक्षा से पर्यावरण से जुड़े रहने की धारणा को विकसित करना भी एक चुनौती है।

राजनीतिक धारणाएँ

सतत् विकास के लाभ सम्पूर्ण मानव समाज तक पहुँचाने चाहिए। केवल साधन सम्पन्न समूहों तक ही ये लाभ सीमित न रहे जाये। राजनीतिक धारणों का विवेचन इस बात को केन्द्र में रख कर किया जा रहा है कि संसार में अनेक लोग अभावों में रहते हुए अस्वस्थ दशाओं में जीवन व्यतीत करते हैं। जनसंख्या विशेषज्ञ यह मानते हैं कि सन् 2050 तक विश्व की लगभग दो तिहाई आबादी नगरों में रहने लगेगी। नगर अपने आस–पास के पर्यावरण को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि नगर सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के शक्तिशाली अभिकरण हैं। नगर और गॉव की आबादी सतत् विकास की दिशा में किस प्रकार प्रभावित होगी, इसका निर्धारण राजनीतिक इच्छा शक्ति पर निर्भर है। सतत् विकास एवं राजनीतिक धारणा के अंतर्गत हम निम्न पक्षों के आधार पर चर्चा करेंगे –

(अ) विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों की भूमिका – वैज्ञानिकों का दायित्व है कि वे मानव कल्याण को बेहतर बनाने के लिए नयी खोज करते रहें। इसी प्रकार राजनेताओं का दायित्व है कि वे वैज्ञानिकों द्वारा दी गई चेतावनियों को ध्यान में रखते हुए नीतियॉ बनायें एवं विश्वकल्याण हेतु सर्वमान्य समझौतों को क्रियान्वित करवायें। पर्यावरण को और अधिक नुकसान से बचाने को उपाय, सतत् विकास की संकल्पना, विश्व

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

स्तरीय चिंतन से विकसित हुई। इसी कारण विश्व के आठ प्रमुख देशों (जी–8) का समूह सन 1998 में अस्तित्व में आया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के इस समुदाय का प्रारंभिक उद्देश्य विश्वस्तरीय आर्थिक एवं राजनीतिक मुद्दों पर विवेचना कर समस्या का समाधान करना है। सतत् विकास की चुनौती भी एक वैश्विक मुद्दा है। इसका सीधा सम्बन्ध संसाधन, संरक्षण एवं भविष्य के लिए संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने से हैं।

वैज्ञानिकों की चेतावनी राजनीतिक धारणाऍ एवं सतत विकास की चुनौती को एक घटना के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं। यह घटना ''ग्लोबल वार्मिंग'' से सम्बन्ध रखती हैं। ब्रिटेन की रॉयल सोसायटी की रिपोर्ट के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के कारण महासागरों में अम्लीकरण हो रहा है। हजारों समुद्री प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। कारण यह है कि ग्रीन हाऊस गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड का अत्यधिक मात्रा में उत्सर्जन कार्बन डाईऑक्साइड के अत्यधिक उत्सर्जन को रोकने के लिए निर्णायक और महत्वपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता महसूस की गई । ऐसा निर्णय विश्व नेता ही ले सकते हैं। विश्व के आठ विकसित देशों की बैठक हुई । इस बैठक का मुख्य मुद्दा 'पर्यावरण का बढ़ता खतरा' ही था । पर्यावरण के मुद्दे पर जी–8 के सदस्य देशों में मतभेद हो गया । अमेरिका ने हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कमी करने की बात को अस्वीकार किया । राजनीतिक दृष्टि से हम इसे पर्यावरण के खतरे की उपेक्षा कह सकते हैं। भविष्य की अनदेखी करते हुए बड़े देश अपना दबाव बनाते हैं। इस घटना से सतत् विकास की चुनौती की राजनीतिक धारणा की पुष्टि होती है।

(ब) वन्य जीव सुरक्षा – सरकार की नीतियॉ सतत विकास की चुनौती का हल ढूँढने के लिए बनाई जाती हैं। हमने वैश्विक राजनीतिक धारणा के पक्ष को रखा । अब हम अपने ही देश के सम्बन्ध में वन्य जीव सुरक्षा हेतु राजनीतिक धारणा का विवेचना करेंगे। यह विवेचन भी एक घटना पर केन्द्रित है । यह घटना राष्ट्रीय पशु बाघ संकटग्रस्त दशा के तथ्यात्मक पहलुओं से सम्बन्धित है।

पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में समस्त वन्य जीवों की उल्लेखनीय भूमिका है। जब इन वन्य जीवों का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो जाता है, पर्यावरण एवं प्राकृतिक संतुलन भी बिगड़ने लगता है। हमारे देश में राष्ट्रीय पशु बाघ को बचाये रखने के लिए 28 बाघ परियोजनाएं चल रही हैं। ये परियोजनाऍ राजनीतिक धारणा को दर्शाती हैं तथा सरकार की सतत विकास रणनीति का एक हिस्सा है।

प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने देश के राष्ट्रीय पशु बाघ के खतरे के बारे में बहुत कुछ छापा और दिखाया । सरकारी ऑकड़ें पिछले तीन वर्षों में 200 बाघों के मारे जाने की बात कहते हैं। किसी समय पूरे विश्व में सबसे अधिक बाघ हमारे देश में ही थें स्वतंत्रता के समय लगभग 40 हजार बाघ थे और सन् 2005 तक इनकी संख्या लगभग 2000 से 2500 तक बताई जाती है। कितनी बड़ी चुनौती है वन्य जीव संरक्षण की । इसे हम राजनीतिक धारणा के सन्दर्भ में ही रखेंगे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(स) जल संरक्षण की चुनौतियॉं – पर्यावरणविदों का मानना है कि जल संरक्षण के उपायों को नीतिगत तरीकों से अपनाया जाये तो टिकाऊ विकास की चुनौती का सामना किया जा सकता है। राजनीतिक धारणाएँ बदलती रहती हैं और नीतियों में भी परिवर्तन आता रहता है। कभी जल संरक्षण हेतु बड़े–बड़े बॉंधों के निर्माण की योजना लागू होती है और कभी स्थानीय तरीकों जैसे– बावड़ी, एनीकट, तालाब आदि के निर्माण पर ध्यान केन्द्रित होता है । लाभ तो जल संरक्षण के दोनों उपायों से है। स्थानीय तरीके और बड़े बॉंध एक दूसरे के पूरक हैं । चुनौती का प्रश्न यह है कि बड़े बांध से होने वाले अतिरिक्त लाभ के साथ क्या नुकसान हो सकते हैं। बड़े बांधों की कमियों को खोजना और उनका समाधान खोजना एक चुनौती है इसी के साथ स्थानीय तरीकों से जल संरक्षण की योजना के लाभों को समझ कर इन तरीकों को प्रोत्साहित भी करना है।

सतत् विकास के अन्य पहलू

देश के सामने चुनौतियॉं कई प्रकार की हैं। हम तो कुछ पक्षों को आधार बना कर राजनीतिक धारणा की बात कर सकते हैं। गरीबी, पिछड़ापन, साक्षरता एवं स्वास्थ्य जैसे पक्ष भी टिकाऊ विकास एवं राजनीतिक धारणा से सम्बन्धित चुनौतियॉं हैं। हमारे देश में निर्धनता मिटाने के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम, गरीबी उन्मूलन, अन्त्योदय योजना, रोजगार गारंटी जैसी आदर्श योजनाएं चल रही हैं। सर्वशिक्षा अभियान, सबके लिए स्वास्थ्य जैसी योजनाएँ भी आदर्श हैं। इतना सबके होते हुए भी हम अपने देशवासियों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने की चुनौती को स्वीकार करते हैं। कुछ तथ्य इस चुनौती को प्रमाणित करते हैं। जैसे हमारे देश में 80 प्रतिशत बीमारियां अशुद्ध पानी से होती हैं। लगभग 50 प्रतिशत आबादी को स्वच्छ शौचालय उपलब्ध नहीं हैं। कुपोषण के शिकार बच्चों की संख्या भी सर्वाधिक है। निर्धनता के कारण माता–पिता अपने बच्चों से मजदूरी करवाने के लिए विवश हैं। इस प्रकार की स्थितियॉं राजनीतिक धारणाओं से जुड़ी टिकाऊ विकास की चुनौतियॉं हैं।

आर्थिक धारणाएँ

आर्थिक विकास की धारणा के अनेक नकारात्मक परिणाम सामने आये। उन्हीं परिणामों से सतत विकास को भविष्य के लिए उपयुक्त माना गया है। अतः आर्थिक धारणाएँ सतत् विकास के लिए चुनौती हैं। इस विषय पर चर्चा के लिए हम कुछ बिन्दुओं को आधार बना सकते हैं। जैसे पारिस्थितिक संरक्षण ही आर्थिक सुरक्षा है, प्राकृतिक संसाधन बाजार की वस्तु बन गये हैं, तकनीकी विकास से आर्थिक विकास लेकिन सतत् विकास के लिए चुनौती है आदि ।

इन्हीं बिन्दुओं का विश्लेषण निम्न प्रकार से है –

1.पारिस्थितिकीय संतुलन ही आर्थिक सुरक्षाः– संसाधन सीमित हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ संसाधनों का उपयोग बढ़ता है। संसाधनों की सीमितता से जीवन स्तर में गिरावट आती है। प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। बाजार में वस्तुओं को स्वतंत्र रूप से बेचा जाता है और खरीदने की स्वतंत्रता होती है। ध्यान देने की बात है कि जो वस्तु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है उसकी कीमत उसी आधार पर निर्धारित की जाती है। जब वस्तु सीमित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मात्रा में उपलब्ध है, मॉग अधिक है तो उसकी कीमत बढ़ जाती है। यह अर्थशास्त्र का एक सरल सिद्धांत है । इसी धारणा के आधार पर हम पारिस्थितिकीय संतुलन की आर्थिक धारणा को भी समझ सकते हैं। जब जनसंख्या वृद्धि दर आदर्श हो, संसाधनों का दोहन सीमित हो तथा संसाधन पुनर्भरण का प्रबंधन भी हो तो आर्थिक सुरक्षा बनी रहती है। वस्तु ऐसी नहीं है। फलस्वरूप पिछले दशकों में पारिस्थितिक अर्थशास्त्र का विकास हुआ।

पारिस्थितिक अर्थशास्त्र के अनुसार पारिस्थितिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये संसाधनों का पुनः चक्रण आवश्यक है । इसमें प्रकृति की क्षमता को भी महत्व दिया जाता है तथा पारिस्थितिक तंत्र की निरन्तरता मानवीय आर्थिकी और संस्कृति के संदर्भ में कार्य करे, इसका ध्यान रखा जाता है। प्रकृति में एक प्रजाति का अपशिष्ट दूसरी प्रजाति का भोजन होता है। इस प्रकार प्राकृतिक दृष्टिकोण से कुछ भी अपशिष्ट नहीं होता है। चुनौती यह है कि ऐसी आर्थिकी विकसित की जावे जिसमें पदार्थों का पुनर्चक्रण एवं पुनर्उपयोग भी निरन्तर बना रहे।

पारिस्थितिक अर्थशास्त्र में भी नव्यकरणीय एवं अ–नव्यकरणीय संसाधनों में अंतर को ध्यान में रखते हुए पुनः चक्रण के उपाय बताये हैं। पर्यावरणीय साहित्य में अनेक चेतावनियाँ दी गई हैं कि अनव्यकरणीय संसाधनों का अत्यधिक ह्रास का परिणाम संकट, दुर्गति और सामाजिक विनाश के रूप में उत्पन्न होगा। अनव्यकरणीय संसाधनों के दोहन की दर को नियन्त्रित करने की चुनौती भी हमारे समक्ष है।

अपने देश के समक्ष जैव– विविधता को लेकर जो खतरे हैं, उससे निपटने के लिए पश्चिम देशां के प्रारूप उपयोगी नहीं हैं। हमें तो हमारे पारिस्थितिक तंत्र एवं आर्थिक सुरक्षा के अनुसार टिकाऊ विकास के प्रारूप का निर्माण करना होगा।

2. जंगली जीव व्यापार – जंगली जीवों के शिकार की घटना की चर्चा हमने राजनीतिक धारणा के पहलू के संदर्भ में की है। यहॉ पर उस चुनौती पर चर्चा करेंगे जिसका सम्बन्ध जंगली जीव व्यापार (Wild life trade) से है। म्यांमार–थाइलैण्ड की सीमा पर एक शहर "गोल्डनसिटी" के नाम से जाना जाता है। यह शहर वन्य जीव सामग्री की तस्करीका केन्द्र है रणथम्भौर के बॉधों की खालें, हड्डियां इस शहर में लगने वाले बाजार में आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। हाथी दॉत की खरीद–फरोख्त जयपुर के बाजारों में भी होती है। पहाड़ों से जंगली पक्षियों को पकड़ा जाता है और बेचा जाता है। छिपकली और गिरगिट की रीढ़ तोड़ कर बाजारों में औषधि के रूप में बेचा जाता है। रीछ को पकड़कर मनोरंजन का साधन बनाया जाता है।

वन्य जीवों के शरीर के अंगों से कई उत्पाद अवैध तरीके से बनाये जाते हैं। शहरों में इस प्रकार के उत्पादों के लिए विशेष प्रकार के बाजार भी विकसित हो चुके हैं। जंगली जीवों के शिकार के परिणामस्वरूप इस व्यवसाय में बढ़ोतरी हुई है लेकिन, इसकी कीमत टिकाऊ विकास की चुनौती के रूप में देखी जा सकती है।

3. ई–कचरा और पर्यावरण की तबाही – इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों की ऐसी श्रृंखला जिसे काम की दृष्टि से अनुपयोगी करार दे दिया जाता है,ई–कचरा अथवा ई–वेस्ट कहलाती है। इसके अन्तर्गत उन वस्तुओं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

को सम्मिलित किया जाता है जो प्रतिदिन घरेलू उपयोग में लाई जाती हैं। जैसे –कम्प्यूटर, टीवी, टेलीफोन, लैपटॉप, एयर कंडीशनर, वीडियो गेम,खिलौने, फोटो स्टेट मशीन, माइक्रोवेव ओवन जैसी कई वस्तुएँ हैं। इन उत्पादों में खतरनाक तत्व और रसायन पाये जाते हैं। इनसे पर्यावरण को नुकसान होता है, इसलिए इन्हें इलेक्ट्रानिक कचरे की श्रेणी में रखा जाता है। वैसे तो पर्यावरण मंत्रालय और राज्य प्रदूषण बोर्ड से अनुमति लेकर ई–वेस्ट का पुनर्चक्रण किया जा सकता है। लेकिन तथ्य यह है कि पुनर्चक्रण के स्थान पर ई–वेस्ट की खरीद फरोख्त ही हो रही है। ऐसे व्यापार का सीधा प्रभाव पर्यावरण पर पड़ रहा है। खतरनाक रसायन जल, थल और वायु को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दूषित कर रहे हैं। इस प्रकार के खतरे सतत् विकास के लिए चुनौती है।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. संधारित/सतत् विकास का क्या आशय है ?
2. सामाजिक विकास से क्या तात्पर्य है ?
3. उपभोक्ता शब्दावली का जन्म क्यों हुआ ?
4. सतत् विकास की अवधारणा किन कारणों से असम्भव प्रतीत होती है ?
5. आवश्यकता और स्वार्थ में अन्तर बताईए।
6. उत्पादन के स्थानीय स्त्रोतों से आप क्या समझते हैं ?
7. पर्यावरण संरक्षण के लिए किन्हीं दो प्रमुख चुनौतियों का नाम दीजिए।
8. वन एवं वन्य जीवों के सतत् उपभोग से क्या तात्पर्य है ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विकास के आर्थिक दृष्टिकोण की विशेषताएँ समझाईए।
2. सीमित संसाधनों के निरंतर उपभोग के परिणामों की विवेचना कीजिए।
4. उच्च जीवनस्तर और समृद्ध पर्यावरण के बीच सह–संबंध बताइए।
5. पक्षियों के अस्तित्व पर खतरे के चार प्रमुख कारण कौन–से हैं ?
6. ''ग्लोबल वार्मिंग '' सतत् विकास में बाधक है, तर्क दीजिए।
7. जंगली जीव व्यापार को सतत् विकास की चुनौती के रूप में समझाइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास के विभिन्न अवधारणाओं की विवेचना कीजिए।
2. सतत् विकास के पक्ष में अपना तर्क दीजिए।
3. सतत् उपभोग का अर्थ क्या है? सतत् उपभोग एवं पर्यावरण के बीच सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
4. सतत् विकास एवं भविष्य के संभावनाओं की विवेचना कीजिए।
5. ग्रामीण प्रबन्धन और सतत् विकास की आवश्यकता का विश्लेषण कीजिए।
6. विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों की सतत् विकास के लिए भूमिका की समीक्षा कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 7

संधारित/सतत् विकास के मददगार आधार

पाठ्यक्रम –
- राजनीतिक एवं प्रशासनिक संकल्प।
- गतिमान एवं अनाग्राही (फ्लोक्सिवल) नीतियॉ, सटीक तकनीकें।
- दक्ष मानव शक्ति का विकास।
- व्यक्ति एवं समुदाय की भूमिका।
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सियॉ (शासकीय एवं अशासकीय) की भूमिका।

राजनीतिक एवं प्रशासकीय संकल्प

राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति के आयाम –

पर्यावरण संरक्षण एवं भविष्य को सुखद बनाना एक चुनौती। इस चुनौती से निपटने के लिए सतत् विकास की बात निरंतर दोहराई गई है। ऐसी चुनौती का सामना विश्व एवं राष्ट्र स्तरीय राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति का सबसे अहम् पक्ष है। मुद्दा चाहे हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कमी करने का हो अथवा प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग से आम व्यक्ति के जीवन–स्तर को सुधारने का हो, सभी मुद्दों पर विश्व स्तर के राजनीतिक मंच में चर्चा होती है। जब किसी मुद्दे पर आम सहमति बन जाती है तो उसकी क्रियान्विति निर्भर करता है– राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति पर। आवश्यकता होती है दृढ़ प्रयासों और ठोस कार्य योजना की। इसी क्रम में कुछ प्रासंगिक आयामों की बात करेंगे।

1. इच्छा शक्ति की कल्पना और वास्तविकता– राजनीतिक एवं प्रशासकीय दृष्टिकोण किसी भी कार्य को क्रियान्वित करने का ठोस आधार होता है। यह सफल तभी हो सकता है, जब क्रियान्वित करने की इच्छा शक्ति भी प्रबल हो, साथ ही वास्तविकता से भी इसका सरोकार हो इसका तात्पर्य यह है कि राजकीय एवं प्रशासकीय स्तर पर पहले एक विचार रखा जाता है। जिसे हम एक कल्पना कहते हैं, अथवा कोई सपना कह सकते हैं। इस सपने को साकार करने के लिए दृढ़ प्रयासों और ठोस कार्य योजना की आवश्यकता होती है। सतत् विकास को हम एक कल्पना कहेंगे। इसे साकार करने के लिए दृढ़ प्रयास और ठोस कार्य योजना इसकी वास्तविकता होगी। इसका परिणाम सतत् विकास के रूप में होगा।

एक उदाहरण द्वारा इस बिन्दु के महत्व को देख सकते हैं। हमारे देश को सन् 2025 तक विकसित देश बनाने का एक विचार है। इसे साकार करने के लिए दृढ़ प्रयास और कार्य योजना का एक अहम पहलू है। वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए दृढ़ इच्छा शक्ति के आधार पर प्रयास की आवश्यकता है। वास्तविकता यह है कि यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार भारत में स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों की संख्या सबसे अधिक है। सरकार ने इस वास्तविकता के अनुसार सन 2015 तक सभी को स्कूल भेजने की इच्छा शक्ति को प्रकट किया है। ऐसी वास्तविकता संसाधनों की उपलब्धता और उनके दोहन की है, ऐसी ही वास्तविकता पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारकों की है, वास्तविकता यह भी है कि आम व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार के लिए पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहे। निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि राजनीतिक एवं प्रशासकीय इच्छा शक्ति वास्तविकता के अनुसार सपनों को साकार करें तो सतत् विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना भी संभव होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.पर्यावरण सुरक्षा – वन क्षेत्रों का निरंतर सिमटना तथा पर्यावरण के प्रति जनचेतना उत्पन्न करना भी राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति का एक आयाम है। विश्व स्तरीय राष्ट्र सम्मेलनों में पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियंत्रण के उपायों पर चर्चा होती है, लेकिन आम सहमति अपने राष्ट्र के नागरिकों के जीवन स्तर को ध्यान में रखते हुए होती है। आम सहमति के निर्णय राजनीतिक इच्छा शक्ति के अनुसार क्रियान्वित होते हैं। वनों में वृक्षों का कम होते रहना, वन्य प्राणियों की अनेक प्रजातियों का लुप्त होना, शेष बचे वन्य प्राणियों का जीवन खतरे में पड़ना यह दर्शाते हैं कि पर्यावरण के प्रति उदासीनता भी बढ़ी है। साथ ही जब राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति उत्पन्न हुई तो सरकार व प्रशासन ने सतत् विकास के प्रयास भी प्रारंभ किए। छत्तीसगढ़ में भी वन्य जीवों के संरक्षण व संवर्द्धन के प्रयास हुए हैं। अनेक स्थानों पर पार्क, अभ्यारण्य व उद्योग विकसित किये हैं। पर्यावरण संरक्षण के साथ वन्य जीवों की सुरक्षा के प्रति संवेदना भी बढ़ी है। यह सब राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति को प्रकट करता है। सतत् विकास का आधार भी इसी को कहा जाता है।

राष्ट्रीय वन्य–जीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो– राजनीतिक व प्रशासकीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के जो भी प्रयास हैं, उन्हें सतत् विकास का आधार बता रहे हैं। केन्द्र व राज्य सरकार के पर्यावरण विभाग योजना बनाते हैं, उन्हें क्रियान्वित करते हैं। राष्ट्रीय वन्य–जीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो एक प्रशासकीय संगठन है। इस संगठन में सी.बी.आई. पुलिस, सीमा शुल्क, राजस्व, इन्टेलीजेन्स तथा पेरा– मिलिट्री जैसी एजेंसियों से संबंधित व्यक्ति होंगे। इस ब्यूरो का उद्देश्य वैध व्यापार की नीतियों को देखना, प्रशिक्षण एवं बाध्यता, इन्टरपोल तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग करना, बड़ी घटनाओं की जांच करना तथा अपराध का डेटाबेस तैयार करना आदि है। पर्यावरण व वन्य जीव संरक्षण सतत् विकास की संकल्पना का सकारात्मक पक्ष है। इनकी न्यायोचित क्रियान्विति के लिए इस प्रकार के प्रशासकीय संगठनों के निर्माण की आवश्यकता है। राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छा शक्ति के बिना इसका गठन असंभव है।

लचीली नीतियॉ

एक नीति, एक नियम अथवा निर्णय है जो किसी समस्या के समाधान से संबंधित होती है। यह एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के कार्य करने हेतु व्यक्ति स्तर पर भी बनाई जाती है तथा सामाजिक समस्याओं एवं राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु राष्ट्रीय स्तर पर तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बनाई जाती है। हम यहॉ पर पर्यावरण से संबंधित नीति की विवेचना करेंगे। इसी क्रम में वैधानिक प्रावधानों एवं पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की चर्चा भी करेंगे।

नीतियों में लचीलापन एवं गतिशीलता भी उल्लेखनीय बात है। गतिशीलता एवं लचीलेपन को हम समय स्थिति के अनुसार समायोजन के रूप में समझ सकते हैं। यह नीति चक्र के नाम से जाना जाता है। इस चक्र की प्रक्रिया का प्रारंभिक स्तर किसी समस्या के प्रकट होने से प्रारंभ होता है। नीति चक्र इसकी गतिशीलता एवं इसके लचीलेपन को निम्न बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. पर्यावरणीय समस्या उत्पन्न होना
2. समस्या से प्रभावित समूह द्वारा मुद्दा बनाना
3. प्रभावित समूह द्वारा प्रस्ताव तैयार करना
4. प्रस्ताव के पक्ष में समर्थन जुटाना प्रचार–प्रसार करना
5. नियम अथवा कानून बनाना
6. नियम/कानून को क्रियान्वित करना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

7. नीतिगत निर्णयों के परिणामों का मूल्यांकन करना
8. संशोधन, परिवर्तन के अनुसार सुझाव देना
9. सुझावों के अनुसार पुनः समस्या को प्रस्तुत करना।

पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर जो नीतियॉं निर्धारित होती हैं, उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध सतत् विकास से होता है। जब से पर्यावरण को नुकसान होने लगा तभी से पर्यावरण संरक्षण का चिंतन प्रारंभ हुआ। इसी चिन्तन के अनुसार पर्यावरण नीति चक्र एक प्रक्रिया के रूप में विकसित हुआ।

(1) राष्ट्रीय पर्यावरण नीति – पर्यावरण नीति की आवश्यकता क्यों पड़ी। इस संबंध में समस्याओं को निम्न बिन्दुओं के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. वन विनाश
2. भू–स्खलन
3. मरूस्थलीकरण
4. ओजोन परत ह्रास
5. अम्लीय वर्षा
6. ग्लोबल वार्मिंग
7. जल स्त्रोत का सूखना व पुनः चक्रण
8. झीलों व तालाबों का प्रदूषण
9. मौसम परिवर्तन आदि।

इन सभी समस्याओं के समाधान हेतु पर्यावरण नीति का निर्धारण किया गया। इस नीति के अंतर्गत पर्यावरण से संबंधित शासकीय नियमों एवं नियामकों को सम्मिलित किया गया। इन्हें सरकार द्वारा लागू करने के प्रावधान का उल्लेख भी पर्यावरण नीति में है।

देश के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय एवं भारत सरकार ने सन् 1987 में पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन से संबंधित निर्देश प्रकाशित किये। इसके अनुसार किसी भी वृहद् अर्थात लघु विकास परियोजना को प्रारंभ करने से पूर्व पर्यावरण एवं वन मंत्रालय से स्वीकृति अनिवार्य है। इसके साथ एक सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन भी जोड़ा गया है। अतः कोई भी विकास परियोजना इस मंत्रालय की स्वीकृति से ही प्रारंभ की जा सकती है।

उपयुक्त प्रौद्योगिकी एवं क्रियाविधि के स्वरूप

सतत् विकास की संभावना को सशक्त बनाने की दिशा में तीसरे आधार की विवेचना करेंगे। इसके अंतर्गत हमने सतत् विकास को बढ़ावा देने वाली उपयुक्त प्रौद्योगिकी भी क्रियाविधि के विभिन्न स्वरूपों को सम्मिलित किया है।

सतत् विकास का आधार ऊर्जा भी है। कारण यह कि सभी नागरिकों को हमेशा ऊर्जा की आपूर्ति सुनिश्चित करना आवश्यक है। ऊर्जा उत्पादन बढ़ाना, ऊर्जा को सुरक्षित रखना, देश के लिए ऊर्जा क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्त करना कहा जा सकता है। हमारे देश के राष्ट्रपति ने भी राष्ट्र के सम्मुख वर्ष 2030 तक 'ऊर्जा स्वतंत्रता' हासिल करने का एजेंडा रखा है।

ऊर्जा उत्पादन की निरंतरता जिस प्रौद्योगिकी से भविष्य में बनी रहेगी उसके अंतर्गत–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से परमाणु ऊर्जा बढ़ाना
2. जल और तापीय विद्युत के उपयोग को अधिकतम करना
3. जेट्रोफा (रतनजोत) जैसे पौधे के माध्यम से जैव ईंधन उत्पादन बढ़ाना
4. अक्षय ऊर्जा स्त्रोतों जैसे–पवन, सौर और जैव ऊर्जा के दोहन की योजना

आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) बायोगैस प्रौद्योगिकी – ऊर्जा के साधन घट रहे हैं तथा जनसंख्या बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, उन्नत चूल्हे आदि को अपनाने संबंधी प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना आवश्यक है। इन साधनों में बायोगैस एक ग्रामीण प्रौद्योगिकी है। यह नव विकसित ऊर्जा के साधनों का एक विकल्प भी है। बायोगैस प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए पादप एवं पशुओं के मलमूत्र का प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में पादप एवं पशुओं के मल मूत्र दो प्रकार के संयंत्रों द्वारा बायोगैस के रूप में विधिपूर्वक संग्रहित किया जाता है।

1. तैरते गैस होल्डर/इसे फ्लोटिंग ड्रमनुमा बायोगैस संयंत्र भी कहा जाता है।
2. स्थिर गुंबदनुमा/ इसे फिक्स्ड डोमवाला बायोगैस संयंत्र भी कहा जाता है।

बायोगैस प्रौद्योगिकी से सतत् विकास की संभावना प्रबल होती है इस प्रौद्योगिकी से निम्न लाभ हैं –

1. इससे स्वच्छ घरेलू ईंधन प्राप्त होता है।
2. बायोगैस लेम्प से प्रकाश व्यवस्था की जाती है।
3. बायोगैस से जनरेटर चला कर विद्युत उत्पादन भी किया जा सकता है।
4. बायोगैस प्रौद्योगिकी द्वारा डीजल इंजन चला कर चारा काटने और पम्प चलाने का कार्य किया जा सकता है।
5. बायोगैस संयंत्र के निवास द्वार से अपशिष्ट के रूप में खाद प्राप्त की जाती है। इस खाद के प्रयोग से हानिकारक जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं।
6. गॉवों में जलाऊ लकड़ी के उपभोग में कमी आती है तथा आस–पास के जंगलों के दोहन से बचा जा सकता है।

तैरते गैस होल्डर (फ्लोटिंग ड्रमनुमा) बायोगैस संयंत्र

(3) आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं स्वदेशी अर्थव्यवस्था – आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं नई तकनीक से स्वदेशी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा है। अभी हमने बायोगैस संयंत्र की चर्चा की। इस प्रौद्योगिकी से ऊर्जा उत्पादन महॅगा पड़ सकता है। इसलिए नेशनल ग्रिड बना कर ऊर्जा उत्पादन किया जाता है। नहर, टेलिफोन, यातायात के साधन आज की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए स्वदेशी अर्थव्यवस्था को अपना कर सतत् विकास में योगदान किया जा सकता है। आधुनिक तकनीक को अपनाते हुए इनका उपयोग इस प्रकार हो कि श्रम की मॉग बढ़े तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो अर्थात् जिन क्षेत्रों में आधुनिक प्रौद्योगिकी से रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं, उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके साथ जिस प्रौद्योगिकी से पारिस्थितिक संतुलन बना रहे उसी को अपनाना चाहिए।

(4) भारतीय प्रौद्योगिकी का विकास – सतत् विकास के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी का विकास ही उपयुक्त प्रौद्योगिकी कहा जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हमारे देश के वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ने उल्लेखनीय उपलब्धियॉ अर्जित की हैं। स्वदेशी प्रौद्योगिकी विकसित करने का कार्य अभी तीव्र गति से नहीं हो पाया है। जिस प्रकार हमने परमाणु ऊर्जा, अंतरिक्ष विज्ञान, पेट्रो–रसायन, रासायनिक खाद, धातुओं और मशीन के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है, ऐसी सफलता स्वदेशी प्रौद्योगिकी के विकास व अनुसंधान के क्षेत्र में नहीं प्राप्त हो पाई है। इसका कारण यह है कि हमारे देश के निवेशक और उद्यमी अनुसंधान व विकास के द्वारा स्वदेशी प्रौद्योगिकी को विकसित करने के स्थान पर आयातित प्रौद्योगिकी को अपना लेते हैं। जब आयातित प्रौद्योगिकी को अपनाते हैं तो एक समस्या उस प्रौद्योगिकी को अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार अनुकूल बनाने की भी होती है। अपने वित्तीय संसाधनों और मानव श्रम शक्ति का अधिकतम उपयोग करने के लिए यह आवश्यक भी है। इसके लिए अनुसंधान व विकास के कार्य को कठिन परिश्रम के साथ करना होता है। तभी उस आयातित प्रौद्योगिकी को स्वदेशी प्रौद्योगिकी में परिवर्तित किया जा सकता है। आज भी सतत् विकास के लिए आवश्यक है कि एक तरफ हम आयातित तकनीक व उपकरणों का कुशलतापूर्वक उपयोग करें साथ ही स्वदेशी तकनीक को विकसित करने का प्रयास करें।

मानवीय उपागम – मानवीय उपागम के अंतर्गत हम उन आदतों, व्यवहारों व आचरणों को सम्मिलित कर सकते हैं जो हमारे पर्यावरण को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने में सहायक हैं।

1. **मृदा संरक्षण–** फसल चक्र, मृदा संरक्षण में सहायक है। एक ही जमीन पर विभिन्न प्रकार की फसलों को वैकल्पिक आधार पर उगाना फसल चक्र कहा जाता है। केवल अधिक उत्पादन एवं लाभ कमाने की प्रवृत्ति के स्थान पर जमीन की उत्पादकता एवं संरक्षण को ध्यान में रखते हुए फसल बोना सतत् विकास में सहायक हैं।

2. उर्वरकों का न्यायोचित उपयोग, गहन फसल, उचित सिंचाई तथा मैले पानी की निकासी भी मृदा संरक्षण में सहायक है।

3. गन्दे पानी को उपचारित करके प्रदूषण से बचा जा सकता है। इससे जलीय जीवों, नदियों तथा झीलों को भी सुरक्षित रखने में सहायता मिलती है।

4. संतुलित पारिस्थितिकी व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि पूरे देश में राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभ्यारण्य को निरन्तर विकसित किया जाए। इससे वन्य जीवों की सुरक्षा एवं संरक्षण सुनिश्चित हो सकेगा तथा लुप्त हो रही पक्षियों एवं पौधों की प्रजातियों को भी बचाया जा सकेगा।

5. वृक्षारोपण – विभिन्न कारणों से जिन पेड़ों को काटना आवश्यक होता है, उनके स्थान पर नये वृक्ष लगाना अनिवार्य हो। ऐसा करने से हवा में कार्बन डाईऑक्साईड का स्तर कम होता है। ग्रीन हाउस प्रभाव में कमी आती हैं तथा पृथ्वी को अतिरिक्त गर्म होने से बचाया जा सकता है।

6. मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए जैविक अपशिष्ट को कम्पोस्ट में बदल कर खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

7. वर्षा के जल को व्यर्थ बहाने के स्थान पर इसका संरक्षण करने से भूगर्भ जल को संरक्षित रखा जा सकता है।

बदलती प्रवृत्तियॉ एवं मानवीय उपागम

वैश्वीकरण, उदारीकण, नगरीयकरण एवं औद्योगीकरण जैसी प्रक्रियाओं से उपभोक्तावादी संस्कृति बढ़ रही हैं। वर्तमान की बदलती उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों का प्रभाव सतत् विकास एवं मानवीय दृष्टिकोण पर भी स्पष्ट दिखाई देने लगा है। सामाजिक परिस्थिति का मूल्यांकन उपभोक्ता सर्वेक्षण के लिए निर्धारित मापदण्ड के अनुसार किया जाता है। वर्तमान में क्रेडिट कार्ड, मोबाईल फोन और कार आम उपभोक्ता की वस्तुएँ हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

एक उपभोक्ता सर्वेक्षण में यह बताया है कि उपभोक्ता प्रवृत्ति यह है कि अधिकांश वस्तुएँ आवश्यकता के लिए नहीं खरीदी जाती है। इन वस्तुओं को खरीदने के पीछे एक दबाव होता है। यह दबाव केवल अन्य लोगों को दिखाने का है अर्थात् आवश्यकता और विलासिता में अंतर नहीं किया जाता है।

बदलती प्रवृत्तियों में उपभोग के प्रति धारणा को बदलने में युवा ही अग्रणी हैं। ऐसी स्थिति में उपभोग के प्रति मानवीय दृष्टिकोण का अभाव है जो सतत् विकास के लिए एक चुनौती है। उभरते प्रतिमानों के अनुसार मानवीय उपागम को अपनाना एक साहसिक पहल होगी।

मानवीय उपागम के अन्तर्गत हम जल संरक्षण और प्रबन्धन की चर्चा कर सकते हैं। कारण यह है कि जल सीमित संसाधन है और सम्पूर्ण जीव जगत की संपदा है। जल के संरक्षण एवं आधुनिक जल संरक्षण व्यवस्थाओं में परस्पर सामंजस्य बिठाते हुए इनका समुचित प्रयोग करना होगा। उल्लेखनीय है कि पारम्परिक जल संरक्षण व्यवस्थाएँ, पारिस्थितिकीय संरक्षण एवं आधुनिक जल संरक्षण व्यवस्थाओं में परस्पर सामंजस्य बिठाते हुए इनका समुचित प्रयोग करना होगा। पारम्परिक जल संरक्षण व्यवस्थाएँ, पारिस्थितिकीय संरक्षण पर बल देती हैं। ये व्यवस्थाएं क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति एवं संस्कृति से विकसित हुई। इनमें मानवीय दृष्टिकोण को प्रमुखता दी गई। इस व्यवस्था से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी पर्यावरण से सामंजस्य रख कर की जाती है। अतः मानवीय उपागम सतत् विकास का एक महत्वपूर्ण आधार है।

दक्ष मानव शक्ति का विकास

(Development of Skilled Manpower)

1. कृषि क्षेत्र में दक्ष मानव शक्ति– हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि कृषि आधारित है। रासायनिक खाद और मशीनीकरण के प्रभाव से हरित क्रांति हुई। परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन कृषि भूमि की गुणवत्ता में गिरावट और जल संसाधन प्रदूषण भी हरितक्रांति का ही प्रभाव है। इससे सतत् विकास पर नकारात्मक प्रभाव अधिक पड़ा है। हम न्यायोचित विकास चाहते हैं अर्थात ऐसा विकास जो पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखने में सहायक हो, जिससे जीवन स्तर में सुधार आए तथा हमारे देश की सामाजिक–सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति के साथ समायोजन भी हो सके। इस प्रकार का विकास तभी संभव है जब हम कृषि पर निर्भर जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए उपयोगी उपयुक्त तकनीकी को विकसित करें और मानव शक्ति का भी पूरा उपयोग करें।

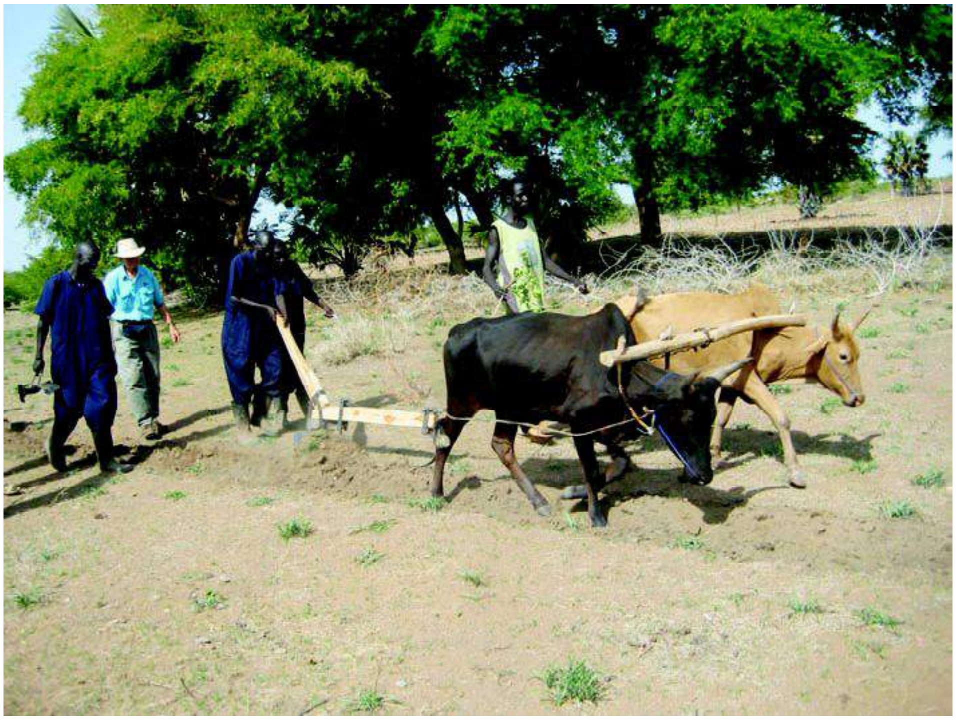

बैल चलित हल

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दक्ष मानव शक्ति और उपयुक्त तकनीकी विकास से ही उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को भविष्य के लिए सुरक्षित रख पायेंगे।

दक्ष मानव शक्ति के विकास से तात्पर्य यह है कि –

1. सभी को जीवन यापन के अवसर उपलब्ध हों
2. मानव शक्ति का उपयोग उपयुक्त तकनीकी के बीच तालमेल के साथ किया जाय।
3. युक्ति संगत तकनीकी प्रणाली का संचालन युक्ति संगत मानव श्रम द्वारा किया जा सके।
4. कम से कम ऊर्जा शक्ति में वृद्धि हो सके।
5. भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हो सके।
6. विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से बचा जा सके।
7. प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति संवेदना रखते हुए अनुकूलतम दोहन हो।

अब हम उपयुक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए कृषि क्षेत्र में दक्ष मानव शक्ति के विकास की संभावना की चर्चा करेंगे। हमारे देश की ग्रामीण कृषि व्यवस्था को देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। इसी क्षेत्र में मानव श्रम और उपयुक्त तकनीकी का उपयोग पर्यावरणीय कृषि के महत्व को निम्न उपायों से प्रमाणित कर सकता है –

1. गौवंश और जैविक कृषि– गायों से दूध और बैलों द्वारा स्थायी पर्यावरणीय कृषि उत्पाद हम प्राचीन समय से प्राप्त करते हैं। औद्योगिक क्रांति एवं तकनीकी विकास से बैलों का उपयोग कम हो गया। कृषि प्रौद्योगिकी में आमूल–चूल बदलाव आ गया। इसके दो परिणाम हमारे सामने हैं। एक तो कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, दूसरा पर्यावरणीय कृषि उत्पाद का स्थान वाणिज्यिक कृषि उत्पाद ने ले लिया। भूमि की उर्वरा शक्ति घटने लगी और बेरोजगारी बढ़ने लगी। आर्थिक लाभ तो हुआ लेकिन पर्यावरण को नुकसान अधिक पहुँचा। श्रम शक्ति का समुचित उपयोग नहीं हो सका। अतः दक्ष मानव शक्ति की बात प्रारंभ हुई। इसी क्रम में हम भारतीय गौवंश संवर्द्धन से संबंधित विकसित की जाने वाली तकनीक का उल्लेख कर सकते हैं।

कामधेनु बैल चलित संयंत्र –

यह एक ऐसा संयंत्र है, जिसमें बैल और कृषक दोनों का युक्ति–युक्त उपयोग कृषि क्षेत्र में किया जा सकता है। इस संयंत्र को बैल चलित ट्रेक्टर कहा जाता है। इसमें हल के साथ ट्रेक्टर में लगने वाले अन्य उपयोगी संयंत्र भी लगाये जा सकते हैं। ट्रेक्टर की तुलना में यह कामधेनु बैल चलित संयंत्र कम खर्चीला और बहुउपयोगी होता है। इसे वृद्ध किसान और महिलाएँ भी आसानी से चला सकती हैं। इस संयंत्र के साथ जब कृषि के लिए बैलों का उपयोग किया जाता है तो गौवंश से गोबर और मूत्र भी प्राप्त हो जाता है। इससे जैविक खाद व कीटनाशक बनाये जाते हैं। भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है। सिंचाई में कम पानी खर्च होता है। उत्पादन बढ़ने से आर्थिक लाभ मिलता है। पर्यावरण को नुकसान के स्थान पर लाभ मिलता है। पर्यावरण समृद्ध होता है। इस प्रकार के संयंत्र का उपयोग यदि व्यापक स्तर पर होने लगेगा तो बैलों के महत्व एवं कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। मानव शक्ति को भी दक्षता के साथ विकसित कर सकेंगे।

2. वन संरक्षण एवं दक्ष मानव शक्ति– सतत् विकास के लिए वनों को बचाये रखते हुए समृद्ध करना आवश्यक है। इस संबंध में दक्ष मानव शक्ति विकसित करने के उद्देश्य से संयुक्त वन प्रबंध योजना प्रारंभ की गई। संयुक्त वन प्रबंध योजना का मुख्य उद्देश्य स्थानीय लोगों के लिए वन भूमि से स्थाई आय का स्त्रोत सुनिश्चित करना। इस योजना के अंतर्गत स्थानीय लोगों को सामूहिक रूप से वन भूमि का उचित उपयोग करने के प्रावधानों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे फलों के पेड़ लगाना, औषधीय गुणों वाले पौधे विकसित करना,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पौध नर्सरी तैयार करना, मत्स्य पालन, मधु मक्खी पालन, गोंद प्रदान करने वाले पेड़ों की सुरक्षा करना, रेशम कीट पालन आदि। देश में जहॉं भी वन क्षेत्र है, उन वनों से स्थानीय लोगों को स्थायी रोजगार, स्थायी आय, स्थानीय वन संसाधनों से उपलब्ध करवाने के अनुकूल परिणाम भी सामने आये हैं। अनेक स्थानों पर वन सुरक्षा समितियॉं वन प्रबंधन योजना के अनुसार आर्थिक लाभ भी अर्जित कर रही है। इस योजना के लागू होने के बाद जो परिवर्तन स्पष्ट रूप से सामने आने लगे हैं, उनमें से मुख्य रूप से निम्न हैं –

(1) स्थानीय लोगों को रोजगार मिलने लगा ।

(2) आर्थिक लाभ होने से जीवन स्तर में सुधार हुआ।

(3) सामुदायिक भावना विकसित हुई।

(4) वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा व्यवस्था सुचारू रूप से स्थानीय लोग ही करने लगे हैं।

(5) पर्यावरण समृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने की राह मिली है और

(6) दक्ष मानव शक्ति का विकास हुआ है।

3. आपदा प्रबन्धन और दक्ष मानव शक्ति– प्राकृतिक आपदाऍं पारिस्थितिकी असंतुलन एवं पर्यावरण को नुकसान पहुॅंचाने से घटित होती है। इसमें हाइड्रोलॉजिकल, तटीय, समुद्री तथा वायुमंडल से संबंधित आपदाऍं मुख्य रूप से सम्मिलित की जा सकती है। सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाऍं पर्यावरण असंतुलन से उत्पन्न होती हैं और पर्यावरण को ही प्रभावित करती हैं। इसका परिणाम जीव–जगत पर अधिक पड़ता है। अतः, आपदा प्रबन्धन के दो पक्षों पर ध्यान दिया जाता है। पहला पक्ष आपदा को घटित होने से बचाव से संबंधित है, दूसरा पक्ष क्षमता निर्माण से संबंधित है। दोनों ही पक्ष महत्वपूर्ण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब संसाधन सीमित हैं तो उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। आपदा से प्रभावित होने वाले समुदायों में इनके प्रभाव से बचने हेतु क्षमता का निर्माण करने का कार्य प्राथमिकता से किया जाता है।

दक्ष मानव शक्ति को विकसित करने की आवश्यकता उस समय होती है, जब आपदा के कारण सब कुछ नष्ट हो जाता है। लोगों को उपलब्ध संसाधनों से ही अपने उजड़े जीवन को पुनः बसाने की आवश्यकता होती है। अपनी आजीविका का पुनः प्रबन्ध करना पड़ता है। आपदा प्रबन्धन के अंतर्गत प्रभावित क्षेत्रों में सामान्य जीवन को सुचारू बनाने एवं पर्यावरण को समृद्ध करने के उपाय किये जाते हैं। इन सभी कार्यों को दक्ष मानव शक्ति द्वारा संभव बनाया जा सकता है। इसी से सतत् विकास की संभावना भी प्रबल होती है।

4. दक्ष मानव शक्ति एवं वैकल्पिक ईंधन – सम्पूर्ण विश्व में ईंधन की मॉंग तेज गति से बढ़ रही है। हमारा देश भी इसी श्रेणी में है। वर्तमान में उपलब्ध संसाधनों से तेज गति से बढ़ रही ईंधन की मॉंग को भविष्य में पूरा करना असंभव प्रतीत होता है। विभिन्न सर्वेक्षणों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आने वाले कुछ ही वर्षों में ईंधन की मॉंग और आपूर्ति के बीच अंतर खूब बढ़ जायेगा। इस प्रकार की स्थिति सतत् विकास में बाधक होगी। इस प्रकार की विकट स्थिति से बचने के उपाय खोजने के प्रयासों में तेजी आई है। इसी क्रम में वैकल्पिक ईंधन के सतत् उत्पादन में दक्ष मानव शक्ति के उपयोग की चर्चा की जा रही है।

रतनजोत

हमारे देश में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के संयुक्त प्रयासों से 'ग्रीन फ्यूल' क्रांति प्रारंभ की गई है। इस क्रांति को हम बायोडीजल उत्पादन प्रयास के क्रम में समझ सकते हैं। रतनजोत के बीज से तेल निकाल कर डीजल के विकल्प

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है। भारत सरकार ने रतनजोत के बीजों से बायोडीजल तैयार करने की जिस परियोजना को प्रारंभ किया है, उसमें छत्तीसगढ़ राज्य को भी सम्मिलित किया है। इस परियोजना में जमीन, पानी और कामगार शक्ति को ध्यान में रखा गया है। छत्तीसगढ़ में हजारों एकड़ बेकार पड़ी जमीन पर रतनजोत के पेड़ लगाकर अच्छी मात्रा में बायोडीजल उत्पादन के प्रयास किये जा रहे हैं।

वैकल्पिक ईंधन उत्पादन से कई लाभ होंगे। इन लाभों में दक्ष मानव शक्ति का विकास और सतत् विकास सबसे प्रमुख है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक परीक्षणों से यह प्रमाणित हो गया है कि रतनजोत तेल डीजल का बेहतरीन विकल्प है। यह जलने पर धुऑं भी कम देगा तथा कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी जहरीली गैस भी बहुत ही कम मात्रा में विसर्जित होगी। डीजल से धुऑं भी अधिक निकलता है और कार्बन–मोनोऑक्साइड गैस भी तुलनात्मक दृष्टि से अधिक निकलती है। इस प्रकार जहॉं डीजल अत्यधिक प्रदूषण फैलाने वाला ईंधन है, वहीं बायो डीजल कम से कम प्रदूषण फैलाने वाला ईंधन होगा। छत्तीसगढ़ में रतनजोत से निर्मित बायोडीजल का प्रयोग प्रारंभ हो गया है।

बायो डीजल के समान एथनॉल को पेट्रोल में मिलाकर, पेट्रोल के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। एथनॉल एक प्रकार का एल्कोहल है, जिसे गन्ने के शीरे से प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग पेट्रोल में मिलाकर किया जाता है। इसी प्रकार मीथेनॉल को भी पेट्रोल में मिलाकर प्रयोग किया जाता है। मीथेनॉल भी एक प्रकार का एल्कोहल है। इसको भी वैज्ञानिक परीक्षण कर प्रयोग में लाया जा सकता है। विश्व में ब्राजील, स्वीडन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया आदि देशों में इसके प्रयोग से सफलतापूर्वक वाहन चलाये जा रहे हैं।

वैकल्पिक ईंधन का महत्व अब सभी देश समझ रहे हैं। नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के तेजी से बढ़ने से वैकल्पिक ईंधन का उत्पादन भी बढ़ेगा, इससे दक्ष मानव शक्ति के साथ सतत् विकास की संभावना भी बढ़ेगी।

5. उपयुक्त तकनीकी और दक्ष मानव शक्ति – उपयुक्त तकनीकी का अर्थ ऐसी तकनीकी से है जो स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विकसित की जाती है। दूसरे शब्दों में उपयुक्त तकनीकी का विकास केवल सुख सुविधा के लिए नहीं होता अपितु आवश्यकता पूर्ति ही इस तकनीकी के विकास का मुख्य आधार होता है। उपयुक्त तकनीकी ग्रामीण विकास की आधारशिला है। इसे प्रत्येक गॉंव और बस्ती को एक सम्पूर्ण इकाई बनाने की दिशा में आवश्यक कदम भी कह सकते हैं।

प्रत्येक क्षेत्र के विकास के लिए उपयुक्त प्रणाली को ही उपयुक्त तकनीक कहा जाता है। इसके अंतर्गत हम जिन क्षेत्रों के विकास की बात करते हैं, उससे दक्ष मानव शक्ति का विकास स्वतः होता है। इसमें सम्पूर्ण समाज की भागीदारी निश्चित की जा सकती है। अतः इसे रोजगार प्रदान करने वाली प्रणाली भी कहा जाता है। उपयुक्त तकनीक जिन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है, उसके अंतर्गत आवास, पेयजल, स्वास्थ्य, विद्युत, सिंचाई, मनोरंजन, शिक्षा, यातायात, सड़क, बाजार, संचार और ग्रामोद्योग जैसे क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। इन क्षेत्रों के विकास की तकनीकी में अत्यधिक मशीनीकरण के स्थान पर परम्परागत तकनीकी का ही आधुनिकीकरण किया जाता है। इससे स्थानीय लोगों को काम मिल जाता है अर्थात् स्थानीय मानव श्रम को स्थानीय मानव शक्ति का दक्षता के साथ उपयोग किया जाता है ।

स्थानीय लोग रोजगार की तलाश में बड़े कल–कारखानों की ओर पलायन नहीं करते अधिकांश व्यक्ति उपयुक्त तकनीकी के प्रयोग के साथ अपनी आजीविका का प्रबंधन स्वयं स्थानीय संसाधनों द्वारा करने लगते हैं। उपयुक्त तकनीकी और दक्ष मानव शक्ति के विकास की प्रासंगिकता को कुछ क्षेत्रों में समझ सकते हैं –

1. आवास – स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप स्थानीय सामग्री का उपयोग करते हुए आवास निर्माण किये जा सकते हैं। स्थानीय सामग्री के साथ स्थानीय श्रमिकों एवं कारीगरों द्वारा उपयुक्त तकनीक से आवास निर्माण करने पर दक्ष मानव शक्ति का विकास होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. जल संसाधन– स्थानीय जल स्त्रोतों को उपयुक्त तकनीकी द्वारा विकसित कर जल संग्रहण के लिए तैयार किया जा सकता है। इसके अंतर्गत तालाब, बावड़ियॉं, कुएँ, एनिकट आदि का निर्माण एवं रख–रखाव का कार्य किया जाता है।

3. यातायात– स्थानीय आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त तकनीक का प्रयोग कर बैलगाड़ी, तांगा आदि को इस प्रकार निर्मित किया जाये ताकि जानवरों को कम से कम थकान आवे। स्थानीय सामग्री को इधर–उधर लाने ले जाने में इन साधनों का आधुनिकीकरण करके उपयोग किया जा सकता है।

4. कृषि संबंधी कार्य– हमने इस अध्याय के प्रारंभ में कृषि क्षेत्र में दक्ष मानव शक्ति के विकास की विवेचना की है। इस संबंध में उपयुक्त तकनीकी का प्रयोग खेत को सुधार कर बीज बोने से लेकर फसल काटकर उसके भंडारण तक किया जा सकता है।

5. अवशिष्ट पदार्थ– कई प्रकार के अवशिष्ट उपलब्ध रहते हैं, जिनको किसी भी तरह से कार्य में नहीं लिया जाता है। इन अवशिष्ट पदार्थों से पर्यावरण प्रदूषित होता है। उपयुक्त तकनीकी के द्वारा अवशिष्ट पदार्थों को भी उपयोगी बनाया जा सकता है। अवशिष्ट की प्रकृति के अनुसार आवश्यकता को देखते हुए तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में कई शहरों में अवशिष्ट पदार्थो एवं कूड़े कचरों से विद्युत उत्पादन किया जा रहा है।

6. दैनिक जीवन हेतु उपयोगी उपयुक्त तकनीकी– दैनिक जीवन में आज भी परम्परागत तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। इसका सुधार कर उपयुक्त तकनीकी द्वारा इन्हें अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में उन्नत चूल्हे का विकास, बायोगैस के विविध उपयोग, स्वच्छ शौचालयों का निर्माण, जलाशयों के पानी के प्रयोग हेतु उपयुक्त फिल्टर प्रणाली का विकास आदि। इस प्रकार से दैनिक जीवन हेतु उपयुक्त उपयोगी तकनीकी के विकास से दक्ष मानव शक्ति विकसित होने पर सतत् विकास की संभावनाऍं बढ़ेंगी।

व्यक्ति और समुदाय की भूमिका

व्यक्ति और समुदाय –

हम यह जानते हैं कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। जन्म के समय कोई भी व्यक्ति केवल जैविकीय प्राणी होता है। धीरे–धीरे समाज व समुदाय के संपर्क से उसे सामाजिक प्राणी बनाया जाता है। समाज के संस्कारों को आत्मसात करने पर व्यक्ति समाज की अपेक्षाओं के अनुसार आचरण करता है। जिस निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में व्यक्ति निवास करता है, उसी परिवेश से उसका घनिष्ठ संबंध बन जाता है। घनिष्ठ संबंधों के फलस्वरूप व्यक्ति के मन में अपने समुदाय के प्रति संवेदना भी जागृत हो जाती है। व्यक्ति अपने आपको उस समुदाय का अभिन्न अंग समझने लगता है। इसी प्रकार की समझ जब किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के निवासियों में उत्पन्न होती है तो इसे सामुदायिक भावना कहा जाता है। उस क्षेत्र के निवासी एक समुदाय के रूप में पहचाने जाते हैं। अतः व्यक्ति से समुदाय बनता है और समुदाय से सामुदायिक भावना का जन्म होता है। इस प्रकार व्यक्ति और समुदाय एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

सतत् विकास हेतु व्यक्ति और समुदाय की भूमिका

विश्व स्तर पर अब निरंतर सतत् विकास की चर्चा की जाती है। इस प्रकार के विषय पर चर्चा करने का मुख्य कारण व्यक्ति और समुदाय को ही माना जाता है। मनुष्य ने अपनी सुख सुविधाओं को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन प्रारंभ किया। समुदाय ने अपने सदस्यों के कल्याण के लिए व्यक्ति को प्रोत्साहन दिया। आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और मानव विकास के नये–नये आयाम निर्धारित होते रहे। यह सब व्यक्ति और समुदाय ने अपने लिए किया। जब संसाधन सिमटने लगे तो भविष्य के प्रति चिंता होने लगी। इसी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चिन्ता से सतत् विकास का चिन्तन प्रारंभ हुआ। व्यक्ति और समुदाय की भूमिका से विकास के नए कीर्तिमान स्थापित हुए। इन्हीं की भूमिका से पारिस्थितिकी तंत्र में असन्तुलन उत्पन्न हुए।

अब व्यक्ति और समुदाय की भूमिका से ही भविष्य के लिए पर्यावरण को संरक्षित व सुरक्षित रख पायेंगे, ऐसे प्रयास हो रहे हैं। इसी क्रम में कुछ प्रयासों का उल्लेख करेंगे –

1. वृक्षों की महत्ता – व्यक्ति और समुदाय की भूमिका–वृक्ष प्रकृति की अमूल्य धरोहर है। व्यक्ति और समुदाय को प्राण वायु–ऑक्सीजन प्रदान कर वृक्ष ही इनके अस्तित्व को बनाये रखते हैं। शरीर को रोग मुक्त करने के लिए अमूल्य औषधियॉं भी वृक्षों से प्राप्त होती हैं। असंख्य प्राणियों व पक्षियों के आश्रयदाता वृक्ष ही है। वृक्षों से ही फल, बहुपयोगी लकड़ी और छाया मिलती है। वृक्षों के महत्व को संक्षेप में समझने के लिए कहा जा सकता है कि– वृक्ष है तो जीवन भी है।

व्यक्ति और समुदाय ने वृक्षों के महत्व की अनेदखी करना प्रारंभ किया तो इसका दुष्परिणाम विश्व समुदाय को भुगतना पड़ रहा है। आज वृक्षों की अनेक दुर्लभ प्रजातियां लुप्त हो रही हैं, रेगिस्तान का क्षेत्रफल धीरे–धीरे बढ़ रहा है, वायुमण्डल में कार्बन–डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन का अनुपात गड़बड़ा गया है। पर्यावरण असन्तुलन की समस्या से सम्पूर्ण विश्व समुदाय प्रभावित है। पर्यावरण असन्तुलन के परिणामस्वरूप औसत तापमान में वृद्धि हो रही है, कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ की समस्या है। वैज्ञानिक यह चेतावनी दे रहे हैं कि पृथ्वी का तापमान बढ़ने से समुद्र का जल स्तर बढ़ेगा। समुद्र के किनारे पर बसे आवासीय क्षेत्र समुद्री जल में डूब जायेंगे। इसके साथ व्यक्ति और समुदाय मलेरिया, डेंगू और चर्म रोगों से प्रभावित होंगे। इस प्रकार की समस्याओं का मुख्य कारण पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न होना है। हम सब यह समझ गये हैं कि पर्यावरण में असन्तुलन का मुख्य कारण वृक्षों की घटती संख्या है।

एक बार पुनः व्यक्ति और समुदाय को वृक्षों के महत्व को समझने की आवश्यकता है। हमारे देश में वृक्षों की महत्ता का उल्लेख कई धर्म ग्रन्थों में किया गया है। इतना हम जातने हैं कि एक वृक्ष अपने जीवन काल में हमें फल, सब्जियॉं, औषधियॉं, इमारती लकड़ी, ईंधन, छाया देता है। वातावरण को शुद्ध और प्रदूषण रहित रखने में वृक्षों का सबसे अधिक महत्व है। व्यक्ति और समुदाय को वृक्षों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए वृक्षारोपण एवं वृक्षों का संरक्षण करने में अहम् भूमिका निर्वहन करना होगा। सतत् अथवा टिकाऊ विकास के लिए व्यक्ति और समुदाय की भूमिका से ही धरती को हरा–भरा रखा जा सकेगा।

2. जलाशयों का संरक्षण– वृक्षों के महत्व को हमने समझने का प्रयास किया। इसी प्रकार व्यक्ति और समुदाय के अस्तित्व के लिए जलाशय भी अपरिहार्य है। इनके संरक्षण में भी व्यक्ति और समुदाय की भूमिका को अहम् माना जाता है। इनके संरक्षण से हम भविष्य की पीढ़ियों के जीवन को बेहतर बनाने में योगदान कर सकेंगे।

विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताऍं नदी–घाटियों के आस–पास विकसित हुई। नदी व झरने मानव के लिए जल प्राप्ति के प्रमुख स्त्रोत रहे हैं। जैसे–जैसे मानव ने विकास किया वैसे–वैसे अन्य जल स्त्रोतों का विकास हुआ। हमारे देश में जल संग्रहण के लिए कुण्ड, कुण्डी, तालाब, बावड़ी, कुऍं आदि का निर्माण हुआ। हम यह भी जानते हैं कि हमारे देश की संस्कृति एक जल प्रिय संस्कृति रही है। विभिन्न अवसरों पर जलाशयों का पूजन किया जाता है। इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की भावना के विभिन्न स्वरूप भी देखने को मिलते हैं। धीरे–धीरे विकास के दौर में जल स्त्रोतों की उपेक्षा होती रही, अतिक्रमण हुए, इन्हें लावारिस समझ कर कूड़ा–करकट, अपशिष्ट संग्रहण के केन्द्र में परिवर्तित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ऐसी दशा में उपेक्षित जलाशयों के संरक्षण की आवश्यकता का अहसास उत्पन्न होने लगा। सभी प्रकार के जल संग्रहण एवं जल स्त्रोतों के रख–रखाव की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। तालाब, सरोवर, कुएं, बावड़ी, आदि की सफाई नियमित अन्तराल से होती रहेगी, गन्दगी निथारने की व्यवस्था सुनिश्चित होगी तथा स्वच्छ जल को जलाशयों में पहुॅंचाया जायेगा तो हमारे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ये बहुमूल्य संसाधन सुरक्षित रहेंगे। इन सभी कार्यों को कौन करेगा ? इस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए कह सकते हैं कि जब तक व्यक्ति और समुदाय मिलकर सहयोग नहीं करते तब तक इन कार्यों की क्रियान्विति भी कठिन हो जाती है।

अतः व्यक्ति और समुदाय की सक्रिय भूमिका जलाशयों के संरक्षण हेतु अपरिहार्य है।

3. युवा की भूमिका – राष्ट्र के विकास में व्यक्ति की भूमिका की बात की जाती है तब युवा के योगदान को रेखांकित किया जाता है। किसी भी बड़े परिवर्तन के लिए, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिए अथवा देश के विकास के लिए जब भी महापुरूषों ने पहल की तब देश के युवाओं को ही आह्वान किया गया । स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गांधी ने युवा शक्ति को ही सबसे अधिक महत्व दिया । वैश्वीकरण और शहरीकरण के दौर में भी युवाओं की भूमिका अग्रणी है। जर्मनी के अर्थशास्त्री नोरबर्ट वाल्टर के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं। इन परिवर्तनों के आधार पर भारत सन् 2020 तक विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन सकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे देश की जनसंख्या का युवा आधार विकास के लिए काफी अच्छा है। देश की शिक्षित–प्रशिक्षित युवा आबादी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

सतत् विकास के सम्बन्ध में भी देश के युवक उल्लेखनीय योगदान कर सकते हैं। जैसे विकास की प्रक्रिया में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई हो रही है, लेकिन पुनः नए पेड़ उगाने का काम तेजी से नहीं होता है। नये पेड़–पौधे उगाने का कार्य अध्ययनरत विद्यार्थियों से वृक्षारोपण से करवाया जा रहा है। इसे और गंभीरता से करवाया जा सकता है। किसी पहाड़ी, तालाब अथवा अन्य जल स्त्रोत के आस–पास के क्षेत्र का चयन कर उसे उपवन के रूप में विकसित करवाया जा सकता है। युवाओं को प्रेरित कर उनमें एक चेतना जागृति के कार्य को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। भावी पीढ़ी के लिए स्वस्थ जीवन की सौगात सौंपना व्यक्ति और समुदाय का नैतिक दायित्व है। इस दायित्व का निर्वहन जिम्मेदारी के साथ होगा तो जीवन भी सार्थक बन सकेगा।

4. उद्योग समूहों की भूमिका – देश के आर्थिक विकास में उद्योग जगत् की भूमिका महत्वपूर्ण है। उद्योग समूह की भूमिका पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने में भी अग्रणी रही है। फैक्ट्रियों से निकलने वाला धुऑं वातावरण को प्रदूषित करता है। इनसे विसर्जित अपशिष्ट नदी–नालों को प्रदूषित करते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति उद्योगों के अपशिष्ट से नष्ट हो जाती है। व्यक्ति और समुदाय के स्वास्थ्य को आस–पास की फैक्ट्रियॉं, कल–कारखाने बुरी तरह से प्रभावित कर देते हैं। हमारे देश की पवित्र नदियों में औद्योगिक अपशिष्ट प्रवाहित कर इन्हें गन्दगी बहाने वाले गटर के समान बना दिया है।

प्रदूषित जल का उपचार

जिस प्रकार से कालिया नाग ने अपने विष से यमुना के जल को प्रदूषित कर दिया था, उसी प्रकार वर्तमान औद्योगिक अपशिष्ट पवित्र नदियों को प्रदूषित कर रहे हैं। उद्योग समूहों द्वारा अन्य प्रकार से भी पर्यावरण प्रदूषण फैलाया जा रहा है। अब तक जो नुकसान हुआ, उसकी क्षतिपूर्ति और भविष्य में ऐसा नुकसान न हो इसके लिए समुचित प्रबन्ध का दायित्व भी उद्योग समूहों का है।

– उद्योग समूह सतत् विकास के लिए भरपूर योगदान कर सकते हैं। पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण बचाव के साथ जो अपेक्षा उद्योग जगत से है, उसे निम्न बिन्दुओं से समझ सकते हैं –

औद्योगिक इकाईयों से निकलने वाले अपशिष्ट को वैज्ञानिक विधि से उपचारित करने के बाद ही उत्सर्जित किया जाना चाहिए। इससे नदी–नालों का जल शुद्ध बना रहेगा। वायु प्रदूषण भी नहीं होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

– ऐसी प्रौद्योगिकी को विकसित कर अपनाया जा सकता है जो कि सामाजिक, आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के साथ पर्यावरण संरक्षण के लिए अनुकूल हो।

– ग्रामीण रोजगार एवं कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने वाली प्रौद्योगिकी को अपनाने की आवश्यकता है।

– उद्योगपति अपने उद्योग के साथ प्राकृतिक संसाधनों की देखभाल, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा समाज कल्याण की योजनाओं के लिए भी योगदान करेंगे तो पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाये रखने के प्रयास सफल होंगे।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों (शासकीय एवं अशासकीय) की भूमिका

राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका –

आने वाली पीढ़ियाँ सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें इसके लिए वर्तमान पीढ़ी की भूमिका सबसे अहम् होती है। यही सतत् विकास का मुख्य उद्देश्य हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर क्या प्रयास किये जा रहे हैं तथा कौन–सी एजेन्सियाँ इस दिशा में कार्यरत हैं। यहाँ पर हम सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किये जा रहे कार्यो का विवेचन करेंगे।

1. सरकारी प्रयास – केन्द्र एवं राज्य स्तर पर सरकार द्वारा किये जा रहे कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है:

(1) भारतीय वन सेवा – हमारे देश में केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की स्थापना की हैं। वर्तमान प्रशासकीय ढाँचे में भारतीय वन सेवा में लगभग 4,000 अधिकारी, लगभग 8,000 राज्य सेवा अधिकारी तथा करीब 1,75,000 अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं। भारतीय वन सेवा के अन्तर्गत समस्त अधिकारी व कर्मचारी वन्य जीव सुरक्षा एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण चेतना जागृत करने के लिए केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय 1986 से राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान चला रहा है। पर्यावरण चेतना जागृत करने के लिए इस योजना के तहत विभिन्न संस्थाओं को धनराशि आवंटित की जाती है। देश में लगभग 400 संगठन इस योजना के अनुसार आबंटित धनराशि का उपयोग कर रहे हैं। आम लोगों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति दायित्व बोध उत्पन्न करने हेतु समय–समय पर रैलियाँ, प्रदर्शनियाँ, पदयात्रा, नाटक, फिल्म, निबन्ध व चित्र प्रतियोगिता, कार्यशाला एवं विभिन्न स्तरों पर विचार गोष्ठी आदि के आयोजन किये जाते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी प्रयासों के अन्तर्गत भारतीय वन सेवा को दो भागों में बाँट कर पर्यावरण संरक्षण में इसकी भूमिका को समझ सकते हैं – प्रथम भाग में पेड़ लगाना, पेड़ों का उपयोग, संयुक्त वन प्रबन्ध, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। इसे व्यक्ति और वन के सह–अस्तित्व में जुड़ा कार्य कह सकते हैं। दूसरे भाग में राष्ट्रीय वन एवं अभ्यारण्यों को जीवित रखने वाले कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है।

भारतीय वन सेवा के प्रशासनिक ढाँचे एवं प्रकार्यों को देखते हुए यह अनुभव किया जाने लगा है कि इस सेवा में उत्कृष्ट प्रतिभाओं की आवश्यकता है। जिन सरकारी संस्थानों में वन एवं वन्य जीव अनुसंधान तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहे हैं उनमें भी समय के साथ बदलाव के प्रयास होने चाहिए। वन और वन्य जीव पिछले कुछ अरसे से संकट के दौर में हैं। यह संकट सतत् विकास में बाधक है, इसलिए प्रशासनिक सुधार की भी आवश्यकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) पर्यावरण क्लब – केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा प्राप्त आर्थिक सहायता से विद्यालय स्तर पर क्लब का गठन किया जाता है। यह क्लब पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण जागृति के लिए कार्यक्रम आयोजित करता है।

(3) पर्यावरण वाहिनी – यह एक जिला स्तर का संगठन है जिला कलेक्टर की अध्यक्षता वाले इस संगठन की मुख्य भूमिका प्रदूषण फैलाने वाली ईकाइयों के विरूद्ध अभियान चलाना है।

(4) जिला स्तरीय पर्यावरण विभाग – प्रदूषण सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर पर्यावरण विभाग स्थापित किये गये हैं। इनकी भूमिका भी प्रदूषण व पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करना है।

(5) कानून की भूमिका – प्रदूषण नियन्त्रण एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकार ने अनेक कानून बनाये हैं। पूर्व के अध्यायों में हमने प्रमुख कानूनों का उल्लेख किया है। कानून का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देने का प्रावधान है। उद्योगों और कारखानों को स्थापित करने से पूर्व पर्यावरण सम्बन्धी अनापत्ति प्रमाण–पत्र लेने की अनिवार्यता है। इस प्रकार सरकार कानून के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

(6) पेट्रोलियम कन्जरवेशन रिसर्च एसोसियेशन (PCRA) –सतत् विकास के लिए नवीन ऊर्जा स्त्रोतों का विकास आवश्यक है। इसी दिशा में पेट्रोलियम कन्जरवेशन रिसर्च एसोसिएशन ने राष्ट्रीय जैव ईंधन केन्द्र की स्थापना की है। PCRA राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय तेल निगम विभिन्न ग्रामीण विकास के साथ मिलकर

पेट्रोलियम कन्जरवेशन रिसर्च एसोसियेशन परिसर

जैव ईंधन के क्षेत्र में अनुसंधान तथा विकास कार्य में लगा हुआ है। यह रिसर्च एसोसियेशन (PCRA) सूचना बैंक के रूप में कार्यरत है। हमारे देश में डीजल की खपत के ऑकड़े इस एसोसियेशन ने एकत्र किये हैं। वैकल्पिक ईंधन के रूप में बायोडीजल का उत्पादन प्रारम्भ हुआ है। बायोडीजल रतनजोत (जेट्रोफा) के बीज से निकाला जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका

संयुक्त राष्ट्र संघ –

पर्यावरण कार्यक्रम को संयुक्त राष्ट्र संघ में सबसे पहले सन् 1972 में सम्मिलित किया गया। स्टाकहोम (स्वीडन) में 1972 में विश्व स्तरीय सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में हम सबके लिए ''एक ही पृथ्वी'' का सिद्धान्त स्वीकार किया। पर्यावरण संरक्षण एवं चेतना जागृति के सम्बन्ध में 26 सिद्धान्त सम्मिलित किये गये। इन सिद्धान्तों में जैव मण्डल की पूर्ण सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए प्रतिबन्ध, विदोहन एवं विकास के नियम निर्धारित किये गये।

रियोडिजेनिरो (ब्राजील) में सन् 1992 में दूसरा पर्यावरण शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया। यह सम्मेलन 12 दिन तक चला। इसमें भूमण्डलीय साझेदारी के आधार पर 'एजेन्डा 21' तैयार किया गया। विकसित राष्ट्रों की पर्यावरण प्रदूषण की जिम्मेदारी का आभास इस सम्मेलन की उपलब्धि रही ।

जोहन्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका गणतन्त्र) में सन् 2002 में पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन हुआ। इसका उद्देश्य संसाधनों के अविवेकपूर्ण एवं अत्यधिक दोहन पर रोक लगाते हुए वर्तमान परिस्थितियों में आर्थिक विकास को बढ़ावा देना था । आने वाली पीढ़ियां सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें, इसी विषय पर चर्चा हुई।

जी–8 सम्मेलन – ''विश्व के आठ प्रमुख औद्योगिक प्रजातांत्रिक देशों के समूह को जी–8 कहा जाता है''। अधिकारिक तौर पर सन् 1998 में यह समूह अस्तित्व में आया। इससे पूर्व यह जी–6,बाद में जी–7 था। क्योटो में जी–8 का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में मुख्य मुद्दा यह था कि पर्यावरण सबके लिए है, इसका संरक्षण एवं इसे स्वच्छ रखने का दायित्व भी सबका है। कारण यह कि अमेरिका और पश्चिम यूरोप में प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन सबसे अधिक है। भारत की तुलना में यह 20 गुना और 10 गुना अधिक है। स्पष्ट है कि जो सबसे अधिक उत्सर्जित करता है, वही अधिक जिम्मेदार है। उत्सर्जन के बढ़ने से पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। क्योटो सम्मेलन में चर्चा का विषय भी यही था कि विकसित देशों को गैसों के उत्सर्जन में कमी करनी चाहिये। संयुक्त राष्ट्र संघ के वायुमण्डल परिवर्तन से सम्बन्धित अन्तर्राज्यीय पेनल (United Nations Inter Governmental Panel on Climate Change) ने सुझाव दिया कि विश्व स्तर पर ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर तक लाने की दिशा में प्रयत्न करना होगा। यद्यपि इस मुद्दे पर अमेरिका ने अपनी सहमति व्यक्त करने में आनाकनी की फिर भी हम कह सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संगठन पर्यावरण संरक्षण हेतु अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। अभी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय सहमति के आधार पर जलवायु नीति बनाने की आवश्यकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

यूनेस्को (UNESCO- United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization) की भूमिका –

संयुक्त राष्ट्र संघ का ही संगठन यूनेस्को भी पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। राजस्थान में भरतपुर के केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान को सन् 1985 में विश्व प्राकृतिक धरोहर घोषित किया था। इस उद्यान की सार संभाल के लिए यूनेस्को द्वारा तीन करोड़ रूपये की राशि प्रदान की जायेगी। विश्व प्राकृतिक धरोहरों के लिए यूनेस्को द्वारा दिये गये पेकेज में भरतपुर के केवलादेव उद्यान के साथ हमारे देश के सुंदरवन, काजीरंगा, नंदादेवी और मानस राष्ट्रीय उद्यान के रख रखाव हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जायेगी।

यूनेस्को प्रोजेक्ट के कार्यों में जो सम्मिलित है, उनमें मुख्य रूप से –

(1) पार्क को बेहतर बनाना

(2) कारगर प्रबन्ध व्यवस्था

(3) अधिकारियों की जिम्मेदारी का निर्धारण और

(4) समय–समय पर कार्यों का मूल्यांकन करवाना।

विश्व संरक्षण संघ एवं विश्व संरक्षण निगरानी केन्द्र

(World Conservation Union and World Conservation Monitoring Centre)

विश्व स्तर पर दो संगठन विलुप्त हो रही प्रजातियों तथा संकट के दौर से गुजर रही प्रजातियों के संरक्षण के लिए कार्यरत हैं। विश्व संरक्षण संघ और विश्व संरक्षण निगरानी केन्द्र प्राणियों उनकी प्रजातियों की सूची तैयार करते हैं, जो प्रजातियां लुप्त हो रही हैं, नष्ट हो रही है और खतरे में हैं। प्रत्येक देश अपने ही मापदण्डों के आधार पर विलुप्त होने वाली प्रजातियों की पहचान करता है। उपर्युक्त दोनों संगठन विश्व स्तर पर सभी देशों की उन जीव प्रजातियों की सूची तैयार करते हैं, जिन प्रजातियों का अस्तित्व संकट में है।

जो प्रजातियॉ खतरे में हैं, उनका निर्धारण विभिन्न आधारों पर किया जाता है। जैसे पिछले 10 वर्षों में किसी प्रजाति की संख्या 80 प्रतिशत कम हो गई हो अथवा उस प्रजाति की तीन पीढ़ियां 80 प्रतिशत संख्या कम हो गई हो। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार विश्व में लगभग 60 प्रजातियॉ तो पूर्णतया विलुप्त हो चुकी हैं। खतरे की श्रेणी में 4328 प्रजातियों को सम्मिलित किया है। इसी प्रकार 2853 प्रजातियॉ अत्यंत गंभीर खतरे की श्रेणी में आती हैं। हमारे देश में लगभग 206 प्रजातियॉ खतरे में हैं, तथा 84 प्रजातियॉ अत्यन्त गंभीर खतरे की श्रेणी में हैं।

लाल सूची (Red List). विश्व संरक्षण संघ और विश्व संरक्षण निगरानी केन्द्र द्वारा तैयार की जाने वाली उन जीव–प्रजातियों की सूची जिनका अस्तित्व खतरे में है, उस सूची को लाल सूची कहा जाता है। इसको लाल ऑकड़ों की पुस्तक (Red data book) में समावेशित किया गया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लाल ऑकड़ों की पुस्तक में विभिन्न प्रकार की संकटग्रस्त प्रजातियों से संबंधित जानकारी विविध प्रकार के रंगीन पृष्ठों के माध्यम से प्रदान की जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तैयार की जाने वाली इस सूची के अनुसार जीव–प्रजातियों को बचाने के प्रयास भी किये जा रहे हैं।

अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन

पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिकी संतुलन और सतत विकास की दिशा में निम्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण हैः–

1. अन्तर्राष्ट्रीय जैविकीय कार्यक्रम
2. मानव एवं जैवमंडल कार्यक्रम
3. संयुक्त राष्ट्रसंघ पर्यावरण कार्यक्रम
4. अंतर्राष्ट्रीय जैविकीय कार्यक्रम समिति
5. शुष्क भूमि समन्वित कार्यक्रम
6. अन्तर्राष्ट्रीय समन्वित पर्वत विकास समिति
7. प्राकृतिक आपदा निवारण अंतर्राष्ट्रीय समिति

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

पिछले दो दशक से गैर सरकारी संगठन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुखता से उभरे हैं। हमारे देश में स्वतंत्रता से पूर्व भी इसी प्रकार की संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में कार्यरत थीं। सरकारी अनुदान एवं स्वयं के संसाधनों से इस प्रकार की संस्थाएँ विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने लगी। स्वतंत्रता से पूर्व जो संस्थाएँ स्वायत रूप से सामाजिक, आर्थिक कार्य कर रही थीं उन्हें स्वयं सेवी संस्था (Voluntary organisation) कहा जाता था। धीरे–धीरे नई संस्थाओं का जन्म हुआ और स्वतंत्रता के बाद इन्हें गैर सरकारी संगठन (Non-Governmental Organization) के नाम से स्थापित किया जाने लगा। हमारे देश के महान नेताओं ने भी स्वतंत्रता से पूर्व स्वयंसेवी संगठनों की स्थापना की थी। उनमें से आज भी अनेक संगठन सक्रिय हैं।

देश की स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में लोगों ने सरकार को सामाजिक बदलाव के लिए पहल करने हेतु प्रेरित किया। आज स्थिति भिन्न है। अब सैकड़ों की संख्या में गैर सरकारी संगठन (NGO) शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, वन प्रबन्धन, पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण बचाव आदि क्षेत्रों में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हैं। एक NGO दूसरे NGO से आकार में आर्थिक सहायता, कार्यक्षेत्र, संगठनात्मक ढ़ॉचे, लक्ष्य एवं सदस्यता के आधार पर भिन्न है। भिन्नता के कारण NGO की कई परिभाषाएँ हैं। इन संगठनों को गैर–सरकारी लाभ–रहित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संगठन कहा जाता है। NGO की गतिविधियॉं विविध प्रकार की हैं। जैसे कुछ NGO सतत् विकास एवं पर्यावरणीय अवनति आदि के क्षेत्र में कार्यरत हैं। यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि सभी NGO सामान लक्ष्य के लिए कार्य नहीं करते हैं। प्रत्येक NGO अपने आकार सदस्यता, कोष, उपागम, रणनीति और परिणाम के आधार पर अपनी अलग पहचान रखता है।

हमारे देश में 30,000 से भी अधिक NGO पंजीकृत हैं। इसी प्रकार 14,000 से अधिक NGO विदेशी सहायता नियमन अधिनियम (Foreign Contributions Regulation Act) के तहत पंजीकृत हैं।

गैर सरकारी संगठन और पर्यावरण संरक्षण – जैसा कि हमने समझने का प्रयास किया कि प्रत्येक NGO सरकार अथवा किसी स्वदेशी सहायता एजेन्सी के सहयोग से किसी लक्ष्य को लेकर कार्य करती हैं। हम कुछ NGO एवं उनके कार्यों का उल्लेख करेंगे।

ग्रीन ब्रिगेड – पश्चिम त्रिपुरा में भारत–बांग्लादेश सीमा पर कार्यरत ग्रीन ब्रिगेड नाम से गैर सरकारी संगठन हैं। यह संगठन अब पेड़ों की रक्षा करने का काम कर रहा है। इस संगठन का जन्म भारत–बांग्लादेश सीमा पर लकड़ी की तस्करी के फलस्वरूप हुआ। वन अधिकारियों एवं NGO के प्रयासों से स्थानीय लोगों को संरक्षण योजना में सम्मिलित कर ग्रीन ब्रिगेड का गठन किया ।

पारिस्थितिक विकास समिति (Eco-Development Committee) - केरल के बाघ आरक्षित क्षेत्र पेरियार में, वन अधिकारियों ने इस समिति का गठन किया । इस समिति में उन लोगों को सम्मिलित किया गया जो बाघ आरक्षित क्षेत्र के आस–पास निवास करते हैं। इनमें भी मुख्य रूप से शिकारी, लकड़ी काटने वाले तथा अन्य स्थानीय लोगों को सम्मिलित कर संगठन बनाया । इस संगठन के निर्मित होने के बाद पिछले आठ वर्षों से एक भी शिकार की घटना नहीं हुई।

महावीर पाखी सुरक्षा समिति (Mahaveer Pakhi Suraksha Samiti). उड़ीसा में भुवनेश्वर से कुछ दूर चिल्का झील हैं। इसी झील के किनारे मंगलाजोदी नाम से एक गॉव है। कई दशकों से इस गॉव के लोग पंक्षियों का शिकार कर अपनी आजीविका चला रहे थे। कुछ वर्षो पूर्व NGO के प्रयासों से पंक्षियों का शिकार बन्द हो गया । उड़ीसा सरकार के वन विभाग, चिल्का विकास प्राधिकरण, वाइल्ड उड़ीसा नाम के NGO तथा भारतीय पर्यटन एवं पर्यटन प्रबन्ध संस्थान के संयुक्त प्रयत्नों से चिल्का झील के किनारे मंगलाजोदी ग्रामवासी प्रकृति गाइड बन गये। महावीर पाखी सुरक्षा समिति के नाम से पूर्व शिकारी अब प्रशिक्षित गाईड हैं, यांत्रियों के लिए विशेष नौंकाएँ चलाते हैं। अब उनके हाथों में हथियार के स्थान पर पक्षियों की पुस्तकें और दूरबीन हैं।

मानस माओजिगिन्द्री इको टूरिज्म सोसाइटी (Manas Maojigindri Eco Tourism Society) आसाम में मानस राष्ट्रीय उद्यान वन्य जीवों से समृद्ध था। बोडो उग्रवादियों ने इस उद्यान को अपनी शरण स्थली बना कर इसे तहस–नहस कर दिया। एक NGO मानस माओजिगिन्द्री इको टूरिज्म सोसाइटी ने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पहल की। इस NGO ने पूर्व के आतंकवादियों को विश्वास में लिया अन्य शिकारियों को साथ जोड़ा और विद्यार्थियों की सहायता से राष्ट्रीय उद्यान की खोई हुई प्राकृतिक ख्याति व चमक को पुनः लौटाने का प्रयास किया। अब इस उद्यान के रक्षक वो ही पूर्व आतंकवादी हैं, जिन्होंने इस उद्यान को नष्ट किया था।

ब्रज रक्षक दल – उत्तर प्रदेश के मथुरा और राजस्थान के भरतपुर जिले के लम्बे–चौड़े क्षेत्र में बसा क्षेत्र 'ब्रज भूमि' है। देश की अति प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के कारण यह क्षेत्र विश्व स्तरीय पहचान रखता है। देश–विदेश से लाखों श्रद्धालु इस क्षेत्र की यात्रा करने आते हैं। पर्यावरण की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत कुछ वर्षों पूर्व तक समृद्ध था। वर्तमान में इस क्षेत्र के वन–उपवन, प्राचीन कुण्ड, सरोवर उपेक्षा के शिकार हैं। इस क्षेत्र में बहने वाली पवित्र यमुना नदी का पानी भी प्रदूषित हो रहा है। ब्रज क्षेत्र की प्राचीन संस्कृति को बचाने के प्रयास में ब्रज रक्षक दल मुख्य भूमिका निभा रहा है। हरियाली कायम रखने के लिए पेड़ों की कटाई पर रोक लगाना तथा वन–उपवनों को पुनः हरा भरा बना कर उनकी देखभाल का काम इस संगठन द्वारा किया जा रहा है।

इसी प्रकार 'कल्पवृक्ष' नाम से एक NGO है। यह संगठन भी पर्यावरण से संबंधित मुद्दों पर सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

स्वयं सहायता समूह – यह समूह स्थानीय संसाधनों के आधार पर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन कार्य करते हैं। स्वयं सहायता समूह NGO सहकारिता सिद्धान्त के अनुसार सतत् विकास के लिए उपयुक्त संगठन कहा जा सकता है। नाबार्ड के अनुसार भारत में स्वयं सहायता समूह सक्रिय हैं। इन समूहों को मार्च 2005 तक 68 अरब 98 करोड़ रूपए का ऋण दिया जा चुका है। लगभग 3 करोड़ लोग इससे लाभान्वित हुए हैं। इन समूहों का योगदान पर्यावरण संरक्षण में उल्लेखनीय है। हस्त निर्मित माल की सप्लाई को प्रोत्साहित करने हेतु स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा दिया जाता है।

हमने कुछ उदाहरण के आधार पर गैर सरकारी संगठनों की भूमिका को समझने का प्रयास किया है। सतत् विकास के लिए पर्यावरण संरक्षण ही सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है। इस मुद्दे को ध्यान में रखते हुए कह सकते हैं कि व्यक्ति, समुदाय, सरकारी व गैर सरकारी संगठन मिल कर योजना बद्ध तरीके से कार्य करें तो भावी पीढ़ियों का जीवन सुखमय हो सकेगा।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1.नीति का क्या अर्थ है ?

2.वृहद अथवा लघु विकास परियोजना प्रारंभ करने से पूर्व किसकी स्वीकृति अनिवार्य है?

3.पर्यावरणीय कृषि से क्या तात्पर्य है ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4.वैकल्पिक ईंधन के कोई दो उदाहरण दीजिए।

5.सामुदायिक भावना से क्या तात्पर्य है ?

6.वृक्षों के कोई दो लाभ बताइए।

7.जी–8 से क्या तात्पर्य है ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1.राजनीतिक इच्छा शक्ति की कल्पना और वास्तविकता से क्या तात्पर्य हैं ?

2.राष्ट्रीय पर्यावरण नीति किन समस्याओं के कारण बनाई गयी ?

3.आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं स्वदेशी अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?

4.भारत में हरित क्रांति के क्या प्रभाव पड़े ?

5.गौवंश और जैविक कृषि पर टिप्पणी लिखिए।

6.स्वयंसेवी संस्था और गैरसरकारी संगठन (NGO) में क्या अंतर है ?

7.भारत की संस्कृति जलप्रिय संस्कृति रही है । समझाइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1.सतत् विकास एवं राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छाशक्ति के विविध आयामों की विवेचना कीजिए।

2.वैकल्पिक ईंधन उत्पादन और दक्ष मानव शक्ति के बीच सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

3.सतत् विकास हेतु व्यक्ति और समुदाय की भूमिका की विवेचना कीजिए।

4.उद्योग समूह सतत विकास में किस प्रकार बाधक है ? पर्यावरण संरक्षण में उद्योग समूह से क्या अपेक्षाएँ हैं ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई-3

अध्याय–8

संधारित/टिकाऊ कृषि एवं हरित क्रांति

पाठ्यक्रम– संधारित कृषि की आवश्यकता, हरित क्रांति– पर्यावरण पर इसका प्रभाव, फसलों के लिए मृदा का महत्व, सिंचाई पद्धतियाँ, उर्वरकों एवं खादों का उपयोग।

संधारित/टिकाऊ कृषि की आवश्यकता

(Need of SustainableAgriculture)

आजादी के बाद देश में सबसे विकट समस्या सबके लिए भोजन की थी जिसके निवारण के लिए हरित क्रांति का आगमन हुआ। वर्ष 1960 के दशक में उन्नतशील कृषि प्रौद्योगिकी जिसमें उन्नतशील बीज कृषि रसायनों व अन्य कृषि आदानो के उपयोग को अपनाकर कृषि उत्पादन में क्रांतिकारी वृद्धि दर्ज की गई व देश भी खाद्य अभाव की दशा से खाद्य भण्डार की दिशा में प्रगति करने लगा जिससे हम खाद्यान में आत्मनिर्भर हो गये।

कृषि के भरपूर उत्पादन लेने में कृषि आदानों (खाद, बीज, रासायनिक, दवाएँ आदि) का अधिकतम प्रयोग किया जाने लगा जिसके परिणामस्वरूप विगत दशकों में पर्यावरण में क्षति आते देखी गयी व जिस तरह का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सकारात्मक सम्बन्ध कृषि आदानों व उत्पादन के मध्य था। वह भी गिरने लगा। अतः कृषि से अधिकतम उत्पादन लेने के बजाय टिकाऊ या संधारित कृषि (Sustainable) की उपयोगिता उभरकर आयी। जिसमें कृषि के सभी आदानों (Inputs) का उपयोग संतुलित (Balanced) व न्यायिक (Judicious) हो ताकि उत्पादन भी अच्छा प्राप्त हो व पर्यावरण की सेहत न बिगड़े। इसके लिए कार्बनिक व जैविक कृषि पद्धतियों का उचित समावेश हो तथा रासायनिक उर्वरकों व पौधा संरक्षण रसायनों (Pesticides) का कम से कम उपयोग कर सतत् टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

कृषि क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर (स्थिर मूल्य पर)

पंचवर्षीय योजनाकाल	कृषि क्षेत्र के सकल घरेलु उत्पाद	खाद्यान्न उत्पादन
सातवी योजनावधि	3.2	–
आठवी योजनावधि	4.7	4.4
नौवी योजनावधि	2.1	1.2
दसवी योजनावधि	1.5	0.3 (प्रथम चार वर्षों में)

हरित क्रांति–पर्यावरण पर इसका प्रभाव

हमारे देश में हरित क्रांति का प्रारंभ 1968 में कृषि उत्पादन में आई अभूतपूर्व वृद्धि से देखा गया। इस वृद्धि में उन्नत किस्मों की बौनी प्रजातियों के गेहूँ, धान के बीजों का उपयोग किया गया। कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी हेतु अन्य निवेशों जैसे खाद एवं उर्वरकों, सिंचाई, कीटनाशक आदि का समावेश बढ़ाकर खाद्यान्न फसलों विशेष कर गेहूँ व चावल की उत्पादकता व उत्पादन में जबरदस्त वृद्धि हुई। परन्तु पिछले 10 वर्षों में हरित क्रांति को विराम–सा लग गया प्रतीत होता है तथा कृषि रसायन संबंधी आदानों के असंतुलित प्रयोग से पर्यावरण को भी क्षति हुई। सिंचाई की सुविधा बढ़ने से खाद्यान्न फसलों की तुलना में धान, गेहूँ का ही रकबा बढ़ा है तथा परम्परागत फसलों (जैसे– ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, कोदो आदि) की घोर उपेक्षा हुई है। जल के सिंचाई में अधिक उपयोग से एक ओर तो मृदा में लवणीकरण व क्षारीयकरण की समस्या बढ़ी है तो दूसरी ओर जल के साथ विभिन्न रसायन भूमि में भीतर की ओर जाकर भूमि व जल स्त्रोतों को प्रदूषित कर रहे हैं।

इसी तरह रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग में भी प्रतिवर्ष 9.5 प्रतिशत की वृद्धि आंकी गई है तथा हमारा देश उन चार बड़े देशों में माना जाता है जो बड़े पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कर रहे हैं। इसी तरह भारत में कृषि रसायनों के उपयोग में भी बढ़ोत्तरी दर्ज की गई। जहॉं भारत में सन् 1971 में 24 हजार टन कीटनाशकों का इस्तेमाल होता था वह बढ़कर 1991 में 82 हजार टन हो गया।

पर्यावरण के सामाजिक एवं आर्थिक आयामों की ओर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि कृषि की लागत दिनों–दिन बढ़ती गई लेकिन उस अनुपात में फसल का मूल्य नहीं बढ़ा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हरितक्रांति के अंतर्गत दक्षिण तथा मध्यभारत में व्यवसायिक फसलों (कपास, तम्बाखू, सूरजमुखी व सोयाबीन) को प्रमुखता मिली। इस व्यवसायिक खेती में एक ओर तो लागत अधिक लगती है और दूसरी ओर इन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। सिंचाई, बीज, उर्वरक, कीटनाशक, मशीन आदि का खर्च भी अधिक हो जाता है जिससे किसानों के लिए ऋण लेने की अनिवार्यता बढ़ी है।

कपास

तम्बाखू

सूरजमुखी

यद्यपि हमारा देश खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है, परन्तु विश्व बाजार के बदलते परिवेश में बढ़ती प्रतियोगिता के कारण हम आज गुणवत्ता के मामले में विश्व बाजार में खरे नहीं उतर रहे हैं, तथा निर्यात से होने वाले लाभ से हम आज भी वंचित है जबकि हम जानते हैं कि निर्यात ही किसी देश के विकास का परिचायक है। कृषि उत्पाद के निर्यात को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि हम गुणवत्तायुक्त भोज्य पदार्थों का उत्पादन करें। यह तभी संभव है कि जब हम रासायनिक उर्वरकों व कृषि रक्षा रसायनों (Pesticides) का प्रयोग कम से कम करें और उनके साथ कार्बनिक एवं जैविक पद्धतियों को भी अपनाए क्योंकि विश्व बाजार में कार्बनिक व जैविक खादों द्वारा उत्पादित खाद्य पदार्थों की मॉग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

फसलों के लिए मृदा का महत्व

हमारी मूल्यवान प्राकृतिक संपदा में मिट्टी (मृदा) का सबसे अधिक महत्व है और शायद कुछ अपवादों को छोड़कर मिट्टी के बिना कृषि (खेती) की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। मृदा पौधों (फसल) की वृद्धि के लिए एक प्राकृतिक माध्यम है। मृदा की मृदाशास्त्रीय (Edaphological) परिभाषा इस तरह की गई है –"मृदा वह प्राकृतिक पिंड है, जो विच्छेदित एवं अपक्षयित खनिज पदार्थों तथा कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से बने विभिन्न पदार्थों के परिवर्तनशील मिश्रण से प्रोफाइल के रूप में संश्लेषित होती है यह पृथ्वी को एक पतले आवरण के रूप में ढॅकती है तथा जल एवं वायु की उपयुक्त मात्रा के मिलने पर पौधों को यांत्रिक आधार तथा आंशिक जीविका प्रदान करती है" (वकमैन तथा ब्रेडी)। मृदा या मिट्टी (कृषि के संदर्भ में) प्राकृतिक क्रियायों द्वारा निर्मित चट्टानों के चूर्ण की वह पतली तह जो पृथ्वी के ऊपरी भाग को ढॅकती है जो उचित जल एवं वायु की मात्रा के साथ पौधों को संभाले व कुछ सीमा तक भोजन का अवलंब है, मृदा कहलाती है।

पौधों को खाद्य तत्व प्रदान करने के लिए ठोस एवं द्रव ही महत्वपूर्ण है। मृदा के ठोस अवयव महीन अवस्था में होते हैं तथा मृदा के अन्य अवयवों से भलीभॉति मिश्रित होते हैं। मृदा आयतन का 50 प्रतिशत भाग

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ठोस पदार्थों से घिरा रहता है। शेष आयतन को रंध्रावकाश कहते हैं जिसमें जल एवं वायु उपस्थित होते हैं। इस प्रकार मृदा को चार मुख्य अवयवों में विभाजित कर सकते हैं। ये चारों घटक आपस में एक दूसरे से इस प्रकार से मिश्रित होते हैं कि इनका अलग–अलग करना कठिन हो जाता है। एक सिल्ट–दुमट प्रकार की मृदा की ऊपरी सतह जिसमें पौधों के बढ़ने की अनुकूलतम परिस्थितियाँ हों, में आयतन के दृष्टिकोण से रंध्रावकाश लगभग 50 प्रतिशत पाया जाता है इस 50 प्रतिशत आयतन में जल व वायु दोनों शामिल होते हैं तथा शेष 50 प्रतिशत ठोस भाग में खनिज पदार्थ व कार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं।

मृदा अवयव

(Soil component)

खनिज पदार्थ (Mineral matter)	कार्बनिक पदार्थ (Organic matter)	मृदा वायु (SoilAir)	मृदा जल (Soil Water)

खनिज पदार्थ – ये चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होते हैं ये खनिज विभिन्न आकार के कणों के रूप में पाये जाते हैं।

कार्बनिक पदार्थ – अधिकांश मृदाओं के ऊपरी सतह पर भार की दृष्टि से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 1–6 प्रतिशत होती है यह मृदा में पौधों एवं जंतुओं के अवशेष से प्राप्त होता है।

मृदा वायु – यह केवल उन रंध्रावकाशों में पायी जाती है जिसमें जल नहीं होता है। वायुमंडल की तुलना में मृदा वायु में कार्बन डाईआक्साइड अधिक व आक्सीजन कम होती है तथा यह जलवाष्प से तृप्त रहती है।

मृदा जल – रंध्रावकाश में वायु के अलावा जल भी होता है। जब मृदा में जल की मात्रा अधिक होती है तो रंध्रावकाशों का अधिकांश आयतन जल द्वारा घिर जाता है और वायु के लिए स्थान शेष नहीं रहता।

मृदा जल का पौधों के लिए विशेष महत्व है इसके अभाव में न बीज का अंकुरण होता न ही पौधे की वृद्धि तथा भूमि कृषि कार्य भी संभव नहीं हो सकते।

मृदा फसलों (पौधों) की वृद्धि के लिए निम्नलिखित आवश्यक दशाएँ प्रदान करती है –

(1) आवश्यक खाद्य तत्व –

सभी पौधों को अपने पोषण के लिए कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन ही वायु एवं जल से मिलती है, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्सियम, गंधक, आयरन, बोरोन, मैंग्नीज, कॉपर, जस्ता मोलिब्डेनम और क्लोरीन मृदा से प्राप्त होती है। पौधों को अपने पोषण के लिए इन तत्वों में से कुछ की अधिक या कुछ की न्यूनतम मात्रा की आवश्यकता होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पौधों को पोषक तत्वों की आवश्यकता की मात्रा

क्र.	पोषक तत्वों की श्रेणी	पोषक तत्व का नाम मात्रानुसार	टिप्पणी
	1. मुख्य पोषक तत्व	नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम	बहुत अधिक मात्रा में आवश्यकता
	2. गौण पोषक तत्व	कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर की तुलना में कम	मुख्य पोषक तत्वों आवश्यकता
	3. सूक्ष्म पोषक तत्व बोरोन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन	आयरन, जिंक, कॉपर, मैंग्नीज मात्रा में आवश्यकता	काफी अल्प सोडियम, कोबाल्ट वेनेडियम आदि

(2) जल (Water) –

यह मृदा का एक प्रमुख अंग है, मृदा से जितने खाद्य पदार्थ लेते हैं, उनमें पानी की मात्रा सर्वाधिक होता है। पौधो के लिए पानी की मात्रा कम होने पर कोशिकाओं का विस्तार कम हो जाता है। पौधों में प्रकाश संश्लेषण के लिए पानी आवश्यक है, तथा पानी की कमी में यह आवश्यक क्रिया धीमी पड़ जाती है। यह एक अच्छा विलायक है और पोषक तत्वों को घोल लेता है तथा स्वयं भी पौधों के लिए एक पोषक का कार्य करता है। मृदा–ताप एवं मृदा–वायु भी जल के द्वारा नियंत्रित रहते हैं। जल खनिज तथा कार्बनिक पदार्थों के चारों ओर भ्रमण करता है तथा इसके अनेक पदार्थों को विलेय मृदा विलयन बनाता है।

3. मृदा वायु (SoilAir)–

पौधों की जड़ों के श्वसन के लिए ऑक्सीजन मृदा वायु से ही प्राप्त होती है। साधारणतः मृदा वायु में 20.3 प्रतिशत ऑक्सीजन, 79.01 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 0.15–0.65 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड मिलती है। मृदा वायु से उचित मात्रा में ऑक्सीजन न मिलने पर पौधों की जड़ों की वृद्धि प्रभावित होती है। फलतः पौधों की वृद्धि रूक भी जाती है। भारी अथवा जलमग्न मृदा की तुलना में बलुई मृदा में ऑक्सीजन अधिक मिलती है।

4. यांत्रिक आधार (Mechanical Support):–

कुछ मृदाओं की भौतिक एवं रासायनिक दशाऐं ऐसी होती हैं जिनमें पौधों की जड़ें (Root) आसानी से गहराई तक जा भी सकती हैं तथा फैल भी सकती हैं। इनमें वृद्धि करने वाले पौधे दृढ़ होते हैं। ये जल अभाव सहन करने वाले (Drought resistant) होंगे तथा ये मृदा के एक बड़े आयतन से पोषको को शोषित कर सकते हैं। जबकि प्राकृतिक या कृत्रिम कड़ी परतों उर्वरा संस्तरो, नमी की अत्यधिक व न्यूनतम मात्रा तथा विषैले विलेय लवणों की उपस्थिति वाली मृदाओं में पौधे की जड़ें उचित प्रकार से या बिल्कुल भी वृद्धि नहीं करती है।

पौधों की वृद्धि के लिए उपर्युक्त आवश्यक दशाओं के अतिरिक्त अनुकूल मृदा ताप का होना भी आवश्यक है क्योंकि यह पौधों द्वारा मिट्टी से खाद्य पदार्थ प्राप्त करने, जलशोषण तथा जड़ों की वृद्धि को प्रभावित करता है। इन सभी दशाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पौधे की वृद्धि के लिए मृदा एक आवश्यक माध्यम है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खाद एवं उर्वरक

(ManureAnd Fertilizer)

फसलों एवं पौधों को भी मनुष्य की तरह आहार की आवश्यकता होती है जैसे मनुष्य आहार के आभाव में बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। उसकी कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है उसी तरह पौधों में उनकी वृद्धि रूक जाती है व फलना–फूलना कम या बन्द हो जाता है अर्थात फसलों से पर्याप्त पैदावार नहीं हो पाती। अच्छी पैदावार के लिए फसलों (पौधों) को आवश्यक आहार (पोषक तत्व) उचित मात्रा में और समय पर मिलना चाहिये। पौधों को पोषक तत्व मिट्टी से मिलते हैं। पौधों की जड़ें पोषक तत्वो को ग्रहण कर पोषक तत्वों को पौधे के वायवीय भागों में स्थानान्तरित (जल के साथ) करती हैं। जहॉ उनका विभिन्न रूपों में उपयोग होता है।

किसी निश्चित क्षेत्र में बार–बार फसल उगाने से वहॉ की मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तथा धीर–धीरे वहॉ उगाई जाने वाली फसलों की पैदावार में कमी हो जाती है। पैदावार कम न हो इसके लिए आवश्यक है कि हम मिट्टी में समय–समय पर पौधों के पोषक तत्वों को मिलाये। साधारणतया इसके लिए हम खाद (Manure) या उर्वरक (Fertilizer) डालते हैं।

खाद से तात्पर्य उन सभी पदार्थों से होता है जो घास–पात, पेड़–पौधों, पशुपक्षियों के मलमूत्र से प्राप्त होते हैं। उन्हें मिट्टी में मिलाने से न केवल पौधों (फसलों) के लिए पोषक तत्व की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, बल्कि मिट्टी में ऐसा वातावरण निर्मित करते हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूलतम हो। इसमें गोबर की खाद, मुर्गी की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट खाद तथा विभिन्न प्रकार की खलियॉ आती हैं। यह सभी कार्बनिक पदार्थ होते हैं और इन्हें कार्बनिक खादों के नाम से भी जाना जाता है।

गोबर की खाद (Farmyard Manure)– यह सर्वाधिक उपयोग में आने वाली खाद है। इसका उपयोग प्राचीनकाल से होता आ रहा है। इसमें गाय, भैंस आदि का गोबर, मूत्र उनके बिछावन वाला चारा तथा अन्य पदार्थ होते हैं। जिसको भलीभॉति सड़ाकर खेत की मिट्टी में मिलाते हैं। उन्न्त ढंग से बनायी गयी सड़ी गोबर की खाद में 0.5 प्रतिशत नत्रजन, 0.3 प्रतिशत स्फूर (फास्फोरस) व 0.57 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है।

विभिन्न खादों में पोषक तत्वों की औसत प्रतिशत(%)

खाद का नाम	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
गोबर खाद (सूखी)	04–1.5	0.3–0.8	0.3–0.9
कम्पोस्ट (ग्रामीण)	0.5–1.0	0.4–0.8	0.8–1.2
कम्पोस्ट शहरी	0.7–2.0	0.9–3.0	1.0–2.0

कम्पोस्ट खाद (Compost Manure)– गोबर विभिन्न फसलों, सब्जियों के अवशेष जानवरों के रखे जाने वाले स्थान के अवशेष (Cattleshed waste) को नियंत्रित अवस्था में अपघटन (Decomposition) कराकर जो कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) प्राप्त किया जाता है उसे कम्पोस्ट कहते हैं। गोबर की खाद की तुलना में इसमें कुछ अधिक मात्रा में पोषक तत्व होते हैं। कम्पोस्ट बनाने की नाडेप विधि सर्वोत्तम होती है व सर्वाधिक प्रचलन में है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खाद बनाने की विधियाँ

जमीन की सतह से नीचे	भूमि सतह से ऊपर
1. गड्ढे या खाई में खाद बनाना (इंदौर विधि)	नाडेप विधि से खाद बनाना
2. गोबर गैस संयत्र में स्लरी की खाद (बायो डाइजेस्टि घोल)	केचुएँ द्वारा खाद बनाना (वर्मी–कम्पोस्ट)

हरी खाद (Green Manure)– कुछ शीघ्र बढ़ने वाली फसलों विशेषकर दलहनी फसलों को उगाकर, उनकी मिट्टी में जुताई आदि क्रिया द्वारा मिला देते हैं। इससे उस भूमि में जीवांश की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा नत्रजन तत्व की मात्रा में अभिवृद्धि हो जाती है। जब किसी दलहनी फसल को हरी खाद के रूप में उगाकर भूमि में मिलाया जाता है। उसमें भूमि में 8 से 25 टन फसल पदार्थ (Green matter) तथा 60–90 किलाग्राम नाइट्रोजन की मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बढ़ती है। सामान्य तौर पर मनई, (Sunhemp) ठेंचा (Sesbenia) लोवियां (Cowpea) वरसीम (Egglan clover) तथा अन्य दलहनी (Pulse crops) का उपयोग हरी खाद के रूप में करते हैं।

खलियाँ (Oil cakes) तिलहनी फसलों के बीजों से तेल निकालने के बाद जो अवशेष बचता है उसको खली कहते हैं। खाद्य खलियों (Edible) को पशुओं के भोजन के रूप में उपयोग करते हैं परन्तु अखाद्य (Non-edible) खलियों को संतृप्त कार्बनिक खाद (Concentrated organic manure) के रूप में भूमि में मिलाते हैं। यह भूमि में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि तथा पोषक तत्वों विशेषकर नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करते हैं। खलियों में महुआ की खली, नीम खली, करंज की खली व अण्डी की खली का प्रयोग प्रचलित है।

विभिन्न खलियों में पोषक तत्वों की औसत प्रतिशत मात्रा (%)

क्र.	खली का नाम	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
1.	अरण्डी की खली	4.37	1.85	1.39
2.	बिनौले की खली	3.99	1.89	1.62
3.	नीम की खली	5.22	1.08	1.48
4.	महुआ की खली	2.51	0.80	1.85
5.	करंज की खली	3.97	0.94	1.37
6.	मूँगफली की खली	7.29	1.50	1.33
7.	सरसों की खली	5.21	1.84	1.23
8.	तिल की खली	6.22	2.09	1.26
9.	अलसी की खली	5.56	1.44	1.28

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उर्वरक

(Fertilizer)

ये वे अकार्बनिक या खनिज पदार्थ होते हैं जो आकार्बनिक उद्गमों से, कारखानों या प्राकृतिक या नैसर्गिक निक्षेपों से प्राप्त होते हैं इन्हें हम उर्वरक या रासायनिक उर्वरक कहते हैं। खाद की तुलना में इनकी पौधों में पोषक तत्वों की मात्रा ज्यादा संघनित होती है। जैसे यूरिया में 46 प्रतिशत नत्रजन होता है। इनका परिवहन आसान होता है। पोषक तत्वों की उपलब्धता के आधार पर इन्हें वर्गीकृत किया गया है।

नाइट्रोजन उर्वरक (Nitrogenous fertilizer)–

यह नाइट्रोजन नामक तत्व की उपलब्धता को भूमि में बढ़ाते है। उदाहरण यूरिया आदि।

फास्फेट उर्वरक (Phosphate fertilizer)–

इस वर्ग के उर्वरक फास्फोरस तत्व की उपलब्धता बढ़ाते हैं। ये प्राकृतिक रूप से उपलब्ध जैसे रॉकफास्फेट या कृत्रिम रूप से निर्मित फास्फेट उर्वरक जैसे सुपरफास्फेट आदि हो सकते हैं।

पोटाश युक्त उर्वरक (Potash fertilizer)–

पोटाश तत्व भी फसलों के लिए एक प्रमुख पोषक तत्व है जो फसलों की बीजों की गुणवंत्ता बढ़ाता है व रोग रोधिता गुणों को विकसित करने में सहायक है। उदाहरण–म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा सल्फेट ऑफ पोटाश।

जटिल उर्वरक (Compound fertilizer)–

ऐसे उर्वरक जो दो या दो से अधिक पोषक तत्वों की पूर्ति निश्चित अनुपात में करते हैं जटिल उर्वरक कहलाते हैं। उदाहरण–डाई अमोनियम फास्फेट (डी.ए.पी.) बहुत लोकप्रिय जटिल उर्वरक है जो नाइट्रोजन व फास्फोरस दोनों तत्वों को उपलब्ध करता है।

ऐसे उर्वरकों को सीधे खेतों में उपयोग करने से दो अलग–अलग उर्वरकों को नहीं खरीदना पड़ता तथा उनके आनुपातिक मिश्रण बनाने की प्रक्रिया से छुटकारा मिल जाता है।

इसके अतिरिक्त पौधों को कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। ऐसे उर्वरक जो सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता हेतु प्रयोग किये जाते हैं सूक्ष्म पोषक उर्वरक (Micro nutrient fertilizer) कहलाते हैं। इनका उपयोग काफी कम मात्रा में किया जाता है। यदि मृदा परीक्षणों के सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी हो या फसल में सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी के लक्षण दिखाई दे ऐसी दशा में ही इनका प्रयोग किया जाता है। जैसे जिंक सल्फेट आदि।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रमुख उर्वरक एवं उनमें उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा

उर्वरक का नाम	पोषक तत्व प्रतिशत मात्रा			
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	अन्य
(अ) नाइट्रोजन युक्त				
अमोनियम नाइट्रेट	20.21	–	–	–
अमोनियम नाइट्रेट	17.18	–	–	–
अर्मोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26.0	–	–	–
यूरिया	46.0	–	–	–
कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट	26.0	–	–	–
अमोनियम क्लोराइड	25.26	–	–	–
(ब) फास्फोरस युक्त				
सिग्गल सुपर फास्फेट	–	16.0	–	–
ट्रिपिल सुपरफास्फेट	–	44.0	–	–
राक फास्फेट	–	26.0	–	–
(स) पोटाशयुक्त				
म्यूरेट ऑफ पोटाश	–	–	60	–
पोटैशियम सल्फेट	–	–	48	–
(द) एक से अधिक तत्व वाले उर्वरक				
डाई अमोनियम फास्फेट	18	46	–	–
एन.पी.के.				
विभिन्न उत्पाद	17	17	17	–
(17:17:17)	10	26	26	–
(12:32:16)	12	32	16	–
(इ) सूक्ष्म पोषक तत्व वाले उर्वरक				
जिंक सल्फेट	–	–	–	21 (zn)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सिंचाई पद्धतियाँ

(Systems of Irrigation)

पौधों की जल आवश्यकता की कृत्रिम ढंग से आपूर्ति को सिंचाई कहते हैं। सिंचाई हेतु जल की मात्रा का निर्धारण भूमि के गुण पौधों की अवस्था तथा आवश्यकता, सिंचाई के स्त्रोत सिंचाई जल के गुण तथा मौसम की दशा पर निर्भर करती है। इन्हें मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त करते है –

1.सतह सिंचाई (Surface Irrigation)

2.अधो–सतह सिंचाई (Sub Surface Irrigation)

3.टपक सिंचाई (Drip Irrigation)

4.बौछारी सिंचाई (Sprinkler Irrigation)

1. सतही सिंचाई पद्धति (Surface Irrigation system):–

इस पद्धति में पानी को सीधे भूमि की सतह पर दिया जाता है। इसमें पानी नहर या नाली द्वारा भूमि की सतह के ऊँचे स्थान से छोड़ा जाता है जो भूमि के ढलाव के आधार पर बहता हुआ भूमि को सिंचित करता है। इस पद्धति में खेत में फसल की बुवाई के समय पानी के वितरण हेतु नालियों आदि का निर्माण करना होता है। क्योंकि भूमि की तैयारी के समय (जुताई आदि क्रियाओं) के समय इनमें काफी टूट–फूट हो जाती है। भूमि जितनी समतल उतनी ही अच्छी सिंचाई की क्षमता होगी। इस पद्धति के अंतर्गत निम्नलिखित पद्धतियाँ है –

बाढ़कृत सिंचाई विधि

1. बाढ़कृत सिंचाई (Free or wild flooding) –

इस विधि में पूरे खेत में जल भरने दिया जाता है। यह अवधि उस दशा में उपयुक्त रहती है जब सिंचाई जल की प्रचुरता हो तथा यह फसल व मृदा को नुकसान न करे जैसे धान आदि। इसमें खेत के समतलीकरण व खेत की मेड़ों को मजबूत व जल रोकने की क्षमता वाला होने की जरूरत होती है। इसमें जल वितरण के लिए अलग से नालियाँ आदि बनाने में भूमि की बर्बादी नहीं होती न ही सिंचाई के दौरान ज्यादा देखभाल की जरूरत होती है। परन्तु इस पद्धति में सिंचाई के दौरान जल के काफी हिस्से का नुकसान हो जाता है तथा पोषक तत्वों का प्रवधन व अन्य प्रवधन क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

नियंत्रित बाढ़कृत सिंचाई विधि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. नियंत्रित बाढ़कृत सिंचाई विधि (Check flooding or check basin) –

इस विधि में सिंचाई जल को भूमि के एक समतल घिरे हुए भाग में छोड़ते हैं। इस समतल भाग का आकार व आकृति मिट्टी के प्रकार, सिंचाई, जल बहाव आदि के ऊपर निर्भर रहता है। इस समतल भाग की माप सामान्यतः 10 से 100 वर्ग मीटर तथा आकृति आयताकार या वर्गाकार हो सकती है। सिंचाई जल बहाव के लिए 2–3 प्रतिशत ढलान रखते हैं। ज्यादा ढलाव वाली भूमियों में सीढ़ीनुमा क्यारियॉ बना कर भी सिंचाई की जा सकती है। अधिकतर फसलें की सिंचाई इस विधि से कर सकते हैं। परन्तु ऐसी फसलें जिनकी जड़ें (Root) जलपूर्ण संतृप्तता के लिए संवेदनशील हो, उपयुक्त नहीं है। जैसे आलू, तंबाखू, मक्का व मिर्च आदि। इसके अतिरिक्त इस विधि में खेत की काफी जगह का उपयोग सिंचाई, नालियॉ आदि बनाने में हो जाता है इनके निर्माण व मरम्मत में खर्च व श्रम लगता है।

थाला या मुद्रिका विधि (Basin or ring methed):–

यह विधि समान्यतौर पर बाग–बगीचों की सिंचाई हेतु तथा ऐसी फसलों की सिंचाई हेतु अपनाई जाती है। जिसमें पौधे से पौधे की दूरी का अन्तराल अधिक रखा जाता है। इसे वृक्षों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाकर गोल, चौकोर या वर्गाकार रूप में 90 से.मी. से 30 मी. तक थाले तैयार करते हैं। इसमें वृक्षों के तनों से 30–40 से. मी. की दूरी पर 15–20 से.मी. ऊँचे थाले बनाये जाते हैं, जिससे कि पानी वृक्षों के तनो के स्पर्श में न रहे। वृक्षों की दो कतारों के मध्य नाली बनाकर उसे थाला में पहुचाया जाता है। इस विधि में सिंचाई के द्वारा जल सिर्फ थालें में दिया जाता है। पूरे खेत की सिंचाई नहीं की जाती है। अतः जल उपयोग क्षमता बढ़ जाती है। कुछ मेढ़ बनाकर सब्जियों जैसे कद्दू, कुम्हड़ा आदि में भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

कूड़ सिंचाई विधि (Furrow Irrigation method) –

जिन फसलों को कतार में बोया जाता है उनमें दो कतारों (Ridges) के बीच में कूड में पानी दिया जाता है। कूड (Furrow) का निर्माण ढलान के समानान्तर किया जाता है जो फसलें जिनकी जड़ें मृदा में जल से तृप्तता के प्रति संवेदनशील होती हैं उनके लिए यह विधि उपयुक्त होती है। इसमें सिंचाई जल का फैलाव जड़ क्षेत्र समतल (क्षैतिज) होती है। ऐसी फसलें जिनमें भूमिगत खाद्य संग्रह होता है जैसे आलू, शकरकन्द, चुकन्दर, मूली आदि। उसके अलावा मक्का, कपास व गन्ना आदि फसलों की सिंचाई भी इस विधि से की जा सकती है।

कूड़ सिंचाई विधि

पतले कूड़ (Small Furrow) बनाकर ऐसी फसलों की सिंचाई की जा सकती है। जिसमें पौधे की दूरी का अन्तराल कम होता है। जैसे–सरसों, चना, मटर, सोयाबीन व अलसी आदि इस परिवर्तित विधि को झुर्रादार कूड विधि (Carrogated furrows method) के नाम से जानते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सीमान्त पट्टी विधि (BORDER STRIP METHOD):–

इस विधि में खेत को संकरी लम्बी नालियों के साथ–साथ लम्बवत् संकरी पट्टियों में बॉट लिया जाता है। पट्टियों की चौड़ाई 2 से 10 मीटर तथा लम्बाई 10 से 300 मीटर रखते हैं। ढाल के अनुसार अधिक भी रखी जा सकती हैं। प्रत्येक पट्टी को अच्छी तरह समतल करते हैं ताकि ऊपरी तल पर नाली बनाते है। इस विधि का उपयोग ऐसी फसलों की सिंचाई में करते जिसमें पौधे से पौधे की दूरी का अंतराल कम होता है। चारे वाली फसलों के लिए इस विधि से सिंचाई की जाती है। यह विधि गेहूँ, जौ, सरसों, मटर, दलहन आदि फसलों के लिए उपयुक्त है।

सीमान्त पट्टी विधि

अधो सतह या अद्य स्थलीय सिंचाई विधि (Subsurface Irrigation) –

इस प्रकार की सिंचाई उन क्षेत्रों पर अधिक लाभकारी पायी जाती है जहॉ पर अधो सतह सख्त होती है। सख्त सतह तक नालियॉ खोदकर इसमें कंकड़, पत्थर भरकर ऊपर से ढॅक देते हैं। नालियों में पानी भर दिया जाता है। नालियों में कंकड पत्थर के स्थान पर टाइल्स छिद्रयुक्त लोहे अथवा सीमेंट के पाइप प्रयोग किये जाते हैं। मुख्य नाली का धरातल ऊपर व सहायक नालियॉ इससे नीचे धरातल पर रखी जाती हैं जिससे पानी सभी जगह आसानी से पहुॅच जाता है। मुख्य नाली का संबंध सिंचाई के साधन से कर देते हैं। पानी सहायक नालियों में पहुॅचकर रंध्र कूपों की क्रिया से जड़ों के क्षेत्र में पहुॅच जाता है। लवणीय मृदाओं में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

लाभ (Advantages)

1.पानी की फसलों को सींचने की क्षमता बढ़ जाती है।

2.वाष्पीकरण द्वारा पानी नष्ट होने से बच जाता है।

3.खेतों में कृषि यंत्रों का प्रयोग सुविधापूर्वक किया जाता है, क्योंकि खेत समतल रहते हैं।

हानि (Disadvantages)–

1.केशिका क्रिया द्वारा भूमि के नीचे की परतों के विलेय लवण भूमि के ऊपर आ जाते हैं और भूमि के उसर होने का भय बना रहता है।

2.सिंचाई की यह विधि केवल उन्हीं स्थानों में अपनायी जा सकती है जहॉ फसलें स्थाई रूप से लगाई जा सकती हैं अथवा जहॉ फसलें स्थाई रूप से लगाई गई हैं।

इस विधि के लिए अनुकूल परिस्थितियॉ निम्न प्रकार हैं :–

1.पौधों के जड़ क्षेत्र में पारगम्य भूमि का होना,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.भूमि का समतल होना,

3.समुचित ढाल,

4.सिंचाई वाला जल उच्च स्तर का हो।

3. टपक सिंचाई (Drip irrigation) –

सिंचाई की इस विधि ने कृषि बागवानी एवं पुष्पोत्पादन के क्षेत्र में नई क्रांति का संचार किया है। इसे सूक्ष्म (माइक्रो) सिंचाई पद्धति के नाम से भी जाना जाता है। विश्व के कुछ विकसित देशों में इस प्रणाली से 50–60 प्रतिशत भूमि में सिंचाई की जाती है। अन्य सिंचाई की पद्धतियों की तुलना में इससे 30–60 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है तथा शुष्क, अर्धशुष्क, ऊँची–नीची भूमियों तथा पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचाई युक्त कृषि (Irrigated cultivation) किया जा सकता है।

सिंचाई की इस पद्धति में जल की सही मात्रा पौधों के प्रभावी जड़ क्षेत्र में देते हैं। पानी की मात्रा पौधों की प्रजातियों, उम्र पौधे परिक्षेत्र (केनापी) स्थान में रखकर वितरित करते हैं। इसके साथ ही जरूरत पड़ने पर पानी में घुलनशील पोषक तत्व व रासायनिक उर्वरक भी पानी में घोलकर पौधों के जड़ क्षेत्र में पहुँचाये जाते हैं।

इस पद्धति में पानी प्लास्टिक पाइपों के द्वारा जलस्त्रोत से विशेष प्रकार की पतली नलियों (ड्रिपर्स) द्वारा पहुँचाया एवं नियंत्रित किया जाता है। यह पद्धति मुख्यतः वागवानी फसलों कतार से बोई जाने वाली सब्जियों एवं गन्ने आदि फसल के लिए उपयोगी पायी गई है। इस पद्धति द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि के साथ–साथ पानी की भी बचत होती है।

टपक या बूंद–बूद (Drip) सिंचाई के अंग

1. पम्प – पम्प की क्षमता सिंचाई किये जाने वाले क्षेत्र पर निर्भर करती है। एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए 1 से 1.5 हार्स पावर का पम्प उचित रहता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. जल संग्रहण टैंक – जिन स्थानों पर नल–कूप आदि उपलब्ध नहीं होते हैं। वहॉं खेत के सबसे ऊँचे स्थान पर जल संग्रहण टैंक का निर्माण किया जाता है।

3. फिल्टर – जल संग्रहण टैंक से पौधों को भेजे जाने वाले पानी को फिल्टर द्वारा छाना जाता है। जिससे पाइप गंदगी द्वारा बंद न हो जाय। साधारणतया ग्रेवाल फिल्टर या स्क्रीन फिल्टर का उपयोग किया जाता है। लेकिन जब मिट्‌टी, बालू, कचड़ा एवं अन्य माध्यमों से प्रदूषित जल उपयोग में लाया जाना हो तो सैण्ड फिल्टर का प्रयोग किया जाता है।

4. मुख्य नली – यह प्लास्टिक निर्मित पाइप होता है जो मुख्य जल स्त्रोत (पम्प) या संग्रहण टैंक से पानी को प्रक्षेत्र तक पहुॅंचाने का कार्य करती है।

5. उपमुख्य नली – ये पाईप भी प्लास्टिक के होते हैं। इनकों मुख्य नली से जोड़ा जाता है। यह मुख्य पाइप से पानी लेकर लेटरल (lateral pipes) पाइपों को पानी पहुॅंचाते हैं।

6. लेटरल पाईप – ये कठोर प्लास्टिक के पाइप हैं। जो उपमुख्य पाइप से जुड़े होते हैं। पौधे के प्रभावी जड़ क्षेत्र में फैले रहते हैं।

7. ड्रिपर्स – यह प्लास्टिक से बना छोटा पुर्जा होता है जिसे लेटरल पाइप से जोड़कर बूॅंद–बूॅंद करके पानी उपलब्ध कराया जाता है। ये विभिन्न क्षमताओं के होते हैं।

ड्रिप सिंचाई पद्धति के लाभ –

1.इस पद्धति के माध्यम से 30 से 60 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है।

2.उत्पादकता में 50–100 प्रतिशत तथा उत्पादन में 2–4 गुना तक वृद्धि होती है।

3.फसलों की गुणवत्ता में सुधार होता है, जैसे–स्वाद, रंग एवं आकार इत्यादि।

4.श्रम, धन, जल एवं समय की बचत होती है।

5.ऊर्जा की बचत होती है।

6.खेतों एवं सिंचाई नालियों में अनावश्यक खरपतवार पैदा नहीं होते हैं।

7.उर्वरकीकरण (फर्टीगेशन) द्वारा मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग सरल एवं प्रभावी ढंग से किया जाता है।

8.इस पद्धति से ऊबड़–खाबड़ तथा ऊॅंची–नीची जमीनों का उपयोग कर सिंचाई कर सकते हैं।

बौछारी या फव्वारा पद्धति (Sprinkler System) –

इस पद्धति में जल को फव्वारे के रूप में हवा में छोड़ दिया जाता है, जिसके कारण जल वर्षा के पानी की तरह जमीन सतह पर लगी फसलों को प्राप्त होता है। इस प्रकार जल को बौछार के रूप में बनाने के लिए

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

एक निश्चित दबाव के अंतर्गत जल को सूक्ष्म छिद्रयुक्त उपकरण से प्रवाहित कराया जाता है। यह निश्चित दबाव पम्प के द्वारा निर्मित किया जाता है।

फव्वारा सिंचाई पद्धति

फव्वारा सिंचाई की विशेषताएँ –

1. सभी प्रकार की फसलों एवं मृदा में उपयोग संभव अधिक जल भाग वाली फसलों को छोड़कर जैसे– धान आदि।
2. रेतीली भूमि के लिए उपयुक्त सिंचाई पद्धति।
3. संयंत्र प्रतिस्थापन एवं रखरखाव में आसानी।
4. असमतल भूमि में भी सिंचाई का कार्य संभव।
5. घुलनशील उर्वरक, कीटनाशक एवं फफूँदी नाशक रसायनों का इस प्रणाली द्वारा उपयोग संभव।
6. श्रम खर्च में बचत।
7. सिंचाई के लिए क्यारियों एवं नालियों को बनाने में भूमि ह्रास नहीं होता।

फव्वारा सिंचाई के मुख्य अवयव –

यह उपकरण निम्न भागों से मिलकर बना होता है–

1. पम्प
2. मुख्य पाईप
3. उप – पाईप (लेटरल्स)
4. स्प्रिंकलर शिरा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

फव्वारा सिंचाई की सीमाएँ –

1. वायु अवरोध के कारण जल असमान मात्रा में फसलों तक पहुँचाता है।
2. पके हुए फलों को बौछारों से बचाना चाहिए।
3. सिंचाई जल घुलनशील नमक, रेत, कचरा, काई से मुक्त होना चाहिए।
4. सिंचाई पद्धति उपकरणों में प्रारंभिक खर्च/लागत ज्यादा आता है।
5. अधिक जल ग्रहण क्षमता वाली मिट्टी (दोमट मिट्टी) इस पद्धति के लिए लाभप्रद नहीं है।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. टिकाऊ कृषि क्या है ?
2. हरितक्रांति क्या है ?
3. मिट्टी/मृदा को परिभाषित कीजिए।
4. पौधों के पोषक तत्व क्या हैं ?
5. खलियॉ क्या हैं ?
6. गोबर खाद व कम्पोस्ट में क्या अंतर है ?
7. थाला सिंचाई विधि क्या है ?
8. टपक सिंचाई की विशेषताएँ क्या हैं ?
9. फव्वारा सिंचाई क्या है ?
10. अधोसतहीय (Subsurface) सिंचाई क्या है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संधारित/टिकाऊ कृषि से आप क्या समझते हैं ?
2. मृदा अवयवों से आप क्या समझते हैं ?
3. मृदा, फसलों के लिए क्या आवश्यक दशाएं प्रदान करती हैं ?
4. खाद एवं उर्वरक में क्या समानताएं व असमानताएँ हैं ?
5. कार्बनिक खाद कितने प्रकार के होते हैं ?
6. उर्वरकों का वर्गीकरण कीजिए।
7. फव्वारा व टपक सिंचाई में क्या अन्तर हैं ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबन्धात्मक प्रश्न

1. हरितक्रांति के पर्यावरण पर हुए प्रभावों की विवेचना कीजिये।
2. फसलोत्पादन के लिए मृदा के महत्व पर प्रकाश डालिये। खाद एवं उर्वरकों का उपयोग क्यों आवश्यक है?
3. सिंचाई की सतहीय (Surface) प्रणाली का वर्णन करें।
4. टपक सिंचाई (Drip Irrigation) का प्रचलन क्यों बढ़ रहा है? समझाइये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–9

फसल सुरक्षा

पाठ्यक्रम –

1. प्रमुख पादप नाशक, प्रमुख पादप रोग, इनके नियंत्रण की प्रमुख विधियॉ
2. पर्यावरण पर एग्रोकेमिकल्स का प्रभाव
3. संधारित/टिकाऊ कृषि के तत्व, मिश्रित फार्मिंग, मिश्रित खेती, फसल चक्र, जैविकएवं आर्थिक पहलू, जैव उर्वरकों एवं जैव पीड़क नाशकों का उपयोग, जैविक नियंत्रण।

फसल सुरक्षा –

फसलों को हानि पहुंचाने वाले कारकों में खरपतवार (Weed), रोग (Disease) तथा कीट व्याधियॉ (Insect pest) प्रमुख हैं। इन हानि पहुंचाने वाले कारकों को नियंत्रित कर ही फसल सुरक्षा संभव है।

खरपतवार व इनका नियंत्रण :–

जब मनुष्य ने खेती करके फसल उगाना शुरू किया तो इस कार्य में अनावश्यक घास – फूस ने बड़ी कठिनाइयॉ पैदा की। ये अवांछित पौधे जो खेती के लिए हानिप्रद है और फसल के लिए उपलब्ध पोषक तत्व, जल, सूर्य के प्रकाश का उपयोग करके उनसे प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करते हैं। परिणामस्वरूप फसल की उपज कम हो जाती है।

प्रमुख फसलों में खरपतवारों द्वारा हानि

क्र.	फसल का नाम	खरपतवारो द्वारा उपज में हानि %
1.	धान	41.6
2.	गेहूॅ	16.0
3.	मक्का	89.8
4.	सोयाबीन	30.0
5.	मूंगफली	33.8
6.	गन्ना	34.2
7.	अलसी	34.2

इनके नियंत्रण हेतु भौतिक विधियों के अंतर्गत जैसे–खेत में खरपतवारों को हाथ से उखाड़ना, कृषि यंत्रों जैसे–खुरपी, फावड़ा आदि का प्रयोग करते हैं। बड़े कृषि क्षेत्र में पशु या मशीन द्वारा चलित यंत्रों का प्रयोग करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कर्षण विधियॉं (Culture methods) जिसमें अच्छे स्वच्छ बीजों का उपयोग अच्छे अंकुरण क्षमता वाले बीजों का उपयोग कतार बोनी आदि का समावेश करते हैं।

रासायनिक विधि से खरपतवार नष्ट करने का प्रयोग विगत 4–5 दशक से ही प्रारम्भ हुआ व आधुनिक कृषि प्रणाली में इसे मुख्य रूप से अपनाया जाता है। रासायनिक दवायें जिनका प्रयोग खरपतवार मारने के लिए किया जाता है।

शाकनाशी दवायें (Weedicide/Herbicide) कहलाती हैं। यह खरपतवारों में अनेक प्रकार के जैव रसायनिक व जैव क्रियात्मक परिवर्तन करती है जिसके प्रभाव से खरपतवार पौधे नष्ट हो जाते हैं। विकासशील देशों में जहॉं मानव श्रम प्रचुरता से उपलब्ध है। वहॉं खरपतवार नाशी रासायनों का कृषि में कम उपयोग होता है। जबकि विकसित देशों में यह रसायन बहुतायत से उपयोग में लाये जाते हैं।

फसलों की प्रमुख खरपतवार नाशक दवाऍं व उनके अनुप्रयोग

क्र.	फसल	खरपतवार नाशक दवा का नाम	प्रयोग करने का समय
1.	गेहूँ	2.4 डी आइसोप्रूटान पेण्डी मेथालिन	बुआई के 30–35 बाद –''– अंकुरण पूर्व
2.	धान	ब्यूटाक्लोर फलूक्लोरालिन वेन्थियो कार्व	पौधे रोपण के तीन – चार दिन बाद छिड़काव
3.	मक्का	अट्राजिन सिमाजिन	अंकुरण पूर्व
4.	सोयाबीन	एलाक्लोर पेन्डीमेथालिन	अंकुरण पूर्व
5.	दलहन व तिलहन	फलक्लोरेलिन क्लोरीनाफप	अंकुरण पूर्व अंकुरण के बाद

प्रमुख पादप रोग व इनका नियंत्रण –

फसलों में रोगों का उत्पन्न होना फसल (पौधों) एवं रोगकारकों (जैविक एवं अजैविक) के मध्य अभिक्रिया के फलस्वरूप होता है। यह अभिक्रिया रोग कारकों के वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण की उपलब्धता पर ही होती है। रोगों के परिणामस्वरूप फसलों में विभिन्न तरह की विषमताएं पौधों पर रोग लक्षणों के रूप में उभरती हैं। अंततः फसलों के उत्पादन पर मात्रात्मक व गुणात्मक क्षति होती है।

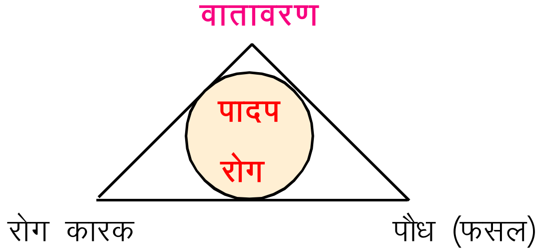

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रोग उत्पन्न करने वाले कारकों में जैविक कारक सामान्यतः सूक्ष्मजीव होते हैं। जिन्हें रोगजनक (Pathogens) कहा जाता हैं। इनमें मुख्यतः कवक जीवाणु – विषाणु व फाइटोप्लाज्मा (Phytoplasma) आते हैं। इसके अतिरिक्त सूत्रकृमि (Nematodes) व परजीवी पौधे के रूप में अमरबेल (Cuscutta) आदि भी फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। अजैविक कारकों में प्रतिकूल वातावरणीय दशाएँ पौधे व फसल रोगों के लिए उत्तरदायी होती हैं।

सारणी – फसलों के प्रमुख रोग

क्र.	फसलें	रोग का नाम	रोगकारक
1.	अनाज में	रतुआ (Rust)	कवक
	धान्य वर्ग	कण्डवा (Smut)	कवक
2.	सब्जियों में	पंछेती अंगमारी (Late blight)	कवक
	आलू, टमाटर	जड़ गठान/मूल ग्रंथि(Root knot)	सूत्रकृमि
	लौकी में		
3.	फलों में		
	नीबू	कैंकर रोग (Canker)	जीवाणु
	नीबू	तीव्रक्षय रोग (Decline)	विषाणु
	पपीता	मोजेइक विषाणु	

पादप रोग व इनके नियंत्रण

कर्षण क्रियाएँ (Cultural Method):-

फसल (पौधों) रोगों के नियंत्रण हेतु कर्षण क्रियाओं के अंतर्गत फसल चक्र अपनाना, प्रमाणीकृत बीजों का उपयोग करना, ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई करना, फसलों की बोनी के समय में हरे फेर शामिल है।

रासायनिक नियंत्रण (Chemical Method) :–

रासायनिक नियंत्रण की विधियों में बीजों को बोने से पहले दवाओं द्वारा उपचार व रासायनिक दवाओं का फसल पर छिड़काव आदि लोकप्रिय है। रोग नियंत्रण में उपयोग की जाने वाली दवाओं को कवकनाशी दवाएँ (Fungicide) कहते हैं, जैसे – बोर्डो मिश्रण आदि।

जैविक नियंत्रण (Biological method) :–

जैविक नियंत्रण की विधियाँ जो वर्तमान में ज्यादा प्रसारित व प्रचारित की जा रही हैं। इसमें जैवकीटनाशकों जैसे–ट्राइकोडर्मा कवक की प्रजातियाँ, स्यूडोमोनास फ्लोरोसेन्स (Pseudomonas flouresence) वैसिलस जीवाणु तथा अन्य परजीवी कवक जातियाँ (Resistance Varieties) प्रयोग में लाई जाती है। इसके साथ–साथ कुछ उन्नतशील रोगरोधी जातियाँ भी रोग नियंत्रण की उत्तम विधियों में शुमार है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विभिन्न कृषि रसायनों के प्रकार

क्र.	कृषि रसायन	उनके उपयोग
1.	कीटनाशी जैसे–इण्डोसल्फान, मैलाथियान	कीटों के नियंत्रण हेतु।
2.	कवकनाशी–बोर्डो मिश्र कार्वेन्डाजिम	रोगों के नियंत्रण हेतु।
3.	शाकनाशी/खरपतवारनाशी–2–4डी, पेन्डी मिथालीन	खरपतवारों को नष्ट करने हेतु।
4.	सूत्रकृमिनाशी–नेमागॉन, फेनसल्फोथियॉन	निमेटोटस नष्ट करने हेतु
5.	मूषकनाशी–जिंक फास्फाइड, वार्फरीन केक	चूहों को मारने हेतु।
6.	पादपवृद्धि नियामक–इण्डोल ऐसिटिक एसिड, जिब्रेलीन।	पौधों की वृद्धि, फूल–फल लगने हेतु।

पर्यावरण पर कृषि रसायनों (एग्रोकेमिकल्स) का प्रभाव

जनसंख्या वृद्धि के साथ खाद्यान्नों की आपूर्ति सुनिश्चित करने एवं अधिकाधिक उत्पादन पाने की आकांक्षा के फलस्वरूप रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशी व रोग नाशियों का कृषि में प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है। वहीं दूसरी ओर परम्परागत कर्षण क्रियाओं व कार्बनिक खादों के प्रति उपेक्षा भी की जा रही है। फलस्वरूप कृषि रसायनों के अधांधुध अविवेकपूर्ण एवं अनियमित प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति भूमिगत जल एवं पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। कवक नाशियों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से मिट्टी में तॉबे में बढ़ोत्तरी है व कीटनाशियों के अधिक प्रयोग से उनके अवशेषों का उत्पादित वस्तुओं में जाने की संभावना बढ़ गई है। इसके अलावा इनके प्रयोग से मृदा के कुछ लाभकारी जीव–जन्तु जैसे केंचुएं आदि भी मर जाते हैं। कीटों में प्रतिरोधिता पैदा होती है और पर्यावरण भी प्रदूषित होता है।

कीटनाशी खरपतार नाशी एवं कवक नाशी आदि ही प्रमुख रूप से कृषि में उपयोग में आने वाले रसायन हैं। इनका उपयोग क्रमशः कीट नियंत्रण, खरपतवार नियंत्रण एवं फसल रोग नियंत्रण हेतु किया जाता है। विश्वभर में लगभग 2.6 मिलियन टन कृषि रसायनों का उपयोग किया जाता है। जिसका 85 प्रतिशत सीधे खेतों में प्रयुक्त होता है। कुल कृषि रसायनों की खपत का तीन चौथाई हिस्सा विकसित देशों द्वारा ही उपयोग में लाया जाता है, जिसमें यूरोपीय देश व जापान प्रमुख हैं। हमारे देश में भी लगातार कृषि रसायनों का उपयोग बढ़ रहा है व दक्षिणी एशियाई देशों में कृषि रसायन उत्पादन में भारत का स्थान सर्वोपरि है। वर्तमान में देश में 181 कृषि रसायनों को कृषि एवं स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु उपयोग में लाये जाने की अनुमति है जबकि 27 कृषि रसायनों को निषेध सूची में डाला गया है।

कृषि रसायन पर्यावरण श्रृंखला में एक घटक से दूसरे घटक में विभिन्न कारकों द्वारा फैलते हैं। जब इनका फसलों में छिड़काव किया जाता है तो वह हवा में, मृदा में व जल में मिल जाते हैं। जब कृषि रसायनों का उपयोग सीधे मृदा में किया जाता है तो यह मृदा से जल में तथा मृदा की निचले सतहों से होता हुआ भूमिगत जल में भी मिल जाता है। कृषि रसायन, पत्तियों की सतह पर अन्य उपयोग में आने वाले पदार्थों में अवशेष के रूप में जमा होते हैं। इनमें से कुछ का विघटन सूर्य के प्रकाश में जल द्वारा सूक्ष्मजीवीय अभिक्रिया द्वारा होता रहता है और यह रसायन घातक (Lethal) से कम घातक (Sublethal) या अघातक (Non lethal) रसायनों में बदल जाते है। परन्तु कुछ कृषि रसायनों के अवशेष बचे रहते हैं। कृषि रसायनों के अवशेष भोज्य एवं अन्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पदार्थो में बचे रहने हेतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानक तय है। इनकी मात्रा तयशुदा सीमा से अधिक नहीं होने चाहिए। अन्यथा ऐसे पदार्थों का उपयोग हानिकारक हो सकता है।

वर्तमान में सघन खेती (Intensive cultivation) में अधिक उत्पादन लेने हेतु इन रसायनों का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है व देश के कुल कृषि रकबा का 25–30 प्रतिशत हिस्से में कृषि रसायनों से संरक्षित किया जा रहा है। ऐसी अवस्था में हमें एतिहात के तौर पर सब्जियों एवं फलों का छिलका अलग करके पानी एवं गर्म पानी से धोकर यथासंभव उपयोग करना चाहिए ताकि इनकी सतहों पर जमी हुई रसायनों की मात्रा से छुटकारा प्राप्त किया जा सके तथा ऐसे भोज्य पदार्थों के उपयोग से स्वास्थ्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

फसल चक्र
(Crop Rotation)

फसलों का हेर–फेर कर बोना फसल चक्र कहलाता है।

परिभाषा (Definition) –

मृदा के किसी निश्चित भाग पर निश्चित समय में फसलों का इस क्रम से बोया जाना जिससे कि मृदा की उर्वरा शक्ति बनी रहे, फसल–चक्र कहलाता है।

फसल–चक्र के सिद्धांत (Principles of Crop Rotation)

विभिन्न फसलों से फसल चक्र बनाते समय निम्नलिखत सिद्धांत ध्यान में रखना चाहिए–

1. गहरी जड़ों वाली फसलों के बाद कम गहरी जड़ों वाली फसलें उगाई जाती हैं, जिससे कि फसलें विभिन्न मृदा सतहों से अपने पोषक तत्व ग्रहण कर सके।
2. अदलहनी (Non legume) फसलों के बाद दलहनी (Legume) फसलें उगानी चाहिए। अदलहनी फसलें मिट्टी की नाइट्रोजन को लेकर कमजोर बनाती है। जबकि दलहनी फसलों की जड़ों में पाया जाने वाला राइजोबियम बैक्टीरिया मिट्टी में वायुमंडल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है।
3. अधिक जल चाहने वाली फसलों के बाद कम जल चाहने वाली फसलें उगाने चाहिये। क्योंकि लगातार अधिक जल चाहने वाली फसलों के उगाने से मिट्टी में वायु का संचार रूक जाता है। इससे मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की क्रियाओं पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।
4. अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलें उगानी चाहिए। जिससे मिट्टी की उर्वरता सुरक्षित रहें।
5. अधिक निराई–गुड़ाई चाहने वाली फसलों के बाद कम निराई–गुड़ाई चाहने वाली फसलें उगानी चाहिए।
6. फसल चक्र अपनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दो ऐसी फसलें जिनमें हानि पहुँचाने वाले कीट पतंगे व बीमारियाँ एक जैसे हो, लगातार नहीं बोनी चाहिए।
7. फसलों को उगाते समय फसल–चक्र में समय, मृदा एवं जलवायु को ध्यान में रखना चाहिए।
8. फसल चक्र बनाते समय उसमें ऐसे फसलों का समावेश होना चाहिए कि किसान के पास उपलब्ध श्रम, सिंचाई, उर्वरक, बीज आदि का संपूर्ण उपयोग हो। उसे अनाज, सब्जी, दाल, पशुओं के लिए चारा, कपड़े के लिए रेशे वाली फसलें तथा नगदी फसले आवश्यकतानुसार उगानी चाहिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मिश्रित खेती (Mixed farming) –

जब फसल उत्पादन के साथ–साथ पशुपालन भी किया जाता है उसे मिश्रित खेती (Mixed farming) कहते हैं। फसल उत्पादन व पशुपालन दोनों एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं एक उद्गम के उप–उत्पादन (By product) दूसरे के लिए मुख्य आदान (Main input) का कार्य करते हैं। जैसे–फसलों के उत्पादन के बाद बचा

हुआ भूसा व पुआल (पैरा) पशुओं के भोजन के लिए उपयोग किया जाता है जबकि पशुओं से प्राप्त गोबर, मूत्र आदि का प्रयोग खेत में खाद के लिए करते हैं। हमारे देश के ग्रामीण परिवेश में इसका प्रयोग साधारणतः किया जाता है।

मिश्रित फसल

(Mixed Cropping)

एक ऋतु में, एक ही खेत में दो या दो से अधिक फसलों का उगाना ही मिश्रित खेती कहलाती है। मिश्रित फसल की प्रमुख श्रेणियाँ निम्नलिखित हैं –

1. मिश्रित फसलें (Mixed Cropping) – इस वर्ग में मिश्रण की फसलों के बोने, पकने तथा काटने का समय लगभग एक ही होता है, बोने से पूर्व सभी फसलों के बीज एक जगह मिलाकर खेत में छिड़ककर अथवा कतारों में बुवाई कर देते हैं। उदाहरण चना–गेहूँ, सरसों–गेहूँ, गेहूँ–जौ, चना–सरसों, उर्द–ज्वार, उर्द–मक्का।

2. मिश्रित सहयोगी फसलें (Companion Crops):– इसमें दो फसलों के बीज बोने से अलग–अलग पंक्तियों में बोते हैं जैसे अरहर–ज्वार–चना में अरहर की पंक्तियाँ 3 मीटर की दूरी पर बोते हैं। अरहर की दो पंक्तियों के बीच खरीफ में ज्वार व रबी में चना उगाते हैं। सरसों की दो कतारों के बीच–बीच गेहूँ की 5 पंक्तियाँ लगाते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. **सीमांत फसलें (Guard Crops):–** इस विधि में मुख्य फसल की रक्षा हेतु चारों ओर 10–15 कतारें गौण फसल की बो देते हैं। जैसे गन्ने के चारों ओर सन, अरहर या ढेंचा (ससवेनिया) को बो देते हैं।

सहायक फसलें

(Augmenting Crops)

इसमें मुख्य फसल की उपज बढ़ाने के लिए अन्य फसलें उनके साथ मिला दी जाती हैं। उदाहरण के लिए बरसीम की फसल के साथ सरसों बो देते हैं। पहली कटाई के समय बरसीम बहुत छोटी होती है। तब तक सरसों काफी बढ़ जाती है। इस प्रकार बरसीम की पहली कटाई के साथ सरसों की काफी उपज मिल जाती है।

मिश्रित फसल के सिद्धांत

(Principles of Mixed Cropping)

फसल के मिश्रण तैयार करने के लिए निम्नलिखित मुख्य सिद्धांत ध्यान में रखना चाहिए–

1. मिश्रित कृषि के लिए चुनी गई फसलें मिट्‌टी, जल तथा जलवायु के सुविधानुसार छॉटनी चाहिए।
2. दलहनी फसलों के साथ अदलहनी फसलों का मिश्रण करना चाहिए।
3. ऊँची बढ़ने वाली फसलों के साथ, भूमि में फैलकर चलने वाली फसलें बोनी चाहिए।
4. गहरी जड़ वाली फसलों के साथ उथली जड़ वाली फसलें बोनी चाहिए।
5. दोनों फसलों की जल मॉग समान होनी चाहिए।
6. मिलाकर बोने वाली दोनों फसलों की खाद संबंधी आवश्यकता एक सी होनी चाहिए।
7. एक ही प्रकार के कीट तथा बीमारियों को शरण देने वाली फसलों को एक साथ नहीं बोना चाहिए।
8. हल्की भूमियों में फसल मिश्रण में दलहनी फसलें अवश्य रखना चाहिये।

जैव उर्वरक

(Bio Fertilizer)

जैव उर्वरक (बायोफर्टीलाइजर) एक प्रकार से सूक्ष्मजीवधारी हैं जो पौधों/फसलों को आवश्यक पोषक तत्वों को उपलब्ध करते हैं। जिससे फसलोत्पादन बढ़ जाता है। जैव उर्वरक के उपचार के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। यह अनुकूल परिस्थितियों में वृद्धि एवं गुणन करके भूमि या वायु में मौजूद पोषक तत्वों को जिन्हें पौधे सीधे लेने में असमर्थ होते हैं, उपलब्ध कराते हैं। जैव उर्वरक के सूक्ष्मजीव पौधों के साथ–सहजीवी के रूप में या मुक्तजीवी के रूप में मृदा में रहते हैं।

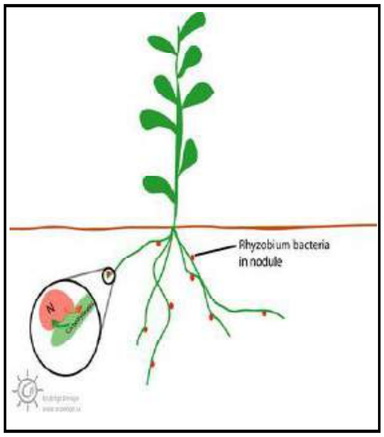

राइजोबियम, एजोस्पाइरिलम तथा ऐजैटोबैक्टर का उपयोग दलहनी फसलों/पौधों की नाइट्रोजन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति हेतु किया जाता है। इनके उपयोग से इन फसलों की उपज में 15–20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हो जाती है। जबकि नील हरित शैवाल एवं एजोला का उपयोग धान (जलभराव वाली खेती) की फसल में नाइट्रोजन की उपलब्धता हेतु किया जाता है। फसलों में फास्फोरस घोलक बैक्टीरिया (पी.एस.वी.) का उपयोग होता है यह स्फूर (फास्फोरस की उपलब्धता में 20–30 प्रतिशत वृद्धि करता है।) इसके अतिरिक्त माइकोराइजा कवक (वाम फन्जाई) फास्फोरस व अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, सल्फर आदि की उपलब्धता कराकर पौधों में जल उपयोग क्षमता को भी बढ़ाता है जिससे फसलों की उपज बढ़ती है। जैव उर्वरकों के उपयोग से निम्न लाभ है –

1. वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं तथा मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाते हैं।
2. पौधों को जैविक नाइट्रोजन प्रदान करते हैं।
3. बी.जी.ए. (नील हरित शैवाल) एजेटोबैक्टर तथा एजोस्परिलियम कुछ वृद्धि कारक जैसे आई.ए.ए. आदि भी स्त्रावित करते हैं जो पौधों की वृद्धि तेज करते हैं।
4. मृदा जनित रोगों को रोकने में सहायक होते हैं।
5. इनके उपयोग से भूमि के भौतिक गुण जैसे संरचना, कणाकार, सुघट्यता तथा रासायनिक गुण जैसे–जल अवशोषण क्षमता, भूमि की धनायन विनिमय क्षमता, मिट्टी की बफर क्षमता आदि में वृद्धि होती है।
6. मिट्टी की उर्वरता व उत्पादकता को बनाये रखते हैं।
7. फसलोत्पादन की लागत में कमी लाते हैं।
8. पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जैव उर्वरकों के अनुप्रयोग की जानकारी

क्र.	जैव उर्वरक	उपयोग की दर	उपयोग विधि	उपयुक्त फसले	विशेष
1.	राइजोबियम 10 कि.ग्रा.	200–250 ग्राम/	बीजोपचार बीज	समस्त दलहनी फसलें जैसे–चना मटर, मसूर, मूँग उर्द आदि। तिलहनी जैसे– सोयाबीन व मूँगफली	भूमि में फास्फोरस व मोलिब्डेनम की उपलब्धता अनिवार्य
2.	ऐजेटोबैक्टर	250 ग्रा./10किग्रा. बीज 5 कि.ग्रा./हे.	बीजोपचार,जड़ जड़ उपचार व मृदोपचार	क्लोवर व लूसर्न गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा व सब्जियाँ तथा कपास आदि।	भूमि में कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता आवश्यक।
3.	एजोस्पा–इरिलम	250 ग्रा./10 किग्रा. बीज 5 कि.ग्रा/हे.	बीजोपचार व मृदोपचार	धान्य वर्ग की समस्त फसलें।	
4.	फास्फो बैक्टिरिया	250 ग्रा./10 किग्रा. बीज 5 कि.ग्रा/हे.	बीजोपचार, जड़ उपचार व मृदोपचार	सभी फसलों के लिए उपयोगी	
5.	नील हरित शैवाल	10–15 कि.ग्रा. एवं एजोला 200 –250 कि.ग्रा/हे.	मृदोपचार	धान (Paddy)	केवल पानी भरे धान के खेत में।

जैव उर्वरकों की फसलोत्पादन में प्रयोग विधि

बीजोपचार

1. 50–100 गुड़ को आधा लीटर पानी में घोल बना लें।
2. घोल को बड़े बर्तन में डालकर 200–250 ग्राम जैव उर्वरक मिलाये।
3. जैव–उर्वरक वाले घोल में 10 किलोग्राम बीज डाल करके बीजों को हाथ से भलीभाँति मिलायें ताकि सभी बीजों पर जैव उर्वरक सामान रूप से अच्छी तरह से लग जाये।
4. उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर यथाशीघ्र बुवाई करें।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जड़ उपचार

1. रोपाई वाली फसलों में यह विधि अपनाते हैं।
2. 4–5 किलोग्राम जैव उर्वरक को 20–25 लीटर पानी में घोल बनाये (प्रति हेक्टेयर फसल रोपाई हेतु)
3. घोल में चिपचिपापन लाने के लिए 500 ग्राम गुड़ या चीनी का उपयोग करें।
4. रोपाई वाले पौधों को नर्सरी से निकाल कर इस घोल में सिर्फ जड़ वाले भाग को 20–25 तक मिनट तक डुबाएँ।
5. उपचारित पौधे की रोपाई शीघ्र ही मुख्य खेत में कर दें।

मृदा उपचार

1. 50 किलोग्राम जैव उर्वरक का उपयोग प्रति हे. की दर से करते हैं।
2. जैव उर्वरक को 80–100 किग्रा. कम्पोस्ट/वर्मीकम्पोस्ट में अच्छी तरह से मिलाये।
3. इस तैयार मिश्रण को बुआई से 24 घंटे पूर्व एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में समान रूप से छिड़कें।
4. उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर यथाशीघ्र बुवाई करें।

जैविक नियंत्रण

(Biological Control)

प्रकृति में सभी जीव जन्तुओं के प्राकृतिक शत्रु मौजूद रहते हैं। जो प्राकृतिक चक्र में समन्वय बनाये रखने में सहायक होते हैं। जैसे – चूहों के लिए बिल्ली। उसी तरह कृषि में हानि पहुँचाने वाले जैविक कारकों (कीट, रोगजनक सूत्रकृमि व खरपतवार) के भी प्राकृतिक शत्रु होते हैं। इन्हें पहचान कर उनका संवर्धन कर कृषि में नियंत्रण हेतु उपयोग किया जाना जैविक नियंत्रण कहलाता है।

जैविक नियंत्रण वाले कीट

- परभक्षी (प्रिडेटर)
- पेरासिटाइड
- कीटों के सूक्ष्म जीवीय रोग जनक
  - जीवाणु
    –वेसिलस थ्रूनजेन्सिस
  - विषाणु
    –न्यूक्लियर पॉलीहाइड्रोसिस विषाणु (एन.पी.व्ही.)
  - कवक
    –मेटाराइजम, वोवेरिया
  - सूत्रकृमि
    –फोटोटेवटूस

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

परभक्षी (Predator) –

इस श्रेणी में ऐसे जीव–जन्तु आते हैं जो अपने आहार हेतु कीटों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। ये फसल में हानि पहुँचाने वाले जैविक कारकों (कीटों) को अपने विष द्वारा मारकर या शिकार कर खाते हैं। इस श्रेणी के जीव अपना जीवन–चक्र पूरा करने हेतु भी कई कीटों का भक्षण करते हैं। उदाहरण के लिए मेंढ़क, कौआ, चिड़िया, ड्रेगनफ्लाई, माइट व मकड़ियाॅ कीट परभक्षी हैं। इनमें से कुछ कीटों को प्राकृतिक रूप से नष्ट करते हैं जबकि कुछ परभक्षी जैसे– लेडीवर्ड वीटल आदि का संवर्धन कर जैविक नियंत्रण में उपयोग में लाये जाते हैं।

पेरासिटाइड

इस श्रेणी के परभक्षी कृषि के लिए हानिकारक कीटों के आकार के बराबर या छोटे होते है। इन्हें अपने जीवनयापन के दौरान एक ही कीट की जरूरत पड़ती है। यह (पेरासिटाइड) अपने भोज्य कीटों के अण्डों पर नये लार्वा या निम्फ पर अपने अण्डे देते है। इन पेरासिटाइड के अण्डों से निकलने वाले शिशु लार्वा कीटों के अण्डों या शिशु लार्वा को अपना भोज्य आधार बनाकर जीवन यापन करते हैं। ट्राइकाग्रामा के अण्डों का उपयोग जैव कीट नियंत्रण का सफलतम उदाहरण है।

सूक्ष्मजीवीय रोगजनक (Micro Organism Pathogen)

इस प्रकार के रोगजनक कृषि के हानिकारक कीटों पर विभिन्न तरह की बीमारियों को पैदा करते हैं। जिससे रोगी कीट शनैः–शनैः मर जाता है तथा उसकी संतति की बढ़वार रूक जाती है। इन रोग कारक सूक्ष्म जीवों में जीवाणु के अंतर्गत बेसिलस थ्रूजेन्सिस व विषाणु में न्यूक्लियर पोलीहाइड्रोसिस विषाणु **(Polyhydrosis virus)** अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

फसल रोगों का जैविक नियंत्रण (Biological Control of Crop diseases)

मुख्यतः हानिकारक फसल रोग सूक्ष्मजीवीय रोग कारकों (पेथोजन) के द्वारा होते हैं। इन रोग कारकों के नियंत्रण हेतु भी सूक्ष्मजीवीय परजीवियों **(Hyper parasite)** का उपयोग कर रोगों का प्रबंधन किया जाता है। इसके लिए कवक की कई प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। जैसे– ट्राइकोडर्मा ग्लाइयोक्लेडियम व वरटीसीलियम आदि। जिसमें ट्राइकोडर्मा की विभिन्न विभेदों **(Stains)** का उपयोग विभिन्न तरह के फसलों के रोगों के नियंत्रण हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ जीवाणुओं जैसे वेसिलस सबटिलिस व स्यूडोमोनास फ्लोरिसेस का उपयोग भी फसल बीमारियों के नियंत्रण हेतु करते हैं। इनमें से कुछ जीवाणु बीमारियों के नियंत्रण के साथ–साथ फसल की बढ़वार में भी सहायक होते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खरपतवारों का जैविक नियंत्रण

खरपतवारों को नियंत्रित करने हेतु कुछ विशेष तरह के कीट व रोगजनकों का उपयोग किया जाता है ताकि यह कीट खरपतवारों को भोज्य रूप में इस्तेमाल कर नष्ट कर दें तथा रोग जनकों रोग फैलाकर केवल खरपतवारों को मार दे। परन्तु ऐसे कीट व रोगजनकों के उपयोग सीमित है। खरपवतवारों के जैविक शत्रु **(Bio controlagent)** इस बात से आश्वस्त करते हो कि वे उपयोगी फसलों को अपना भोजन न बनाते हो। उदाहरण के लिए– जलकुम्भी के लिए नियोकीटना इकोटनी (कीट) व गाजर घास के लिए जाइगोग्रामा बाइकोलराटा (कीट) व पक्सीनिया एवरफ्टा (कवक) आदि।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. खरपतवार नाशी **(Weedicide)** क्या है ?
2. कवकनाशी **(Fungicide)** रसायन क्या होते हैं ?
3. जीवाणु युक्त जैव उर्वरक क्या है ?
4. जैव उर्वरकों से फसलोपचार कैसे किया जाता है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. खरपतवारों को कैसे नियंत्रित करेंगें ?
2. मिश्रित फार्मिंग क्या है ?
3. फसल–चक्र के क्या सिद्धांत हैं ?
4. मिश्रित खेती के क्या सिद्धांत हैं ?
5. जैव कीटनाशक (पीड़ा नाशक) क्या है ?
6. जैव उर्वरक के नाम व उनके उपयोग की जानकारी दीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पौध रोग नियंत्रण की प्रमुख विधियाँ बताइये।
2. कृषि रसायनों की पर्यावरण पर प्रभाव की विवेचना कीजिये।
3. जैव उर्वरकों के उपयोग करके कैसे उत्पादन बढ़ा सकते हैं ? वर्णन कीजिए।
4. जैविक नियंत्रण के बारे में आप क्या समझते हैं ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खण्ड -3

अध्याय – 10

समन्वित पीड़क प्रबन्धन

पाठ्यक्रम –	समन्वित पीड़क प्रबंधन।
	फसलों की सुरक्षा में जैव तकनीकी की उपयोगिता।
	कृषि उत्पादों का प्रबन्धन – संग्रहण, संरक्षण, परिवहन एवं प्रोसेसिंग।

समन्वित पीड़क प्रबन्धन

(Integrated Pest Management)

बीसवीं सदी के उतरार्द्ध के अंतिम तीन दशकों में सघन खेती **(Intensive cultivation)** पर जोर दिया गया जिसके अंतर्गत अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियों रासायनिक उर्वरकों व अन्य कृषि रसायनों (कीटनाशी, कवकनाशी व खरपतवारनाशी) का भरपूर उपयोग किया गया। इन सबके उपयोग से कृषि उत्पादन में अच्छी वृद्धि हुई परन्तु कृषि रसायनों के अन्धाधुंध प्रयोग से पर्यावरण को काफी क्षति हुई। इसके साथ–साथ कई कीटों में कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोधिता तथा कवकों में सर्वांगी कवकनाशियों **(Systemic fungicide)** के प्रति प्रतिरोधिता, लाभदायक (मित्र) कीटों व सूक्ष्मजीवों का विनाश, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण के रूप में देखा गया इनका मानव खाद्य श्रृंखला में प्रवेश तथा परागण करने वाले कीटों की संख्या में भी काफी कमी देखी गई।

अतः कीटव्याधियों व रोगव्याधि नियंत्रण के लिए एक ऐसी पद्धति को अपनाया गया जिसमें कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं, कर्षण क्रियाओं (सस्य संबंधी) प्रतिरोधी प्रजातियों जैविक विधियों व वानस्पतिक रोग व्याधि नाशी एवं रासायनिक कीटनाशी व कवकनाशियों का कम प्रयोग कर हानिकारक कीटों व बीमारियों से फसल की सुरक्षा की जाये।

विश्व खाद्य संगठन के अनुसार समन्वित पीड़क प्रबन्ध (आई.पी.एम.) ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पर्यावरण एवं कीटव्याधियों के प्रकोप को ध्यान में रखते हुए इनके नियंत्रण की विभिन्न विधियों को मिलाजुला कर इस प्रकार प्रबन्धन किया जाय कि कीटव्याधियों का प्रकोप आर्थिक स्तर तक न बढ़ सके।

आर्थिक क्षति स्तर (Economic injury level) तथा

आर्थिक थ्रेसहोल्ड स्तर (Economic threshold level)

इकोनोमिक क्षति स्तर पर कीटो द्वारा किये गये फसल पर नुकसान को अधिक समय तक सहन नहीं किया जा सकता। अतः इस स्तर पर पहुंचने से पहले ही नियंत्रण के उपाय प्रारंभ कर देना चाहिये। दूसरे शब्दों में कीटों द्वारा किये गये नुकसान का मूल्य इसको रोकने के लिए किये गये उपाय के खर्च के बराबर होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकोनोमिक थ्रेसहोल्ड स्तर कीटो की संख्या का फसल/पौधों पर ऐसा घनत्व होता है जिस पर पहुंचने से रोका जा सके।

समन्वित पीड़क प्रबन्धन (आई.पी.एम.) के उद्देश्य

1. कीटों को पूरी तरह नष्ट न करके इनकी संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से अधिक न बढ़ने देना।
2. जैव विविधता को संरक्षित करना तथा पर्यावरण को भी सुरक्षित रखना।
3. फसल सुरक्षा कार्यक्रम को व्यावहारिक, सुरक्षित एवं आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण बनाना ताकि सभी स्तर के कृषकों के लिए उपयोगी हो।

फसलों के सुधार में जैव–तकनीकी (Bio Technology) की उपयोगिता

विश्व के अनेक देशों में फसलों के सुधार के लिए जैव–प्रौद्योगिकी उपायों का चलन तेजी से बढ़ रहा है। पादप जैव–प्रौद्योगिकी (तकनीक) के क्षेत्र में वर्तमान में हुए विकास ने अनेक ऐसे साधन व तकनीक मुहैया कराये हैं जो फसलोत्पादन के लिए अधिक सक्षम और कार्यकुशल साबित हुए हैं। जैव प्रौद्योगिकी (तकनीकी) की विधियों द्वारा किसी जीव में विशिष्ट वांछित विविधता प्राप्त की जा सकती है व इसकी रिकाम्वीनेंट जैव तकनीकी ने पूरे विश्व के जैवमण्डल की जीव विविधता को उपयोग की असीम संभावनाएँ प्रदान की है।

सोयाबीन की उन्नत प्रजाति

आज जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा नई जीनान्तरित फसलों के सृजन हेतु आनुवांशिकी संभावनाओं का प्रयोग कर विविधताओं के द्वार खोलकर प्रजनकों के लिए प्रभावशाली मौके देती है। हम फसलों को अपनी जरूरत के मुताबिक बना रहे हैं। ताकि खेती में लागत कम की जा सके। कृषि पर्यावरण हितैषी हो तथा प्राकृतिक साधनों का न्यूनतम दोहन कर अच्छी पैदावार ली जा सके।

मक्के की उन्नत प्रजाति

जैव प्रौद्योगिकी के तहत पराजीनिक तकनीक (ट्रांसजीनिक टेक्नोलॉजी) के माध्यम से आज मक्का, सोयाबीन, सरसों, कपास, तम्बाखू, टमाटर, गोभी आदि फसलों का विकास किया जा चुका है। आज विश्वस्तर पर ट्रांसजैनिक फसलें उगाई जा रही हैं। इन जीनान्तरित फसलों में सूक्ष्मजीवों का उपयोग जीन के या जीन के वाहक के रूप में किया जा रहा है। जीन के रूप में जीवाणु (बैक्टीरियां) वैसिलस थ्रुजेन्सिस का उपयोग बहुतायत से किया गया है। जिससे वीटी मक्का, बीटी कपास व बीटी बैगन का विकास हो चुका है। बी.टी. जीवाणु द्वारा उत्पन्न रसायन कपास में लगने वाली सुण्डी व अन्य कीटों के लिए जहर का कार्य करता है और इन बीटी फसलों की इस कीट सुण्डी से रक्षा बिना किसी रसायनिक छिड़काव से की जा सकती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उद्यानिकी फसलों ट्रांसजनिक पपीता की किस्म विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो कि रिंग स्पाट वायरस की प्रतिरोधी है। सोयाबीन फसल खरपतवार नाशी रसायन प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया जा चुका है। इन किस्मों (प्रजातियों) से लगे खेत में खरपतवारनाशी रसायन छिड़काव करने पर सिर्फ खरपतवार ही मरते हैं। सोयाबीन फसल स्वस्थ व सुरक्षित रहती है।

समन्वित/ एकीकृत कीट (Integrated) व्याधि प्रबन्धन के घटक

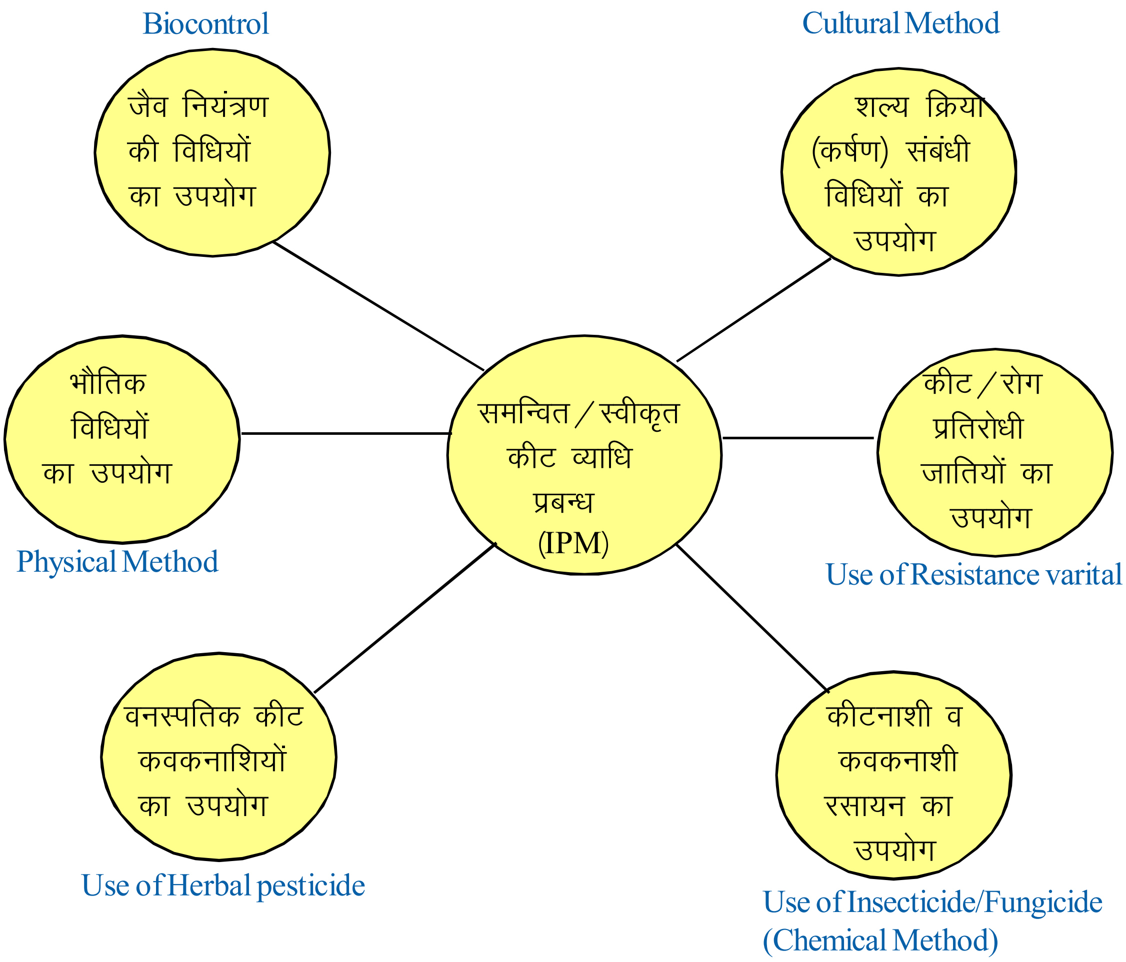

वर्तमान में जैव प्रौद्योगिकी का प्रयोग फसल सुधार के निम्नलिखित क्षेत्रों में किया जा रहा है –

1. कोशिका संवर्धन तकनीक द्वारा पौध विकास एवं आनुवांशिक विविधता प्राप्त करना।
2. प्रयोगशाला में जैव विविधता वाली जातियों का संरक्षण।
3. रोगरोधी **(Disease resistant)** व कीट रोधी **(Insect resistant)** फसलों का विकास।
4. शाकनाशी रसायनरोधी/खरपतवारनाशी रसायनरोधी **(Herbicide resistance)** प्रजातियों का विकास (उदाहरण सोयाबीन आदि)
5. अधिक पोषक गुणवत्ता वाली जातियों का विकास जैसे स्वर्णधान (गोल्ड राइस)।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6.कम तैयार की गई मिट्टी **(Zero-tillage practices)** में भी उगने की क्षमता अर्थात कम मृदा कटाव आदि।

जैव प्रौद्योगिकी के इन प्रयासों द्वारा कृषि आदानों पर निर्भरता कम करके अच्छी पैदावार प्राप्त करने की युक्ति निकाली जा रही है जो पर्यावरण को भी सुरक्षित रख सके।

कृषि उत्पादों का प्रबन्धन,
संग्रहण (भण्डारण), संरक्षण, परिवहन एवं प्रशोधन (प्रोसेसिंग)

आधुनिक कृषि में कृषि उत्पादन की व्यवस्था को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित क्रिया जा सकता है जैसे कि फसल की समयानुसार बुआई आदि की व्यवस्था करना, फसल उत्पादन करना एवं कटाई के बाद फसल की व्यवस्था करना ताकि उत्पादन की उचित कीमत मिल सके एवं उपज को अनावश्यक क्षति से भी बचाया जा सके।

खाद्यान्न का भण्डारण/संग्रहण अनाज के रूप में खाने व विक्रय कर अधिक मूल्य प्राप्त करने तथा अगली फसल के बीजों के रूप में प्रयोग के लिए किया जाता है। आमतौर पर कृषि उत्पादन प्रक्रियॉं पर जितना ध्यान दिया जाता है उतना भण्डार पर नहीं देते। इसके फलस्वरूप अनाज के कुल उत्पादन का 10–12 प्रतिशत भाग कीड़े, चूहे, पक्षी, फफूँद व अन्य जीवों द्वारा नष्ट हो जाता है।

कृषि उत्पादों को क्षति पहुँचाने वाले प्रमुख कारक

- भौतिक कारक (नमी एवं तापमान)
- जैविक कारक (कीड़े, चूहे, पक्षी एवं फफूंद)
- रसायनिक कारक (किसी रसायन से सीधा सम्पर्क)
- यांत्रिक कारक (मशीन द्वारा नुकसान)

तालिका – भंडारण के दौरान अनाज के प्रमुख कीड़े (कीट)

क्र.	कीट का नाम	क्षति की जाने वाली फसलें	क्षति का प्रकार
1.	सूड़वाली सुरसुरी (माइटोफिलस ओराइजी)	चावल/धान, गेहूँ, मक्का ज्वार इत्यादि।	दानों को खोखल कर देना
2.	छोटा अनाज छिद्रक (लैसर ग्रेन बोरर)	धान/चावल, गेहूँ, मक्का	––
3.	आटे का कीट/सुरसाली (ट्राइबोलियम कास्टेनियम)	आटा, सूजी, मैंदा व अन्य पिसे पदार्थ	आटा पीला पड़ना, बदबू आना कवक की वृद्धि
4.	खपरा/पई (ट्रोगोडर्मा ग्रानेरियम)	ज्वार, चावल, मक्का, दालें एवं तिलहन	बीज एवं भ्रूण वाला भाग नष्ट कर दिया जाना।
5.	अनाज का पतंगा/शलभ (साइटोट्रोगा सीरियलेला)	चावल, मक्का एवं ज्वार	जालों के ढेर बनना
6.	दालों का ढोरा/भुनभुना (कैलोसोब्रुकस)	मूँग, उड़द, चना, मटर सोयाबीन तथा राजमा	दानो को अन्दर ही अंदर खाकर खोखला करना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भण्डारण (संग्रहण) के दौरान खाद्यान्न की गुणवत्ता व मात्रा को प्रभावित करने वाले कारक

- नमी की अधिकता
- चूहे
- भंडारित अनाज के कीट

अनाज के सुरक्षित भंडारण हेतु खलिहान से ही ध्यान रखना चाहिये। जिससे कीड़ों का प्रकोप व अनाज के खराब होने की संभावना रहती है। चने का भृंग, चावल का घुन, अनाज का शलभ आदि के कीट खड़ी फसल तथा खलिहानों में ही अण्डे देते हैं तथा वहीं से भण्डार गृहों तक पहुॅच जाते हैं। अतः मडाई के लिए खलिहानों का उपयोग करते समय ठीक से साफ–सफाई कर लेनी चाहिये। यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि भंडारण के समय नमी की मात्रा ज्यादा न हो। गेहूॅं में 8–10 प्रतिशत, धान में 11–13 प्रतिशत, तिलहनों में 6–8 प्रतिशत सोयाबीन में 10 प्रतिशत अन्य दलहनों में 9 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होना चाहिये। अधिक नमी होने से अनाज की श्वसन क्रिया बढ़ जाती है, जिससे पूर्ण सुप्तावस्था में रहने व श्वसन के कारण अधिक गर्मी पैदा होने से बीज की अंकुरण क्षमता घट जाती है। इसके अलावा अधिक नमी वाले अनाज पर सूक्ष्मजीव व कीड़े मकोड़े का प्रकोप भी अधिक होता है।

गोदाम व भण्डार गृहों की दीवारों, फर्श व छत की अच्छी तरह सफाई करके चूहों के बिलों दरारों व अन्दरूनी टूट–फूट को सीमेन्ट से बंद कर दें तथा भण्डार गृह व गोदामों में यथासंभव सफेदी कर अच्छी तरह सूखने के बाद ही अनाज भण्डारण करें। भण्डारण पूर्व गोदाम भण्डार गृहों की मेलाथियान (50 इ.सी.) दवा से उपचारित अवश्य कर ले।

भण्डारण के लिए जहॉं तक संभव हो सके अनाज भरने हेतु नई बोरियों का ही उपयोग करना चाहिये यदि पुरानी बोरी में अनाज भरना हो तो उनकी गर्म पानी में धुलाई करने के पश्चात् धूप में अच्छी तरह सुखा लें और साथ–ही–साथ इन्हें मेलाथियान 50 ई.सी. रसायन के एक प्रतिशत घोल से उपचारित करना चाहिये।

यदि अनाज बोरियों में भरकर जमीन पर रख रहे हैं तो नीचे पर्याप्त मात्रा में भूसे की तह या बॉस की दो चटाइयों के बीच पालीथिन शीट (चादर) या लकड़ी के फ्रेमों के ऊपर बोरियों की थप्पियॉं लगायें। अनाज भरे बोरियों को गोदामों व भण्डार गृहों की दीवारों से कम से कम 50 से.मी. की दूरी पर रखे जिससे अनाज नमी के सम्पर्क में न आ सके। इसके अतिरिक्त भण्डारित अनाज में कीटों के प्रकोप से बचाने के लिए कई प्रकार के कीटनाशक जैसे– मेलाथियान, डेल्टामैथ्रिन, डाइक्लोरोवास, ऐल्यूमिनियम फास्फाइड व मिथाइल ब्रोमाइड आदि की उचित मात्रा में सावधानीपूर्वक उपयोग कर सुरक्षित रख सकते हैं।

भण्डारित अनाज वाली जगहों/कमरों इत्यादि में हवा के आवागमन का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। जहॉं अनाज रखा गया है वह स्थान नमी रोधक हो, छत या अन्य किसी ओर से बरसात का पानी न आये इस

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बात का विशेष ध्यान रखते हैं। गोदाम का समय–समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिये। भंडारित अनाज को खाने के लिए निकालने पर उसे 3–4 घंटे में सुखाना चाहिए व अच्छी तरह साफ करने के बाद ही उपयोग में लाये।

चूहों से अनाज की सुरक्षा

चूहे अनाज के प्रमुख शत्रु हैं। ये देश के सकल अनाज उत्पादन का 2–3 प्रतिशत खा जाते हैं और इससे कहीं ज्यादा बर्बाद कर देते हैं। चूहे अपने मलमूत्र तथा बालों से अनाज को दूषित करते हैं। चूहों को चूहेदानी प्रधूमक जैसे ए.एल.पी. टिकिया या बेरस आदि का उपयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है। परन्तु प्रधूमक दवाओं को बच्चों व जानवरों की पहुॅंच से दूर रखना चाहिये तथा इनके इस्तेमाल के बाद हाथ को साबुन से अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिये।

कृषि उत्पादों का परिवहन एवं प्रशोधन

(अ) खाद्यान्न फसलें (Food Crops) – खाद्यान्न फसलों के परिवहन में इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि परिवहन कार्य में लगे वाहनों में कई तरह के कीट/कीड़े जो खाद्यान्न के भण्डारण के समय नुकसान पहुॅंचाते हैं न छिपे हो क्योंकि इस तरह के कीट अपनी सुषुप्तावस्था वाली अवस्थाओं परिवहन वाहन के जोड़ों एवं दरारों आदि में रहते हैं। अतः इनकी साफ–सफाई ठीक से होनी चाहिये। परिवहन के दौरान अनाज नमी से सुरक्षित होना चाहिये। किसी भी दशा में भीगना नहीं चाहिये। तालपत्री आदि का उपयोग अनाज को ढ़ॅकने हेतु परिवहन के दौरान अवश्य करें।

डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ

फल, सब्जियॉं शीघ्र शराब होने वाले उत्पाद हैं। अतः परिवहन के दौरान तापमान कम रहना चाहिए। इनके परिवहन के लिए रेल यातायात की तुलना में सड़क यातायात ज्यादा श्रेयकर है। परिवहन के दौरान रगड़ से बचने के लिए डिब्बा बंद या पैकिंग की जाती है। वाहन में भूसा व पत्तियों की तह बनाने के बाद ही इन उत्पादों को भरना चाहिए।

प्रशोधन (Processing) :–

बढ़ती आबादी के साथ–साथ कृषि योग्य भूमि सीमित हो गई है। सीमित कृषि भूमि से उचित लाभ प्राप्त

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करने के लिए प्रशोधन सशक्त व न्यायसंगत विकल्प है। उत्पाद एवं उप उत्पाद जो उपभोक्ता तक पहुँचने से पहले नष्ट हो जाते हैं। उनका संचय राष्ट्र तथा ग्रामीण हित में है। कच्चा माल बेचने के बजाए प्रशोधित वस्तु विक्रय करना उचित ही नहीं अपितु आर्थिक व सामाजिक रूप से फायदेमंद भी है।

राइस मिल

अनाज की सीधी बिक्री की तुलना में उसे प्रशोधित कर बेचना ज्यादा लाभप्रद होता है। वर्तमान की उदार वित्तीय नितियॉं इस ओर ज्यादा ध्यान दे रही हैं तथा प्रशोधित उत्पाद बेचने से प्रति इकाई लाभ की दर ग्रामीण क्षेत्रों की आबादी को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाती है। धान के बजाय चावल बेचना तथा चावल बनाने की प्रक्रिया में प्राप्त हुए अन्य उपउत्पादों जैसे धानभूसी (20प्रतिशत), कनकी (2–10 प्रतिशत) व कनीयाब्रान (5 प्रतिशत) से अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। इसी तरह गेहूँ के बजाय उससे तैयार आटा, मैदा, सूजी या दलिया को बेचा जाय जो अपेक्षाकृत ज्यादा लाभ देगा व श्रम का समुचित उपयोग हो सकेगा।

(ब) उद्यानिकी फसलें (Horticultural Crops) – उद्यानिकी फसलें ज्यादा जल्दी खराब होने वाले उत्पाद होते हैं। फल एवं सब्जियों के कुल उत्पाद का 20–40 प्रतिशत उपज उपभोक्ताओं के पहुंचने के पूर्व ही नष्ट हो जाती है। अतः इन उत्पादों की शीघ्र खराब होने की प्रकृति को देखते हुए विशेष सावधानी की जरूरत होती है। फलों व सब्जियों में तुड़ाई या परिवहन के दौरान किसी भी तरह का घाव लगना, खुरच जाना, कट जाना आदि इनके शीघ्र खराब होने के लिए उत्तरदायी है। इन स्थानों पर सूक्ष्मजीवीय आक्रमण द्वारा शीघ्र ही सड़गल कर नष्ट हो जाती है।

उद्यानिकी उत्पाद की क्षति रोकने हेतु उपाय –

फल व सब्जियों की तुड़ाई से पूर्व निम्न प्रकार की सावधानियाँ रखनी चाहिये –

1. कर्षण क्रियायें – तुड़ाई पूर्व की कर्षण क्रियाओं को इस तरह समायोजित किया जाना चाहिए ताकि फल व सब्जियों के खराब होने की संभावना कम से कम हो। जैसे तुड़ाई पूर्व अधिक मात्रा में सिंचाई नहीं करना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चाहिए। अन्यथा फल सब्जियों की तुड़ाई के बार रखने की अवधि कम हो जाती है। प्याज व लहसून की फसल में खुदाई के तीन सप्ताह पूर्व सिंचाई बंद कर देने से इनकी भण्डारण क्षमता अच्छी रहती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. तुड़ाई के पूर्व उपचार – कुछ कृषि रसायनों का छिड़काव फसल तुड़ाई की पूर्व अवस्था में करने से भण्डारण क्षमता बढ़ती है तथा क्षति कम हो जाती है। जैसे–प्याज में मेलिक हाइड्राक्साइड छिड़काव से भण्डारण में अंकुरण नहीं होता है।

3. परिपक्वता अवस्था – फलों और सब्जियों की उचित परिपक्व अवस्था में तुड़ाई करने पर उनकी खराब होने की अवधि में बढ़ोत्तरी हो जाती है व क्षति कम होती है।

फलों व सब्जियों की तुड़ाई दिन के ठण्डे समय विशेषकर सुबह ही करना चाहिए तथा उसे छायादार स्थान में रखना चाहिए। वर्षा होने की दशा में वर्षा के तुरंत बाद तुड़ाई नही करना चाहिए। कुछ फलों व सब्जियों को अधपकी अवस्था में ही तुड़ाई कर लेना चाहिए।

फलों व सब्जियों की कटाई के बाद बाजार में पहुँचने से पूर्व विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे–क्यूरिंग, धुलाई, सुखाना, ग्रेडिंग, रसायनिक उपचार, मोम की पर्त चढ़ाना तथा प्लास्टिक में पैक करना आदि से गुजरना होता है।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. समन्वित पीड़क प्रबन्धक (आई.पी.एम.) के क्या उद्देश्य हैं ?
2. आर्थिक क्षति स्तर व आर्थिक थ्रेसहोल्ड स्तर क्या है ?
3. जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग फसल सुधार के किन क्षेत्रों में किया जा रहा है ?
4. भंडारण (संग्रहण) के समय नुकसान पहुँचाने वाले कीटों के नाम बताइये।
5. चूहों से अनाज को क्या क्षति पहुँचती है ?
6. कृषि उत्पादन के परिवहन से क्या तात्पर्य है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समन्वित पीड़क प्रबन्धन (आई.पी.एम.) क्या है ? समझाइये।
2. विभिन्न जैव उर्वरकों के नाम व उनकी उपयोग विधि की फसलवार जानकारी दीजिये।
3. अनाज भण्डारण (संग्रहण) में क्या–क्या सावधनियाँ रखते हैं ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. उद्यानिकी फसलों के प्रशोधन की विशेषताएँ लिखिए ?

5. उद्यानिकी उत्पादों की क्षति रोकने हेतु क्या उपाय किये जाने चाहिये ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जैव प्रौद्योगिकी का कृषि के क्षेत्र में महत्व रेखाकिंत कीजिये।

2. अनाज भण्डारण की वैज्ञानिक ढंग पर प्रकाश डालिये।

3. कृषि उत्पादों के परिवहन व प्रशोधन (Processing) पर निबंध लिखिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com